Volume -5 , Issue 3 (March 2024)

Special Issue - I

on

समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology

ISSN 2582-7359

Peer Reviewed Journal

Impact Factor 6.325

Published By

Taran Publication

New Delhi

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

Special Issue - I

समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श

विशेषांक सम्पादक मंडल

मुख्य सम्पादक

प्रधानाचार्य डॉ. शिवदास शिरसाठ

कार्यकारी सम्पादक

डॉ. रमेश शिंदे

डॉ. अरविंद घोडके

प्रा. सुनिल शिंदे

सम्पादकीय मंडल

डॉ. एम.एस. राजपंखे

डॉ. ए.बी. बरुरे

डॉ.ए. डी. मरकाळे

प्रा. बी. व्ही. पल्लेवाड

प्रा.एस. टी. भोसले

डॉ. डी.एम भारती

डॉ.डी.डी. भिसे

डॉ.एस. जी. सुरेवाड

डॉ. पी. एस. लोखंडे

JOURNAL DETAILS

Name of Journal	**International Journal of Multidisciplinary Research and Technology**
e-ISSN	**2582-7359**
Subject	**Multidisciplinary**
Publisher	**Taran Publication**
Impact Factor	**6.325**
Website	**www.ijmrtjournal.com**
Contact Number	**8950448770, 9996906285**
Country of Publication	**India**
Editor-in-Chief	**Dr. Mandeep Kaur & Dr. Indrajeet Ramdas Bhagat**

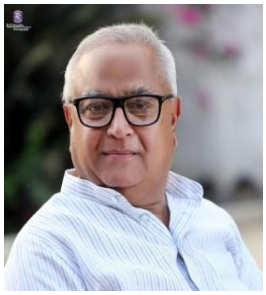

मा. आ. श्री. प्रकाश सोळंके
अध्यक्ष
मराठवाडा शिक्षण प्रसारक मंडळ,
छत्रपति संभाजीनगर

मा. आ. श्री. सतिश चव्हाण
सरचिटणिस
मराठवाडा शिक्षण प्रसारक मंडळ,
छत्रपति संभाजीनगर

शुभकामना संदेश

हमें बडी प्रसन्नता हो रही है कि सांस्कृतिक कार्य विभाग, **महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई** तथा **हिंदी विभाग, यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई, जिला-बीड़** के संयुक्त तत्वावधान में **'समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श'** विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन सोमवार, दि. 4 मार्च 2024 के सुअवसर पर संपन्न कर रहे हैं। साथ में राष्ट्रीय संगोष्ठी के विचार-विमर्श पर गवेषणात्मक विशेषांक भी प्रकाशित हो रहा है। प्रस्तुत विशेषांक में हिन्दी के विद्वतजनों के अपने विचार तथा साहित्यिक मान्यताओं के आकलन का समावेश हुआ है, जो नयी सदी के हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता और साहित्यिक सरोकार दर्शता है।

यह संगोष्ठी सामाजिक समानता प्रस्थापित करने की दिशा में मददगार साबित होगी । हाशिए पर होनेवाले समाज की भाषा, संस्कृति, सभ्यता, साहित्य तथा उनकी समस्याओं और समाधान से संबंधित अपनेज्ञान, अनुभव और विचारों को साझा करने के लिए प्रख्यात प्रोफेसरों, शोधार्थी, अकादमीक क्षेत्र से जुडे विद्वानोंकेबीच बातचीत के लिए मंच प्रदान करनेका एक उत्कृष्ट अवसर प्रदान कर रही है।

हम, मराठवाडा शिक्षण प्रसारक मंडल, छत्रपति संभाजीनगर, शिक्षासंगठन की ओर से एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी और विशेषांक की सफलता और सार्थक परिणाम हेतु शुभकामनाएँ देते हैं।

मा.प्रधानाचार्य का अभिमत....!

डॉ. शिवदास शिरसाठ

प्रधानाचार्य

मुझे यह जानकारी देते हुए ख़ुशी महसूस हो रही है कि सांस्कृतिक कार्य विभाग,महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी, मुंबई तथा हिन्दी विभाग, यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई के संयुक्त तत्वावधान में **'समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श'** विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन सोमवार, दि. 4 मार्च 2024 के सुअवसर पर संपन्न होने जा रहा है। संगोष्ठी में आप सभी उपस्थित विद्वतजनों का महाविद्यालय की ओर से स्वागत करता हूं।

किसी भी राष्ट्र की भाषा, साहित्य,समाज और संस्कृति की पारस्परिकता से राष्ट्रीयता की भावना प्रगट होती है। भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास प्रमाणित करता है कि हिन्दी भाषा के माध्यम से ही राष्ट्रीय एकता की संरचना का निर्माण हुआ है। उसने आजादी आंदोलन में सभी भारतियों को आपस में जोडकर **'हम सभी भारतीय एक हैं!'** को दर्शाया है। स्वतंत्रोतर भारत में संविधान द्वारा सभी को सामनाधिकार प्राप्त हुए , फिर भी समाज के कूछ समुदाय उपेक्षित रहे।यही से अस्मितामूलक विचार का प्रारंभ हुआ। यह वैचारिक आंदोलन अनेक मान्यताओ को अपने में समेटकर विकसित होता गया। उत्तरशति के युग में उन्होंने अपनी चेतना को विश्व प्रभाव के साथ जोडकर अभिव्यक्त किया। आज समकालीन हिन्दी साहित्य में चित्रित भारतीय समाज की अस्मितामूलक संवेदना पर विचार हो रहा है।

इस विचार-विमर्श के बहाने मानव जाति के संरक्षण के लिए मानवीय प्रयासों को जागृत करने की एक महत्वपूर्ण पहल हो रही है। मुझे उम्मीद है कि यह संगोष्ठी नयी विचारधारा के लिए एक व्यापक साहित्यिक मंच प्रदान करेगी और कुछ सकारात्मक उपलब्धियाँ लाने में काफी मददगार साबित होंगी।

प्रस्तुत विषय की कल्पना को मूर्त रूप देने में महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी, मुंबई के कार्याध्यक्ष मा. डॉ. शीतलाप्रसाद दुबे, सहनिदेशक मा. श्री. सचिन निंबाळकर तथा मराठवाडा शिक्षण प्रसारक मंडळ, छत्रपति संभाजीनगर के अध्यक्ष मा. आ.श्री. प्रकाश सोळंके, सरचिटणीस मा. आ. श्री. सतीश चव्हाण,महाविद्यालय विकास समिति के मा.श्री. दत्तात्रय पाटील,मा.डॉ.नरेंद्र काळे तथा सभी पदाधिकारियो की सहायता और मार्गदर्शन रहा है। अतः आपके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।

मैं, प्रस्तुत संगोष्ठी और उस पर आधारित विशेषांक के प्रकाशन हेतु शुभकामनाएं देता हूं!

डॉ. शिवदास शिरसाठ

प्रधानाचार्य

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संपादकीय.....

कार्यकारी सम्पादक

डॉ. रमेश शिंदे **डॉ. अरविंद घोडके** **प्रा. सुनिल शिंदे**

हिन्दी विभाग

यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई, जिला-बीड़

भारतीय साहित्य की विशाल परंपरा में अस्मितामूलक साहित्य का निर्माण उत्तराधुनिक युग की उपलब्धि है। भारतीय समाज के हाशिए पर माने जाने वाले वर्गों ने अपने अस्तित्व को सामाजिक अस्मिता के रूप में देखने का प्रयास किया। बहुसंख्य जनता का अभय स्वर जो आज तक मौन रहा था उसमें वाणी भरने का काम उत्तर शती के वैश्विक प्रभाव ने किया। भारतीय समाज और साहित्य में मुख्य धारा के माने जाने वाले वर्गों ने साहित्य तथा संस्कृति को अपनी विरासत के रूप में समझा था किंतु युगीन प्रभाव ने साहित्यिक परंपरा में अस्मितामूलक विचारधारा का नवाचार प्रस्तुत किया। साहित्य निर्माताओं ने इसका स्वागत किया और नवीन रूपों का साहित्य निर्माण किया,जिस कारण सर्वहारा वर्ग की भावना तथा संवेदना की साहित्यिक अनुगूंज सार्वभौमिक अभिव्यक्ति का मुख्य आधार रही। इतिहास के अनेक सदियों तक उपेक्षित जीवन जीने वाली अनेक जनजातियां अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए संवेदनशील रही। भारतीय समाज के दलित, आदिवासी और नारी ने अभिव्यक्ति के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अपने जीवन सच्चाई को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया। साहित्यिक समाज ने नई संवेदना और विचारधारा के साहित्य का एक ओर स्वागत किया, तो दूसरी ओर लेखक की ऊर्जा को बनाए रखा। परिणाम स्वरूप प्रेरणा स्रोत पाठक तथा समाज ही रहा। समाज में पनपती हुई विषमता तथा शोषण की दर्दनाक संवेदना साहित्य निर्माण की भूमिका निभाती रही। मानव समाज में धर्म, जाति, वंश, वर्ण, लिंग आदि के आधार पर उपेक्षित दृष्टि का जीवन यापन करती हुई अनेक सामाजिक इकाइयां अभिव्यक्ति के सामाजिक खतरे उठाने के लिए तैयार रही। वे अब अपना सामाजिक अस्तित्व तलाशती हुई स्वतंत्र अस्मिता उजागर कर रही है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य जगत में विविध रूपबंधों का आधार ग्रहण करते हुए विविध आयाम की रचनाधर्मिता निर्माण कर रही है।

भारतीय स्वतंत्रता और संविधान के निर्माण से समाज के प्रत्येक वर्गों को व्यापक सामाजिक मान्यता प्राप्त होती रही। जिससे सार्वजनिक चेतना का निर्माण हुआ। पत्रकारिता तथा साहित्य ने समाज को अधिक जागरूक

बनाया। इसी में वैश्वीकरण का प्रभाव अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नया निखार और आत्म सम्मान की दिशा में नई पहल दर्शाता रहा। अपनी भाषा, समाज, सभ्यता तथा संस्कृति की अनुगुंज वैश्विक धरातल पर स्वीकारी जाने लगी। वर्तमान मीडिया तथा अनुवाद के द्वारा भाषागत सीमाएं समाप्त होने लगी और विचारशीलता का पारस्परिक लेन-देन होता रहा। दलित आदिवासी तथा नारी स्वर के नूतन साहित्य का अनुकरण करते हुए अन्य वर्ग भी अपनी कलम चलते रहे हैं। जिसमें भारतीय समाज के अल्पसंख्यक, किन्नर, कृषक, अपाहिज- विकलांग, बालक, खेतिहर, मजदूर आदि आदि प्रमुख हैं। अपने जीवन की निजी अनुभूतियांअब व्यापक रूप से सामाजिक अभिव्यक्ति का आधार बनने लगी और समकालीन कलमगार अपनी अपनी अस्मिता की खोज करने लगे।

समकालीन हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक विमर्श विषय के विशेषांक निर्माण में महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी,मुंबई के कार्याध्यक्ष मा. डॉ. शीतलाप्रसाद दुबे तथा सह निदेशक मा. श्री. सचिन निंबाळकर का विशेष योगदान रहा है। अकादमी के सदस्य मा. डॉ. सतीश यादव तथा मा. डॉ. भारती गोरे ने बड़ी सहायता दर्शाते हुए अपना योगदान दिया। आप सभी विद्वत जनों के प्रति हिंदी विभाग धन्यवाद ज्ञापित करता है।

मराठवाड़ा शिक्षण प्रसारक मंडल, छत्रपति संभाजीनगर के अध्यक्ष मा. आ. श्री. प्रकाश जी सोलंके तथा सरचिटणीस मा. आ. श्री. सतिश जी चव्हाण के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। जिनकी ऊर्जा तथा निर्देशन से साहित्यिक सेवा का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। केंद्रीय कार्यकारिणी तथा महाविद्यालय विकास समिति के सदस्य मा. श्री. दत्तात्रय जी पाटिल,मा. डॉ. नरेंद्र जी काळे सर तथा महाविद्यालय विकास समिति के सभी मान्यवर पदाधिकारी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। महाविद्यालय के प्रधानाचार्य तथा प्रस्तुत विशेषांक के अतिथि सम्पादक मा. डॉ. शिवदास जी शिरसाठ का धन्यवाद ज्ञापित करना आवश्यक है क्योंकि आपने विभाग के हौसले को बनाए रखा। विषय की रूपरेखा तथा गरिमा को बढ़ाने में श्रद्धेय मा. डॉ. चंद्रदेव कवडे, मा. डॉ. नारायण शर्मा, मा. डॉ. माधव सोनटक्के, मा. डॉ. गणेश राज सोनाळे, मा. डॉ. सुधाकर शेंडगे का विशेष योगदान रहा है। सभी गुरु जनों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। मित्रवर मा. डॉ. गोविंद बुरसे, मा. डॉ. रमा नेवले, मा. डॉ. सुषमा देवी, मा. डॉ.एस.जे. जहागिरदार, मा. डॉ. मुरलीधर लहाडे, मा. डॉ. गोपाल भोसले, मा. डॉ. प्रकाश खुले, मा. डॉ. अविनाश कासण्डे, मा. डॉ. माणितकुमार वाकळे, मा. डॉ. वीरश्री आर्य, मा. डॉ.बायजा कोठुले का सहयोग मिलता रहा है। अस्तु, हिन्दी विभाग के सहयोगी मा. डॉ.अरविंद घोडके तथा मा. प्रा.सुनिल शिंदे एक मेधावी तथा होनहार सहयोगी हैं जिनकी कडी मेहनत तथा संपर्क सूत्र से विशेषांक प्रकाशित हो सका।

प्रस्तुत विशेषांक के सम्पादक मा. श्री.मनदीप कौर तथा मा. डॉ. इंद्रजीत भगत, तरण प्रकाशन, नई दिल्ली का विशेष आभार प्रकट करता हूं, जिन्होंने कल्पना के मूर्त रुप दिया। अकादमीक स्तर के विद्यार्थी, शोधार्थी, प्राध्यापक तथा सुधि पाठकों के सामने विचार- विमर्श हेतु विशेषांक प्रस्तुत करता हूं।

INDEX

Sr.No.	Title	Page No.
1.	**सुनिता जैन के काव्य मे स्त्री विमर्श** *प्रो. डॉ. वंदन बापुराव जाधव*	1
2.	**समकालीन हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श** *डॉ. मजीद मियाँ*	5
3.	**'एक और पांचाली' में चित्रित स्त्री विमर्श** *प्रा. जाधव जे. बी.*	12
4.	**गोदान में कृषक जीवन** *डॉ. मुरलीधर अच्युतराव लहाडे*	16
5.	**श्री राम जन्मभूमि भारतियों की अस्मिता** *प्रा. परशुराम प्रभु राठोड*	19
6.	**समकालीन हिंदी साहित्य में मजदूर तथा कृषक जीवन** *प्रा. गोपाळ शंकरराव भोसले*	26
7.	**हिंदी साहित्य में नारी अस्मिता** *डॉ. राम सदाशिव बड़े*	28
8.	**समकालीन हिंदी साहित्य में में किन्नर विमर्श** *डॉ. विद्या बाबूराव खाडे दलवे*	31
9.	**समकालीन हिंदी साहित्य मे नारी अस्मिता और अभिव्यक्ति के विभिन्न आयाम** *आशा वैजनाथ फड*	34
10.	**शिवानी के उपन्यासों में नारी** *डॉ.पुंजाराम रूपचंद भगोरे , डॉ.सैराज अन्वर तडवी*	39
11.	**स्त्री विमर्श की हस्ताक्षर : मेहरून्निसा परवेज** *प्रा डॉ द्वारका गिते-मुंडे*	42

12.	**समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर / थर्ड जेंडर की आस्मिता** *विजय हरिश्चंद्र सोमवंशी*	48
13.	**समकालीन हिंदी आदिवासी साहित्य और विमर्श** *प्रो. डॉ. शेषराव लिंबाजी राठोड*	51
14.	**साहित्येतिहास में अस्मिता-विमर्श की दस्तक** *डॉ. अरुण प्रसाद रजक*	54
15.	**नासिरा शर्मा के 'अक्षयवट' उपन्यास में चित्रित स्त्री विमर्श** *योजना रामकिशन नाकाडे*	58
16.	**समकालीन हिंदी कहानी में वृद्ध विमर्श** *डा. संतोष रघुनाथराव रायबोले*	61
17.	**असंभव कहानी संग्रह : नारी के अंतर्मन की व्यथा** *प्रोफ़ेसर डॉ.अर्चना दिनेश परदेशी*	65
18.	**समकालीन हिंदी आदिवासी साहित्य में अस्तित्व और अस्मिता का स्वर** *डॉ. प्रकाश बन्सीधर खुळे*	68
19.	**समकालीन हिंदी साहित्य में मजदूर तथा कृषक जीवन** *श्री. तांबुरे जयचंद अनंतराव*	72
20.	**किन्नर की अस्मिता (खलीक बुआ के विशेष संदर्भ में)** *डॉ. बायजा महादेव कोटुळे (साळुंके)*	76
21.	**समकालीन हिंदी साहित्य : किन्नर संघर्ष** *प्रा.डॉ.शिवाजी वडचकर*	80
22.	**ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'अब और नहीं' काव्य संग्रह में अभिव्यक्त दलित अस्मिता** *प्रोफे. डॉ. संजय जाधव*	83
23.	**समकालीन हिंदी कहानियों में किन्नरों की अस्मिता** *प्रा. डॉ. वीरश्री व्ही. आर्य*	91
24.	**सत्तरोत्तर कवयित्रियों की कविता में नारी विमर्श** *प्रा. डॉ. सिंधू हाळदे*	95

25.	**समकालीन हिन्दी साहित्य में नारी अस्मिता और विमर्श** *डॉ. विनोद श्रीराम जाधव*	103
26.	**भगवानदास मोरवाल की कहानियों में दलित संवेदना** *प्रा. डॉ. अशोक शामराव मराठे*	109
27.	**प्रभा खेतान लिखित पीली-आंधी में अभिव्यक्त नारी चेतना** *प्रा. डॉ. चित्रा धामणे*	113
28.	**सुधा अरोड़ा की कहानियों में स्त्री जीवन के विविध आयाम** *शिप्रा देवी*	116
29.	**मेहरुन्निसा परवेज़ के 'कोरजा' उपन्यास में आदिवासी विमर्श** *डॉ.बाबासाहेब रसूल शेख*	124
30.	**दलित हिंदी काव्य की सामाजिक अस्मिता** *प्रा डॉ गजानन सवने, प्रो.(डॉ) प्रकाश खुळे*	127
31.	**नारी विरोधी सामाजिक पंगुता का यथार्थ दर्शन करती प्रभा खेतान** *डॉ अरविंद अंबादास घोड़के*	131
32.	**प्रभा खेतान के उपन्यासों में प्रगतिशीलता** *प्रा.व्ही.डी.कापावार, प्रो.डॉ.एस.पी.वटटमवार*	135
33.	**भारतीय संविधान एवं महिलाएं** *डॉ.संजयकुमार हानुमंत जाधव*	139
34	**तीसरी ताली, किन्नर और समाज** *प्रा. विट्ठल केशवराव टेकाले*	143
35.	**'गुलाम मंडी' में चित्रित किन्नर संवेदना** *डॉ. मिर्झा अनिसबेग रज्जाकबेग*	146
36.	**हिंदी दलित साहित्य की प्रासंगिकता** *डॉ. महेंद्रकुमार रामचंद्र वाढे*	150
37.	**मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा में स्त्री विमर्श** *प्रो. डॉ. शिवाजी वैद्य*	155

38.	चिकित्सा क्षेत्र के तकनीकी अविष्कार और कन्या भ्रूणहत्या *डॉ. संजय गंगाराम सुरेवाड*	160
39.	हिंदी उपन्यासों में व्यक्त आदिवासी विमर्श *प्रा. डॉ. संगीता लोमटे*	164
40.	समकालीन हिंदी साहित्य में नारी अस्मिता और अभिव्यक्ति की विभिन्न आयाम *डॉ नगरत्न एस्*	167
41.	विकलांग विमर्श और वीमा नाटक *डॉ ज्योति संभाजीराव मुंगल*	170
42.	समकालीन हिंदी आदिवासी साहित्य में अस्तित्व और अस्मिता का स्वर *प्रिती भिमराव राऊत*	176

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

सुनिता जैन के काव्य मे स्त्री विमर्श

प्रो. डॉ. वंदन बापुराव जाधव

हिंदी विभाग

ज भ शि प्र मंडळाचे कला एवं विज्ञान महाविद्यालय पाटोदा जि बीड महाराष्ट्र -414204.

हिंदी समकालीन साहित्य में मानवीय संवेदनाओं का मुख्य आधार लेकर काव्य चेतना का निर्माणकरने वाली बहुआयामी साहित्यिक सुनीता जैन के लेखन की केंद्रीयता मेंउनकी कविता ही मुख्य रही है । कदाचित उनकेसाहित्यकार की प्रकृत भूमि रही है ।समकालीन साहित्य में सुनीता जैन का विशिष्ट स्थान रहा है ह।नारी जीवन की असंख्य जटिलताओं, उसके अनंत संघर्षों को उन्होंने कई कविता में रेखांकित किया है। उनके यहाँनारी चाहे माँ ,बहन ,पत्नी,प्रियसी, चाची, नानी, दादी आदि किसी भी रूप में अन्य हो उसके जीवन संघर्षों के बीच जीने के आशा का बचा रहना उसकी जीजीविशा का परिचय देता है| अपने परिवार की नारियों के मार्मिक दशा की चर्चा से शुरुआत करते हुए कवियित्री की चिंता समाज के सभी नारियों की चिंता महज नारी सुधार तक सीमित न रहकर उन्होंने इसे एक मार्मिक समाधान देने की कोशिश की है|

लेखिका ने अपने अनेक कविता में स्त्री जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण पहलुओं की चर्चा, विचार विमर्श किया है| नारी के अस्तित्व एवं अस्थिरता पर मंथन किया है | वह चाहती है की, नारी को समाज व परिवार में वही सम्मान मिले, जिसकी वह हकदार हैं| प्रकृति की सुंदरताम कृतियों में एक कृति है नारी| नरी के बगैर संसार की कल्पना ही नहीं की जा सकती | हिंदी साहित्य में एक हजार साल के इतिहास में सबसे अधिक नारी चेतना आधुनिक काल के कवियों ने नारी को उपभोग की वस्तु नहीं माना बल्कि उन्हें पुरुषों के समांतर ला खड़ा किया है|

नारी जीवन की असंख्य जटिलताओं ,उसके अनंत संघर्षों की उनकी कई अन्य कविताएँ भी अपना विषय बनाती है |पर नारी की समस्याओं को उठाती हुए मात्र नारी रहे नारी नहीं रह जाती, तटस्थ भाव से ऊनके मूल कारणों को टटोलती हुए उसकी स्वालंबी होने की चाह को सही परीक्षण परिप्रेक्ष्य में रखकर देखती है| नारी स्वतंत्रता के नाम पर चलनेवाली मन मर्जी उन्हें कचोटती है| यह उस सहजता का परिणाम है कि उनकी कविताओं की नारी अपने भीतर की अपार शक्ति को पहचानकर अपने आत्मविश्वास और मनोबल के सहारे हर स्थिति परिस्थिति का सीधे मुकाबला करती है| उनकी कविता सारी में नारी का आत्मविश्वास अप्रतिम है_

"मैं दावा करती हूँ की | मुझे कुछ नहीं होना है, कि

मैं जिंस भी रूप |जिस शब्द में व्यक्त हूँ|

कुछ और होकर मुझे| कुछ और नहीं होना"।1

संबंधों के टूटने में विलक्षण दुख, जो पूरे व्यक्तित्व को बहुत समय तक व्यतीत किए रहता है। लेकिन इन सारे दुख के बावजूद अपने अकेले मन को अपनी हालात पर अखिलेश संभालने का दृढ संकल्प है-

"औरत के दिल से| पुरुष का उत्तरना

जब भी हो। अंतीत होता है ....|प्रमाण लो"! 2

सुनीता जैन जी ने सारी कविता में नारी अस्मिता के प्रश्न को उठाया है |वह पुरुष को चेताते हुए कहती हैं-

"वही मेरा सबसे कहना है। उस पूरेमौन मे

तुम्हारे समूचे होने को ही। उलांध जाना है"|3

सुनीता जैन की कविता का स्त्रीवादी स्वर् जहाँ कहीं भी आया है, वह पुरुष विरोध में नहीं है अपितु हर जगह एक सामंजस्य की तलाश की गई है | इस स्थिति को बहुत सुन्दर रूप में चुनौती कविता में दर्शाती है जहाँ स्त्री के सामने प्रिय और कविता में से किसी एक को चुनने का प्रश्न उठता है तो वह प्रेम को चुनकर अपनी कविता कविता भी बचा लेती है-

"स्त्री उठी |और घर के बाहर। रखाई सारी कविता

इस तरह बचाया स्त्री ने उसे। और बचाई। अपने भीतर

कविता चुनौती दर चुनौती । हर जन्म में" । 4

नारी वादी चिंतन में यह कथन बार बार दोहराया जाता है की स्त्री पैदा नहीं होती ,बनाई जाती है । उसकी सहजता को बचपन से ही इस तरह अनुकूलित किया जाने लगता है कि वही एक दमित व्यक्ति के रूप में जीवन बिताना ही अपनी सहज भूमिका मानने लगे । वहाँ उसे कृत्रिम विनम्रता एवं मुस्कान का झूट ओढना पड़ता है । जब वह अपना रोना गीतों में ढालने को विवश हो जाती है । इस स् थिति को कवित्री अपने जिसदिन कविता में व्यक्त करती है ।

"जिसदिन स्त्री रोई। उस दिन उसने बोला ना झूठ पहला

जिसदिन उसने झूठ बोला। उस दिन सीखा उसने

हंसकर हाँ जी हाँ जी कहना। जिसदिन हाँ जी बोल स्त्री

उस दिन याद आया उससे। गीत बाबुल का" । 5

बाबुल के गीत ,तीज के गीत या अन्य लोक गीत स्त्री मन की घुटन की सामूहिक कलात्मक अभिव्यक्ति ही तो है।

समाज में नारी पर सबसे अधिक बंदिशें लगाई गई है| उसे ऐसा करना चाहिए, ऐसा नहीं करना चाहिए। उसका खान पान, पहनाव, रहन सहन, बात व्यवहार सभी के लिए निर्देश दिए गए हैं। नारी को त्याग की अकेलापन की आग में झुलसने के लिए न छोड़ा जाए। ऊसे ही बार बार शोषित प्रताड़ित न किया जाए|इसलिए सुनीता जैन जी अपनी क्षमा कविता में कहती हैं ।

"प्रश्न मात्र इतना। यह देह मेरी रस लीला। अपने पति के निति समस्त

निर्मल प्रेम में। छोड़ दिया इसे अपने। गोखरू काटे सा बीच राह में...

कैसे निर्वाह करे तो। इस कलियुग में। कोई तख्ता निर्वासित नारी ?"। 6

शारीरिक उत्पीड़न झेलती स्त्री का जीवन दुशावर होते देखते, उसकी पीड़ा को शब्दों में गूंथते हुए कवयित्री चुल्लू कविता में आगे गंभीर होकर यह कहती नजर आती है।

"पुरुष जानता ही नहीं। कि वह जानता नहीं

स्त्री का मन। वह छूता है असावधानी से। उसका मन"। 7

पुरुषों के लिए सदाचार, मर्यादा, नैतिकता, आदर्श आदि का कोई अर्थ नहीं होता। जबकि ये नियम स्त्री अनुशासित कर उसको अस्तित्वहीन वाणी बनाते है। ऐसे प्रश्नों की ओर ये कविताए पाठक का ध्यान आकर्षित करती है।स्त्री की पिडित स्थितियों को बहुत गहराई से उद्घाटित करती ये कविता हमें बताती है कि समाज में स्त्री के लिए कितनी इज्जत है। अहं भाव से भरे स्त्री और पुरुष के मन के अंदर का क्या चलता रहता है। दुख कविता में कवयित्री ने इसे सही पकड़ा है। ये पंक्तियाँ इसका प्रमाण है ।

"पुरुष और स्त्री में। झगड़ा बस इतना भर सा

पुरुष चाहता मान जाये स्त्री। स्त्री चाहती है त्याग जाए नहीं स्त्री का"। 8

नई विचारधारा के रूप में इधर नारी मुक्ति के प्रसंग में एक आंदोलन का स्वरूप ले लिया है। प्रत्येक संदर्भ में नारी को पुरुष के समतुल्य अधिकार मिलना चाहिए, इस सत्य को नकारना लगभग असंभव सा है। समाज को संतुलित ढंग से चलाने के लिए पुरुष और स्त्री के मध्य किसी प्रकार का भेदभाव उचित नहीं है। विमर्श के इस दौर में कुछ सावधानियां भी अपेक्षित है। यह इसलिए कि नारी बदलाव की दिशा में फिर किसी संकट में न फंस जाए। कवयित्री ने इस तर्क को लेकर कई तरह से सोच विचार किया है। उनसे अधिक इस बारे में कौन चिंतन कर सकता है। नारी मुक्ति शीर्षक कविता में, उनके विचार जिस तरह मुखर हुए हैं ,वह विचारणीय है।

"औरत घर से बाहर निकली

उन्हें हाथों में झाड़ू भी, चप्पल और झंडे थे।

कहीं कहीं कविता की काफी थी।

शाम को औरतें लौट रही थी

लेकिन घर नहीं..." 9

सुनीता जैन की कविता एक भारतीय अंदाज में अपनी बात कहती है। रोज़मर्रा की जीवन की अस्तव्यस्तताओ, कालगत दवाओ,सामाजिक सांस्कृतिक तंतु विन्यास मे जिन विसंगतियो, जटिलताओं, प्रवंचनाओ,दूर भी संधियों विडंबनाओं, विरोधाभासों एवं अंतर्विरोधी की जिंस सोच, समझ और दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया है।

सुनीता जैन के जीवन को उनकी समग्रता में आंकने का प्रयास उनमें साफ झलकता है। किसी पक्ष विपक्ष विशेष में अटके भटके बिना वे अपनी विविधता बनाए रखती है। और अपनी गहरी पकड़ पर आंच नहीं आने देती। उनके भीतर का संवेदनशील कवि कब और किस विषय को लेकर आंदोलित हो उठे गा, यह स्वयं भी नहीं जानती। सुनीता जैन की कविताएँ गहरी संवेदना में डूबकर लिखी गई कविताएं है ।जहाँ अनुभूतिजन्य भाषा बाकपन

सुनीता जैन की कविताओं को एक सगा पन देता है।इधर कहानियों से कहानीपन और कविताओं से समापन समास होता जा रहा है

संदर्भ:-

1. सॉरी इस अकेले तट पर संख्या - प. सं. 88

2. मुझे झेल न पाए कौन सा आकाश - प. सं. 55

3. सॉरी इस अकेले तार पर - प. सं. 89

4. चुनौती प्रेम से स्त्री - प. सं. 27

5. जिस दिन प्रेम में स्त्री - प. सं. 59

6. क्षमा सुनिता जैन - प. सं. 176

7. चुल्लु रसोई की खिड़की - प. सं. 124

8. दुख रसोई की खिड़की - प. सं. 124

9. नारी मुक्ति कुरबक - प. सं. 79

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श

डॉ. मजीद मियाँ

प्राध्यापक, हिंदी विभाग

श्री अग्रसेन महाविद्यालय, दालखोला, उत्तर दिनाजपुर

सारांश :

साधारणत: एक आम आदमी पेट भरने के साथ-साथ अपने जरुरतो की समस्या को लेकर ही जीवन भर दुखी और संघर्षरत रहता है. जिसके जीवन का अर्थ ही उसके लिए रोटी एवम संसाधनो का उपार्जन है. उसके हल न होने की वजह से वह हमेशा खिन्न मन और परेशान रहता है. वह हर महिने अपने घर का बजट बनाता है जो देश के बजट के समान सदा घाटे का ही रहता है. तब उस घाटे के बजट को दूर करने के लिए जो-जो साधन सोचे जाते हैं, वे आधे महिने में ही जवाब दे जाते हैं, तब आधे पेट खाकर भरपेट वाली बनावटी डकार लेना या फिर खाली पेट बैठकर भरी-भरी ऑखो से सुने आसमान को देखते रहने के अलावा कोई दूसरा उपाय भी तो उसके लिए नहीं है. देखा जाए तो भूख आदमी से सब कुछ करवा डालती है, परंतु सत्ताधारी वर्ग एवम व्यवस्था इसे समझ नहीं सकता. आम आदमी का कल्याण जो आज सत्ता सरकार का अहम मुद्दा बना हुआ है उसके लिए अनेक योजनाएँ बनाए जाने पर भी उसकी स्थिति बहुत ही दयनीय एवम शोचनीय है. सत्ता आम आदमी की चिंता करती है परंतु वास्तव में सत्ताधारी लोग आम आदमी को इतना व्यस्त रखना चाहते हैं जिससे वह उसकी कारगुजारियो के झंझटो से बाहर सोच ही न सके क्योंकि यदि उसे सोचने का वक्त मिलता है तो उसके सोच का दूरगामी परिणाम क्या हो सकता है.... इसे वे भलिभांति जानते हैं, इसलिए उसे रोटी, कपड़ा और मकान आदि जरुरतो की चीजे जुटाने एवम खा-पीकर सो जाने में ही वे व्यस्त रखने में हितकर समझते हैं. अभावग्रस्त-संकटग्रस्त आम आदमी जीवन की छोटी-मोटी जरुरियातो के लिए संघर्ष करता रहता है, जिसमे वह कभी टूटता है, तो कभी आक्रोश से भर जाता है.. एक श्रमिक अपने जीवन को बहुत ही उपेक्षित जीता है जबकि कारखाने इन्ही की बदौलत चल रहे हैं. इस समस्या के निदान के नये उपचार भी हैं परंतु सत्ताधारी ऐसा नही होने देंगे. आम आदमी किसी भयंकर रोग से ग्रस्त हो जाने पर सरकारी अस्पतालो में इन्हे क्या-क्या सुविधा माफ करे यातनाऐ मिलती है उसे सोचकर ही मन कॉप उठता है, पता नहीं सत्ता वालो को खबर है या नही होने का दिखावा करते हैं. एक साधारण आदमी हमेशा यह सोंचता रहता है कि अगले महिने मे घर का खर्च कैसे चलेगा, बिमार पडने पर अस्पताल खर्च कौन देगा? दवाए, ऑपरेशन कहॉ से करुंगा इतना इंतजाम? पता नहीं कितनी तारीख है? घर पर तो दो-चार सौ भी नहीं होंगे. बैंक में जितने पैसे थे, कौन करेगा देखभाल मेरी इत्यादि.....

मुख्य बिन्दू : साहित्य, विमर्श, उपाय.

प्रस्तावना :

आज का समय यानि कि आधुनिक युग भले ही विज्ञान का युग है, इस विज्ञान के युग में समाज की आर्थिक स्थिति अच्छी हो सकती है परंतु यह बात हमारे आज के माफ करे प्रगतिशील भारतीय समाज पर पूर्णरुप से लागू नहीं होती है. यहॉ जो लोग अमीर है, वे और अधिक अमीर होते जा रहे हैं और जो लोग गरीब हैं वह और भी गरीब होते जा रहे हैं. किसी के यहॉ अन्न की बर्बादी हो रही है तो किसी को एक वक्त का भोजन भी नसीब नही होता, इसी से स्पष्ट होता है कि यहॉ पर कितनी बडी आर्थिक असमानता है. एक तरफ समाज का आम आदमी

बहुत अधिक अभाव में त्रस्त है तो दुसरी ओर समाज का उच्च वर्ग ऐश्वर्य जीवन बीताने मैं मस्त है. साधारण लोगो के पास आज भी सर छिपाने को घर नहीं है, जबकि उच्च समाज के लोग 'महलो' में रह रहे हैं और आम आदमी का खून चूस रहे हैं. अर्थ की विषमता ने समाज का हास करते हुए सामाजिक चेतना को कितना कुचल डाला है, यह अनुमान लगाना भी कठीन नही है. आर्थिक आधार पर वर्ग वैषम्य अप्रत्याशित गती से बढता जा रहा है जिससे समाज में एक बहुत बडी दरार पडी है और वह दीन-प्रतिदिन चौडी होती जा रही है. समाज में उसी व्यक्ति को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है जिसके पास आज के समय में पैसा है. आम आदमी को नहीं क्योंकि आज की संस्कृति ने अर्थ को ही प्रधानता दे रखी है. आज अर्थ ही धर्म बन गया है, मानवता तो जैसे गौण हो गयी है. यह तो सर्व विदित ही है कि भारत एक लम्बे अरसे तक विदेशियो के गुलामी की जंजीरो में जकडा रहा, जिसकी वजह से न केवल आर्थिक क्षेत्र में भारतीय साधारण लोगो की दशा चिंतनीय बनी बल्कि उद्योगो पर भी व्यापक प्रभाव पडा. ब्रिटिश सरकार ने हमेशा ही अपनी नीति – 'डिवाईद एण्ड रुल' और अपने इस लक्ष्य के कारण ही उन्होने अपनी शोषण प्रवृत्ति निरंतर स्थिर रही थी. जिससे साधारण लोगो की हालत दिन-ब-दिन शोचनीय होती गयी. उन्हे जमींदारो, तालुकदारो तथा महाजनो की शरण लेनी पडी. इस प्रकार यह निर्विवाद रुप से सत्य है कि साधारण लोगो की आर्थिक स्थिति निरंतर गिरती चली गयी और एक दिन ऐसा भी देखा गया जब वे मजदूर बन गए. स्वतंत्रता के बाद भारत वर्ष में आर्थिक जागृति उत्पन्न हुई. समाजवादी विचारो का प्रचार एवम प्रसार हुआ. रुस में त्वरित प्रगति से प्रभावित होकर भारत ने भी इस क्षेत्र में योजनाबद्ध कार्यक्रम प्रारम्भ किए. भारत और पाकिस्तान के विभाजन द्वारा भारत की अर्थ व्यवस्था को बहुत ही बडी हानी हुई और उसका शिकार बना साधारण लोगो. इस हानी का मुकाबला करने के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम स्वाभाविक था और ऐसा सता द्वारा किया भी गया परंतु सत्तधारी ने इस योजनाओ का लाभ साधारण लोगो तक पहुचने नही दिया. हमारे देश में रहनेवाले आम आदमी की विचारधारा थी कि विदेशी राज्य के समाप्त होने से आर्थिक कठिनाईयॉ भी दूर हो जाएंगी, लेकिन आजादी के बाद यह महसूस किया गया कि आर्थिक अभावो को दूर करने के लिए कडे प्रयास की आवश्यकता है. कुछ वर्षो के पश्चात सरकार ने भी आम आदमी की आर्थिक स्थिति सुदृढ बनाने के लिए जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करके 'भूमि सुधार' कानून पास किया. जमींदारी समाप्त हो जाने से आम आदमी में किसानो में जागृति की भावना पैदा हुई. मजदूरो को 'फैक्ट्री एक्ट' पास होने से सुविधाए मिलनी शुरु हो गयी. इससे उनके आर्थिक स्तर में सुधार हुआ. इसके बाद सरकार ने 'पंचवार्षिक' योजनाए बनाई. सरकार के इन प्रयत्नो के बाद भी समाज में सभी वर्गो को समान रुप से लाभ प्राप्त नहीं हुआ. आम आदमी भारत के हर स्थान पर आर्थिक विपन्नता के विराट दानव के पंजो में जकडे हुए हैं. इसी के प्रभाव से उनकी स्थिति शोचनीय बनी हुई है. ध्यानपुर्वक देखे तो इस वर्ग का उदय परिस्थितियो का उपहार है. उच्च वर्ग के पास इतना पैसा है कि वह इसके सहारे सब कुछ खरीद सकता है. दूसरी ओर निम्न वर्ग है जो श्रमजीवी है वहॉ सब कामगार होते हैं कोई किसी पर निर्भर नहीं रहता परंतु आम आदमी की आर्थिक स्थ्ति बिल्कुल खोखली होती है, जिसे वह कुलिनता और मर्यादाओ से भरने की कोशिश करता है अर्थात वह जीवन भर सिर्फ संघर्षरत बना रहता है. साधारण आदमी के जीवन की चर्चा एवम मुल्यांकन साहित्यिक दृष्टि से करे तो देखते हैं कि स्वतंत्रता के पुर्व से लेकर आज यानि कि वर्तमान समय तक के आम आदमी की समस्याओ का, विभिन्न साहित्यकारो ने अपने रचना के माध्यम से उजागर करते रहे हैं. आज हम समाज मे व्याप्त साधारण आदमी के समस्याओ का वर्गीकरण करे तो देखते है कि हमारे यहॉ जैसे दलित, किसान, स्त्री, आदिवासी एवम धार्मिक आदि समस्याओ से ग्रसीत है. वर्तमान समय मे इन निम्नलिखित समस्याओ को उठाने एवम चर्चा करने को हिंदी साहित्यिक भाषा मे विमर्श कहा जाता है.

स्त्री जीवन के चित्रण के संदर्भ में एक नया मोड आजादी के बाद के दशको में तब आया जब पहली बार स्त्रि ने रचना के क्षेत्र में, भक्तिकाल की अपनी विरल उपस्थिति को नये समय के संदर्भ में सघन करते हुए अपने हाथ में फिर से कलम पकडी और अपने मन क, अपनी आकांक्षाओ को, अपनी अस्मिता से जुडे सवालो, अपने जीवन संदर्भो और जीवन संघ को, अपनी घुटन, तडप और विद्यमान वास्तविकता के प्रति अपने प्रतिरोध को, अपनी भाषा और अपने लहजे में खुद लिखना शुरु किया. इसके पीछे न तो पश्चिम का नारीवाद था और न ही कोई अन्य उपक्रम. यह वास्तविकता के खिलाफ एक ऐसे अभियान को रुप देना था, समाज और उसके यथास्थितिवाद की पोषक शक्तियॉ जिसकी नोटिस ले. यह बदलते हुए समय की मांग थी. तमाम कुछ वैसा ही रहने और बदतर होने के बावजूद आजादि के बाद कुछ नया, अर्थवान भी सामने आया था जिसके तहत अपने वजूद के प्रति सजग एक स्त्री भी सामने आई थी – महानगरो, नगरो और कस्बो में ही नही, गावो में भी अपनी पूरी जाति की भावनाओ को सामने लाने वाली इस तरह एक नये लेखन का रुप उभरा, जिसे स्त्री लेखन के पहचान मिली. परम्परागत पुरुष-मानस ने इस वास्तविकता को भी झुठलाना चाहा. आदर्श वाक्य की तरह कहा गया कि रचना को स्त्री-उपुष कटघरे में बांटना सही नहीं है, परंतु उसके उपक्रम व्यर्थ गए. स्त्री के हाथ में कलम आ चुकी थी. उसने हर विधा में लिखा है उपन्यास तो लोकतंत्र कि उपज है. उसके महाकाव्यात्मक पटल पर उसका जिया – भोगा, उसका अनुभूत और बदले हुए समय में उसका अर्जित, यह सब उसमे अधिक विशद बनकर उभरा. एक के बाद एक नई सदी की शुरुआत तक, जिस तरह स्त्री – कथाकारो की रचनाए सामने आई और अपने पूरे महत्व के साथ पहचानी गई. देखा जाए तो हिंदी साहित्य के इन विमर्शों की गूँज ने वर्तमान समाज में खलबली मचा दी है। आज के स्त्री विमर्श से हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण बदलाव आने के साथ-साथ साहित्य दुनिया में महत्वपूर्ण जगह बना ली है। आज समकालीन साहित्य में स्त्री चेतना व अस्मिता के संकट व पहचान से जुडे संघर्ष को उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, मालती जोशी, अलका सरावगी, नासिरा शर्मा, कुसुम बंसल, मेहरुन्निसा परवेज, अनामिका, क्षमा शर्मा आदि महिला लेखिका अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत कर रही है। इन लेखिकाओं ने नारी जीवन अस्मिता के विविध प्रश्नों एवम शोषण के विविध रूपों को अपने साहित्य के माध्यम से रेखांकित किया है। आज की लेखिकाओं ने अपनी रचना द्वारा स्त्री की अस्मिता को एक विशिष्ट पहचान दी है, एक तरफ उन्होंने साहित्य में सदियों की चुप्पी को तोड़ा है तो दुसरी ओर स्त्री की नयी सोच और नया भाव-बोध उनके लेखन की पहचान बनी है। उनके लेखन में आज की नारी पुरानी रूढ़ियों, रीति-रिवाजों को मानने के लिए विवश नहीं है, उसने पुरानी मान्यताओं को तोड़ा है और अपने अनुकूल नए मानदण्डों का निर्माण स्वयं किया है। स्वतंत्रोत्तर कहानी लेखिकाओ में कृष्णासोबती, ने नारी जीवन के जिन बिंदुओ को अपनी कहानी के माध्यम से स्पर्श किया है. अभिव्यक्ति बैलोसपन ने उन्हे बहुचर्चित बना दिया है. सोबती जी स्त्री की अस्मिता और स्वत्व की लड़ाई को वे गम्भिरता से लडती है. मैत्रियी पुष्पा कहती है – हम नतो देवी हैं न राक्षसी, न साध्वी, न कुलटा. हम जो भी हैं उसी रुप में हमे देखा जाए. पुरुष के नजरिये से नही, बल्कि मनुष्य के नजरिये से .1 चित्रा मुद्गल ने एक स्थान पर लिखा हैं, "नारी चेतना की मुहिम स्वयं स्त्री के लिए अपने अस्तित्व को मानवीय रूप में अनुभव करने और करवाने का आन्दोलन है, मैं भी मनुष्य हूँ और अन्य मनुष्य की तरह समाज में सम्मानपूर्वक रहने की अधिकारीनी हूँ।" सही मायने में स्त्री-विमर्श पुरुषों का विरोधी न होकर पुरूषवादी समाज एवम उनके अत्याचार का विरोधी है। नासिरा शर्मा की शाल्मली एक जगह कहती हैं, "मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। मेरी नज़र में नारी मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच, स्त्री की स्थिति को बदलने में है।"2 आज की स्त्री वर्तमान समाज और अर्थ जगत् के विभिन्न क्षेत्रों में पैठ बना रहीं है और काफ़ी हद तक बना भी चुकी है।

समाज में स्त्री के प्रति जागृति निर्माण करना तथा स्त्री के स्वत्व को, अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास ही हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श कहलाता है।

इस दौर में जहाँ एक ओर स्त्री-पुरुषों की समानता की बात कहीं गई है वही दुसरी ओर दलित विमर्श भी इसका एक और महत्वपूर्ण हिस्सा है। दलित विमर्श भी समाज में शोषित एवम उपेक्षित जनों का साहित्य होने के कारण समय का महत्वपूर्ण पहलू है और इस दलित साहित्य की विषय शैली, भाषा, आलोचना, सौन्दर्यशास्त्रीय मापदण्ड अपने हैं। दलित विमर्श के सन्दर्भ में मलखान सिंह, जयप्रकाश कर्दम, हीरा डोम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कर्मवीर भारती आदि दलित साहित्यकार के रूप में सामने आये हैं। दलित साहित्य में जो प्रतिरोध का स्वर हमे देखने को मिलता है उसके पीछे सदियो लम्बी शोषण, उपेक्षा और प्रताड़ना का इतिहास है। दलित साहित्य के आलोचक डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को अपने आलोचना का मूल स्रोत मानते है। शरणकुमार लिंबाले के अनुसार - "दलित साहित्य अपना केन्द्र मनुष्य को मानता है। बाबा साहब के विचारों से दलित को अपनी ग़ुलामी का अहसास हुआ। उसकी वेदना को वाणी मिली, क्योंकि उस मूल समाज को बाबा साहब के रूप में अपना नायक मिला। दलितों की वेदना दलित साहित्य की जन्मदात्री है जिसमे दलित साहित्य की वेदना "मैं" की वेदना नहीं बल्कि वह बहिष्कृत समाज के शोषित एवम अवहेलित की वेदना है।" सदियों से सवर्ण समाज द्वारा उपेक्षित, तिरस्कृत, अपमानित दलितों ने अपने जीवन-संघर्ष में जो भोगा एवं झेला है, उसी की हिंदी साहित्यकारो द्वारा ईमानदार अभिव्यक्ति या फिर कहे लेखनी हिंदी साहित्य की दलित विमर्श है। "दलित साहित्य दलितों की पीड़ा, उत्पीड़न, शोषण और उनके विरुद्ध उनके आक्रोश (कभी-कभी प्रतिशोध) तथा परिवर्तन के संकल्प का साहित्य है, जो जातिविहीन समाज का सपना देखते है।" दलित जीवन की विडम्बनाओं को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने "जूठन", मोहनदास नैमिषराय की "अपने-अपने पिंजरे", सूरजपाल चैहान की "तिरस्कार" और "घूंट अपमान के", माताप्रसाद की "झोपड़ी से राजभवन", डॉ. डी. आर. जाटव की "मेरा सफर मेरी जिन्दगी", श्रवणकुमार की "मेरा गुनाह", बेबी काम्बले की "हमारा जीवन", भगवानदास की "मैं भंगी हूँ", डॉ. तुलसीराम की "मुर्दहिया" आदि आत्मकथाओं में उकेरा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने "जूठन" में वाल्मीकि समाज की पीड़ा और तल्ख़ अनुभव को स्वर दिया है, "एक ऐसी समाज व्यवस्था में हमने साँसे लीं जो बेहद क्रूर और अमानवीय एवम दलितों के प्रति असंवेदनशील है।"3 हिंदी साहित्य के साहित्यकार, दलित विमर्श के माध्यम से परम्परागत साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र, मिथक, भाषा, मुहावरे को तोड़कर अपना नया प्रतिमान गढ़ता है। दलित विमर्श के साथ-साथ समाज में हमेशा से तिरस्कृत आदिवासी समाज भी है जिनकी दशा की विवेचना करना हमारे हिंदी साहित्य का एक पहलु रहा है. हिंदी साहित्य के विभिन्न आलोचको ने हमेशा से ही अपने लेखनी के माध्यम से उनके शोषण एवम करुण दशा को आवाज दी है.

भूमण्डलीकरण के द्वारा विश्व के अधिकांश भाग आपस में जुडते जा रहे हैं. आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि इस प्रक्रिया के कई आयाम हैं. बाजार के एकीकरण और सूचना-संसार प्रौद्योगिकी के द्वारा उत्पन्न किए गए वैश्विक कुटुम्ब के भ्रमजाल का साधारण जनता पर गहरा असर पड रहा है. जहाँ बाजार में वस्तुओ के बहुव्यापी विकल्प उप्लब्ध हैं खिलौने से लेकर कारो तक, किंतु यह सब स्थितियाँ लाभदायक और सुखद ही नहीं हैं बल्कि यह अपने साथ असमानता और अन्याय का भी पोषण करती है. प्राकृतिक संसाधनो का अंधाधुंध दोहन पर्यावरण संतुलन के लिए एक बड़ा प्रश्न चिन्ह खड़ा कर देता है. ओजोन परत का क्षय होना, वैश्विक तापमान में वृद्धि को बढावा देता हैं जिससे मानव के लिए भयानक समस्याए उत्पन्न हो जाती है. जनसत्ता समाचार पत्र में पर्यावर्ण की विकट स्थिति को लेकर हरीश अग्रवाल कहते है – जब से ओजोन पट्टी के, हास के बारे में पता चला है और अविलम्ब खतरे की घंटी बजी है, तब से विश्व की सरकारे हरकत में आ गई है. लोगो के सामने त्वचा कैंसर, फसलो की हाँड़, मोतियाबिंद बढने जैसे खतरे मंडराने लगे हैं .4 वैश्वीकरण ने गरीबी, असमानता, आर्थिक विषमता को भी प्रोत्साहन

दिया है. तकनीक और विज्ञान के लाभ उन लोगो तक ही पहुच पाए जो सशक्त थे आमजन सुविधाओ से वंचित रहा. शोध विषय 'दशए दशक के हिंदी साहित्य में भूमण्डलीकरण सम्बंधी विमर्श'के तहत भूमण्डलीकरण से उत्पन्न परिस्थितियॉं, पर्यावरण, स्त्रियो की स्थिति, कृषको और श्रमिको की स्थितयो को लेकर विश्लेषण किया जा रहा है. उपन्यास, कविता, कहानी, वैचारिक लेख इन स्थितियो को लेकर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे हैं. साहित्यकार, चिंतक इन स्थितियो को लेकर काफी चिंतन मनन कर रहे हैं. अलका सरावगी, चंद्रकांत देवताले, उदय प्रकाश, अभय कुमार दुबे, अरुण कुमार, पानीबाबा, सच्चिदानंद सिन्हा निरंतर बिगड रहे पर्यावरण और भूमंडल सम्बंधी परिस्थितियो को लेकर अपनी कविता, कहानियो और सैद्धांतिक लेखो में निरंतर अपनी आवाज उठा रहे हैं. विख्यात पर्यावर्णविद सूनिता नारायण जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरुप अचानक बढते समुद्र के जलस्त्र सामान्य और बाढ आने की संख्या और गै में वृद्धि को लेकर कहती है – एक ओर समान रुप से कपटपूर्ण कारण यह हो सकता है कि भारत में बाढ कुल मिलाकर खबर नहीं होती. हालांकि ब्रिटेन में बाढ असामान्य बात है फिर भी उसे बदलते हुए मौसम व्यवस्था का अंग सम्झा जाता है और इस वजह से वे मुख्य खबर बनते हैं. लेकिंग बाढ भारत में वार्षिक घटना है. तबाही का मंजर रिपोर्ट करने लायक नहीं होता क्योंकि सुखे के बाद किसी न किसी क्षेत्र में बाढा आती है फिर मलेरिया से लेकर हैजा तक जल सम्बंधित बीमारियो का हमला होता है .5

दूसरी ओर आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष और परिवर्तन की चनौतियों पर बात करें तो हमे उस तमाम आदिवासी समुदाय के समाजिक एवम आर्थिक स्थिति की चर्चा करनी होती हैं। अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्षरत तथाकथित मुख्यधारा की संस्कृति और सभ्यता ने आदिवासी के सामने दो ही रास्ते छोडे हैं जिसके तहत वे या तो अपनी अस्मिता, इतिहास, परपंरा को मिटाकर आज़ के मुख्यधारा की वर्चस्वादी सस्कृति को स्वीकार कर उसमे अपने निम्नतम दर्जा स्वीकार कर ले या फिर भौतिक रूप से अपना अस्तित्व मिट जाने के लिए अभिशप्त हो जाएँ. जैसा कि हम जानते हैं, परू के माची ग्वकोंओं या झारखंड के बिरहारे, शबर, कारेबा, असरु या राजस्थान के सहरिया आदिवासी जनजातियों की तरह जिनकी संख्या में लगातार गिरावट दर्ज की जा रही है। हद तो यह है कि वैश्वीकरण के इस दौर में बाज़ार की माँग पर आदिवासियों की नुमाईश तक हो रही है। आज अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के जारवा समुदाय के वनवासी लोगो को चिड़ियाघर में बंद वन्य जन्तुओं की तरह पर्यटन और विस्मय की "वस्तु" बना दिया गया है। वर्तमान समाज के शहरी यानि कि सभ्य लोग चिडियाघरो में जाकर उनको केले और बिस्कुट देकर उनके साथ फोटो खिंचवाते हैं। यह विकास और बाज़ार का अद्भुत और कैसा समन्वय है जो आदिवासियों के समाज एवम संसाधनों की खुली लूट कर रही हैं। हमारे शिक्षित समाज में उन्हे कभी "हूल" कहा गया तो कभी "उलगालुन" यानी कि अपने अधिकारों के लिए सशक्त प्रतिरोध। इस वर्तमान के परिस्थिती को देखते हुए हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श एक ऐसा विमर्श है जिसमें समाज के रहन-सहन, उनकी सांस्कृतिक परम्पराएँ, अस्मिता, साहित्य और अधिकार के बारे में विस्तृत चर्चा करते हुए उनके अधिकारो के लिए आवाज बुलंद की जाती है। आदिवासी समाज सदियों से जातिगत भेदों वर्णव्यवस्था विदेशी आक्रमणों और सभ्य कहे जाने वाले समाज की मुख्यधारा से दूर जंगलों और पहाड़ों में खदेड़ा गया है। पिछड़ेपन के कारण वह हमेशा से ही सताये गए है। अक्षरज्ञान न होने के कारण वह समाज की मुख्यधारा से कटा रहा है। भारत प्राय प्रत्येक राज्यो के विभिन्न भागो में यह जनजातीय समाज वसवास करते हैं. इनकी भाषा की व्याकरण व लिपि का विकास न होने के कारण ग़ैर साहित्य जगत में आदिवासी साहित्य कम मिलता है। आज़ादी के बाद प्रकाश में आए विमर्शों में स्त्री व दलित विमर्श के बाद आदिवासी विमर्श महत्वपूर्ण है। चूँकि आदिवासी समाज में श्रम में भागीदारी के कारण स्त्री का स्थान आदिवासी समाज में महत्वपूर्ण रहा है। इसीलिए इस साहित्य में स्त्री रचनाकारों ने अपनी उपस्थित दर्ज कराई है। उनके व अन्य रचनाकारों के माध्यम से आदिवासी समाज के सवालों

को जगह मिल रही है। स्त्री जीवन के संघर्ष को लेकर रमणिका गुप्ता, महाश्वेता देवी, निर्मला पुतुल, सरिता बड़ाइक, ग्रेस कुजुर, मीरा रामनिवास, डॉ. मंजु ज्योत्स्ना आदि साहित्यकार ने आवाज़ दी है। डॉ. गंगासहाय मीणा के शब्दों में आदिवासी साहित्य अपनी रचनात्मक ऊर्जा आदिवासीयों की विद्रोह परम्परा से लेता रहा है इसलिए उन आन्दोलन की भाषा और भूगोल भी महत्वपूर्ण रहा है। हिन्दी अधिकांश आदिवासियों की भाषा नहीं है। मुंडारी, संथाली, हो, भीलोरी, ओड़या, गारो आदि उनकी भाषाएँ रही हैं। आदिवासी रचनाकार का मूल साहित्य उनकी इन्हीं भाषाओं में है। हिन्दी में मौजूद साहित्य देशज भाषाओं में उपस्थित साहित्य के इसी समृद्ध परम्परा से प्रभावित है। कुछ साहित्य का अनुवाद व रूपांतरण भी हुआ है। भारत के तमाम भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य हिन्दी, बंग्ला, तमिल जैसी भाषाओं में अनूदित और रूपातंरित होकर राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर रहा है।"6 हिन्दी साहित्य में आदिवासी साहित्य में कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे गए है। हिंदी के आदिवासी उपन्यासकारों ने देश के दूर-दराज़ के आंचलों में रहनेवाले आदिवासियों के जीवन को उजागर किया है, जिसने आज आन्दोलन का रूप ले लिया है। आदिवासियों के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ उनकी समस्याएँ, शोषण, अभाव गरीबी, पिछड़ापन, अशिक्षा आदि पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया है। अंत में हिंदी साहित्य में तत्कालिन विमर्श की बात करें तो साहित्य और साम्प्रदायिकता की बात चली आती है. हमारे भारत में हमेशा से ही दो सम्प्रदायो के बीच तना-तनी चलती आई है परंतु इसके बावजुद भी हमारे यहाँ सामाजिक या फिर कहे तो साम्प्रदायिक सौहार्द बनी रही है. हमारे यहाँ आजादी के बाद से ही कुछ लोग निजि स्वार्थ के लिए दो समुदाय को लडाने का काम करते आए हैं परंतु आअज स्थिति इतनी विकराल हो गई है कि अगर हम साम्प्रादायिक सौहार्द नहीं बनाए रखे तो दुनिया के नक्से पर से हमारे देश का नक्सा मिट जायेगा. इन सबके बावजुद भी हमरे हिंदी साहित्य के साहित्यकारो ने हामारे देश में हमेशा से ही साम्प्रदायिक एकता के लिए काम किया है. वर्तमान समय में साम्प्रदायिक विमर्श ही हिंंदी साहित्य की मांग नजर आती है.

आज हमारे समाज में 'सांप्रदायिक सौहार्द' बनाए रखने की अधिक आवश्यकता है। विगत समय में मानव जाति के साथ इसे बनाए रखने का कम हमारे संतों ने किया था. इस भावना का प्रारंभ ही हम संतों से पाते हैं । इस विषय में मेरी जानकारी अल्प होने के बावजूद भी यह कहने का साहस जरूर करता हूँ कि संत कबीर ने सांप्रदायिक सहृदता की सुरक्षा के लिए ही अपना पूरा जीवन बिताया था. उनके साथ भारत के अन्य मुस्लिम संत कवियों का योगदान भी प्रशंसनीय है । भारत में बहुत पहले से ही साम्प्रदायिक एकता के लिए विभिन्न मतों–विचारधाराओं का प्रसार हुआ और इसके लिए अनेक संप्रदायो का भी निर्माण हुये। कबीर ने हमेशा सभी संप्रदायों का विरोध किया, क्योंकि उनमे से अधिक गलत परम्पराओं को लेकर चलते थे। आज हम देखते है कि बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम, हिंदु आदि सभी संप्रदाय अपनी–अपनी विचारधाराओं को लेकर चलते हैं तथा उनका प्रचार–प्रसार भी करते हैं। कबीर ने उनके समय में इन बातों का विरोध किया। उनकी नजर में धर्म एक ही था और वह था केवल मानव धर्म। शायद इसी कारण उनकी दृष्टि में राम-रहीम, केशव-करीम,ईश्वर-अल्लाह सभी एक ही थे, एक ही हैं और एक ही रहेंगे. पर उसके नाम अलग–अलग हैं। वे सभी संप्रदायों को एक मानकर तथा उनमें से सभी अच्छी बातों को स्वीकार कर उनमें छिपी बुराई को दूर करने के लिए लड़ते रहे। उनकी दृष्टि में 'मानव धर्म' के अलावा कोई धर्म या संप्रदाय ही नहीं होता। वे कहते हैं– "हमारे राम रहीम करीमा कइसो, अलह रामसति सोई। बिस्मिल मेटी बिसमभार एकै और न दूजा कोई. . साम्प्रदायिकता एवम अलगाववाद को लेकर भारत में ही नहीं दुनिया में आज का माहौल बहुत ही अशांत बना हुआ है। व्यक्ति–व्यक्ति के बीच प्रेम, भाईचारा और आदर जैसे भाव लुप्त होते नजर आते हैं। यहाँ श्रष्ठ और हेय आदि बातों को लेकर संघर्ष होते रहते हैं। जाति, वर्ण संप्रदाय के नाम पर होनेवाला संघर्ष मानव जाति का संहार कर रहा है। कबीर ने कहा है- "हरिजन ऐसा चाहिए, हरी ही जैसा होय ।7

यदि ऐसा होता है तो समस्त दुनिया में सब एक से हो जाएंगे। किसी के मन में एक दूसरे के प्रति द्वेष, ईर्ष्या का बहव नहीं रहेगा। कबीर के इस 'सांप्रदायिक सौहार्द' को लेकर ही हमें भी चलना चाहिए। 'सांप्रदायिक सौहार्द' मानवता का गुण है। लगभग सभी संतों ने यही कहा आधुनिक समय में हिन्दी साहित्य में इसे स्थान देनेवाले साहित्यकार भी कम नहीं हैं। भारत का स्वतन्त्रता आंदोलन, उसके लिए अपने प्राणों को न्योछावर करनेवाले अनगिनत लोग केवल भारतीय थे इसे हमें भूलना नहीं चाहिए। इन सभी बातों को हिन्दी के ख्यात साहित्यकारों ने अपने लेखन द्वारा हमेशा स्पष्ट किया है। यशपाल, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, अमृता प्रीतम आदि की कृतियाँ – झूठा–सच, तमस, कितने पाकिस्तान, पिंजर जैसे उपन्यासों द्वारा 'सांप्रदायिक सहृदता' न होने से अथवा मन में विद्वेष लेकर चलाने से मानव जाति की हुई अमर्यादित हानि, संहार, दु:ख आदि का पता चलता है। कहना चाहूँगा कि आज का वातावरण हर तरह मनुष्य को आतंकित करनेवाला है और यह दिन-ब-दिन बढता ही जा रहा है. आज चारो तरफ धर्म के नाम पर संघर्ष और नर सन्हार हो रहा है। सभी अपने–अपने अहं को लेकर चल रहे हैं। यदि ऐसा ही चलता रहा तो एक दिन पृथ्वी पर रहनेवाली समस्त मानव जाति का संहार हो जाएगा। इसलिए हमें एकदूसरे के प्रति सौहार्द भाव रखना चाहिये। मेरे विचार से शायद सभी संप्रदायों/धर्मों को एक ते हुए हम सभी को मानव कल्याण कि बात सोचनी चाहिए। हमारे हिंदी साहित्य के कबीर हों या यशपाल सभी ने अपने साहित्य के माध्यम से यही बताना चाहा है। साहित्यकार का यह दायित्व या ज़िम्मेदारी होती है कि वह अपने लेखन से समाज के हित की ही बात करें।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि समकालीन हिन्दी का साहित्य का परिवेश वर्तमान सामाजिक बदलाव के अनेक परिदृष्य को अपने भीतर समेटे हुए है। हिंदी साहित्यकार आज सामाजीक बदलाव एवम समकालिन संकटो को विविध विमर्शों के माध्यम से चिन्तन को एक नया आयाम दे रहे हैं। आज के इस उत्तर आधुनिक काल के भुमंडलिकरण दौर में हिंदी साहित्य एवम साहित्यकार समाज मे व्याप्त कुरितीयो एवम कुसंस्काओ को दूर करने के लिए अपने पूरे सामर्थ्य के साथ अपने लेखनी के माध्यम से हमेशा से ही उपस्थित रहा है. हमारे हिन्दी साहित्य के रचयिता समाज के सशक्त व समर्थ रूप को हमारे सामने रखते हुए समाज की हर एक बदलती हुई परिस्थिती को अपने चिन्तन में शामिल कर उसे अपनी आवाज़ व भाषा का सामर्थ्य देकर पाठकों के सामने रख रहे हैं.

सन्दर्भः

1. हंस पत्रिका – मैत्रयी पुष्पा - विजन, पृष्ठ – 41
2. शाल्मली - नासिरा शर्मा – किताबघर प्रकाशन, 1994, पृ.सं. 25
3. जूठन - ओमप्रकाश वाल्मीकि - राधाकृष्ण प्रकाशन, 2009, भूमिका से- पृष्ठ – 4
4. हरिश अग्रवाल - . 'ओजोन हाल की हकीकत' - जनसत्ता समाचार पत्र, 26 अगस्त 2007
5. सुनीता नारायण – बाढ के आगे बेबसी क्यो?'–क्रनिकल ईयर बुक,2008
6. आदिवासी अस्मिता और साहित्य, डॉ. गंगासहाय मीणा– अपनी माटी, अंग-2013
7. कबीर : साहित्य, समाज एवम दर्शन– ग्यानगीता प्रकाशन–डॉ. मजिद मिया, पृष्ठ – 27

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

एक और पांचाली' में चित्रित स्त्री विमर्श

प्रा. जाधव जे. बी.

हिंदी विभागाध्यक्ष, छत्रपती शिवाजी महाविद्यालय, कळंब

प्रस्तावना :

आजकल नारी विमर्श पर बहुत कुछ लिखा और सोचा जाने लगा है। आम आदमी से लेकर सरकारी नीतियों तक नारी की दशा केंद्र में रही है। पूरे समाज का ढाँचा जिन रेखाओं से बनता है उसमें नारी की रेखा आज सबसे अधिक चमकीली एवं मोटी रही है।

सृष्टि के विकासक्रम में नर के समान नारी का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। प्रजनन जीव का महत्वपूर्ण कार्य है गर्भधारण से लेकर संतान को जन्म देने तथा उस शिशु के सूझबूझ आने तक का लालन-पोषण मुख्यतः स्त्री ही करती है। प्रकृति की मनोरम पुत्री नारी ने अपने सौंदर्य और व्यक्तित्व से युगों-युगों से धर्म, साहित्य और इतिहास को प्रभावित किया है। अपने विविध रूपों में उसने पुरुष का पोषण किया है। उसे प्रेरणा दी है।

स्त्री विमर्श से तात्पर्य :

पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों की राजनीतिक, सामाजिक और भौतिक समानता का आंदोलन जिसे कुछ वर्ष पहले तक 'नारीवाद' कहा जाता है।

नारीवाद का संबंध स्त्रियों से जुड़े सवालों से तो है ही लेकिन नारीवाद इन्हीं सवालों तक सीमित नहीं है । नारीवादियों की चिंता का घेरा बलात्कार, पत्नी-प्रताड़ना, फैमिली प्लानिंग व समान वेतन की संकटी परिभाषा में सिमटा हुआ नहीं है। हम में से स्त्रियों से है क्योंकि हर बात, हर घटना उन्हें प्रभावित करती है । वे स्त्री होने के साथ-साथ मनुष्य हैं, संसार की आधी जनता है, अतः हर विजय उनसे संबंध रखता है । स्त्रीवादी सभी प्रकार की असमानता, दबाव व दमन हटाकर राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय रूप से समतामूलक न्यायिक-सामाजिक आर्थिक व्यवस्था से युक्त समाज की स्थापना करना चाहती है।

विद्वानों के विचारों में नारी :

महात्मा गाँधीजी ने नारी को नर की अपेक्षा श्रेष्ठ बताते हुए कहा है- "स्त्री को अबला कहना उसका अपमान है। यदि शक्ति का अभिप्राय पाश्विक शक्ति है तो स्त्री सचमुच पुरुष की अपेक्षा कम शक्तिशाली है । यदि शक्ति का मतलब नैतिक शक्ति है तो स्त्री पुरुष से कहीं अधिक शक्तिमान है। यदि पति देवता तो पत्नी भी देवी है। वह दासी नहीं बल्कि मित्र तथा सचिव है। पति-पत्नी एक-दूसरे के गुरु है ।" डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरजी ने एक स्थान पर लिखा है कि, "स्त्री दलितों में भी दलित है।"

एक और पांचाली उपन्यास के उपन्यासकार अमरीक सिंह दिप है। अमरीक सिंह दिप का जन्म 5 अगस्त 1942 में उत्तर प्रदेश राज्य के कानपुर शहर में हुआ।

अमरीक सिंह दिप का साहित्य :- कहाँ जायेगा सिध्दार्थ, कालाहाण्डी, चांदनी हूँ मै, सिर फोडती चिडिया, काली बिल्ली, एक कोई और, वनपाखी कहानी संग्रह प्रकाशित।

लघु कथा संग्रह :- आजादी की फसल

पंजाबी से अनुदित कहानी संग्रह – 'बर्फ का दानव', शाने पंजाब व ऋतु नागर, रितुनगर आदि।

उपन्यास :- रेत में डूबी नदियाँ, एक और पांचाली।

परंपरागत मानसिकता में जकडा हुआ आधुनिक पुरुष आज भी नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण दासी, भोग्या समझता है। सदियों से नारी का पुरुष प्रधान व्यवस्था में दमन, शोषण होता रहा है।

"औरत के अन्दर की स्त्री को कब समझना शुरु करेगा आदमी कब अपने अन्दर के जानवर से मुक्त होगा आदमी? आज तक क्यों इस जानवर को अपने भीतर से खदेड नहीं पाया है आदमी? मोका मिलते ही क्यों यह जानवर दहाडता हुआ अपनी खोह से बाहर निकल आता है? आदमी तो आदमी देवता तक इस जानवर पर अंकुश नही रख पाये। इन्द्र हो या ब्रम्हा ... एक ने इस जानवर के वशीभूत होकर पतिव्रता स्त्री का शीलहरण किया, दूसरा इस जानवर के वशीभूत होकर अपनी बेटी के ही शीलहरण को आतुर हो उठा। क्यों आदमी के अन्दर ही रहता है यह जानवर? स्त्री के अन्दर क्यों नहीं रहता? इंसान तो औरत भी है। भूख, नींद उसे भी सताती है लेकिन आपनी भूख के लिए वह इस जानवर के वशीभूत नही हो जाती। बलात्कार पर नहीं उत्तर आती" ।

एक और पांचाली उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने नारी के अनेक समस्या का चित्रण करने का यर्थाथ काम किया है। पुरुष स्त्री के मन को कब समझ पायेगा, उसकी जरुरत तथा उसके आंतरीक समस्या को कब समझने कि कोशिश करेगा पुरुष। इतना ही नही आदमी के अन्दर ही पशुता की भावना क्यों उमडती है और वह अनेक बार स्त्रि पर अत्याचार करता है। सिर्फ मनुष्य ही नही देवताओं के अंदर भी इस तरह की मानसिकता निर्माण होती रही है और उस समय के नारीयों पर देवताओं ने भी अत्याचार करने का काम किया है ऐसा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों से उजागर करने का काम अमरीक सिंह दीप ने किया है।

उपन्यासकार ने कम उम्र में शादी हो जाने के बाद नवविवाहीत नारी की स्थिती का चित्रण भी उपन्यास के माध्यम से किया है।

"मालती दीदी के गौने के वक्त उसकी उम्र मुश्किल से बारह साल भी पूरी नही हुई थी कि उसके ब्याह की चर्चाएँ शुरु हो गयी थी। पता नही दस साल की उम्र पार करते ही बप्पा को बेटियाँ बोझ क्यो लगने लगती। वे इस बोझ को उतरने के लिए उतावले हो उठते। बिरादरी में जैसा भी लडका मिल जाता वे फौरन बोझ उतार फेंकते" ।

इस तरह उपन्यास के माध्यम से आज भी कुछ जनजातियों में लडकी को बोझ मानकर उसकी शादी कम उम्र में कर देते है। महावारी से पहले ही लडकी की शादी करने का क्या परिणाम होता है इसके बारे में उपन्यासकार ने खुलकर लिखा है। उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र पुष्पा का विवाह चौदह साल होने के साथ हुआ था।

पुष्पा का विवाह चौदह साल में होने के साथ ही जब वह अपने ससुराल में जाती है तब वहां के लोग उसके साथ जो व्यवहार करते है उसे वह आपने शब्द में इस तरह व्यक्त करती है। - "वह खींझ उठी, यह ब्याह तो बिना जुर्म काले पानी की सजा है। इस जेल से मुक्त होने के लिए जैसे ही वह कसमसाती या गर्मी से शहत पाने के लिए बेना डुलाने लगती वैसे ही मोहल्ले की कोई औरत मुंह दिखाई के लिए आ जाती ।

पुष्पा का विवाह चौदह साल के पहले होने के कारण पुष्पाा की अवस्था देखकर उपन्यास की जानकी की आँखों में आंसू आ जाते है वह भी इस दुदशां से गुजर चुकी थी इसके कारण उसे लगता है कि ऐसी कच्ची उम्र क्यों कर देते है माँ-बाप बेटी की शादी और गौना? यह सुहागरात है या बलत्कार-रात? मर्द इसे मर्दानगी कहते है? कि पहली ही रात अपनी नवब्याहता के शरीर को यूं रौद डालो जैसे कोई हमलावर अपने दुश्मन को रैंद कर उसके किले की ईट से ईट बजाकर उस पर अपनी विजय पताका फहरा देता है। ताकि दुश्मन जिंदगी भर गुलाम बना रहे। कभी सिर उठा कर बात न कर सके।

नारी समस्या का यथार्थ चित्रण उपन्यास के माध्यम से हुआ है। बालविवाह होने के कारण शरीर का विकास होने के पहले अनेक लडकियों का ब्याह हो जाता था। विवाह जल्दी होने के कारण बच्चे भी जल्दी ही पैदा हुआ करते थे। इस कारण नारी के सामने अलग-अलग तरह की समस्या उत्पन्न होती थी इसका चित्रण उपन्यासकार ने बखुबी किया है। उपन्यास की प्रमुख पात्र पुष्पा गोदने कि प्रथा पर भी सवाल उठाती है पुराने जमाने में जब दास-दासियाँ बेचे-खरीदे जाते थे तब ऐसे गोदने गोदवाये जाते थे उनके शरीर के अंगोपर। क्या वह गुलाम है आपने पति की? क्या शादी औरत को बेचने खरीदने का शुध्द शास्त्र सम्मत तरीका है।

उपन्यास की प्रमुख पात्र पुष्पा का विवाह सोनेलाल के साथ हो जाता है। सोनेलाल का पुष्पा के साथ पत्नि जैसा व्यवहार नही है वह उसके साथ पशु जैसा व्यवहार करता है। अनेक बार शराब के नशे में आकर उसे मारपीट करना उसकी इच्छा के विरुध्द संबध प्रस्थापित करना। कहि बार पुष्पा को पिटता है, और साल भर के अंतर में ही बच्चा पैदा करना इस तरह का व्यवहार सोनेलाल का पुष्पा के साथ रहा है। कुछ समय बाद उनकी परिस्थिती याने आर्थिक समस्या के कारण वह गाँव छोडकर कमाने के लिए शहर जाता है।

“पृथ्वी पर भूख से बडी और निर्मम कोई अन्य वस्तु नहीं है। यह जल्लाद भूख- समय-कुसमय कुछ नही देखती। न दु:ख न परेशानी, न पीडा और न उदासी ही देखती है। यह इतनी ताकतवर है कि सत्ताओं के तख्ते पलटवा देती है, क्रान्तियाँ करवा देती है। यह जब अपने पूरे जल्लोजलाल पर आती है तो हर नैतिक-अनैतिक सवाल को ठोकर मार देती है” । भूख का राक्षस पृथ्वी के सारे राक्षसो से अधिक बलशाली और भयानक है।

सोनेलाल कानपुर चला गया था और पीछे छोड गया था भूख पुष्पा के घर में खानेवाले छः पेट थे। और गांव में रोजगार भी फसल के दिनो में थे और काम करनेवाले दो ही हाथ थे। इसमें इतने लोगो का पेट पालना मुश्किल काम था। हंसराज के सम्पर्क में आने के बाद पहली बार पुष्पा ने स्त्री होने का ही नही जीवन जीने का स्वाद भी प्राप्त किया था। सोनेलाल के साथ बिताये छः साल जीये कहाँ थे, नरक भोगते हुए बिताये थे।

“दिन को दासी रात को रण्डी, क्या यही है औरत के लिए विवाह का अर्थ? तिसरी बार पुष्पा का छबीले के साथ एक साल भर ही प्रेम संबध चल पाया था। फिर कुछ समय बाद पुष्पा मुन्ना के साथ आकर्षित हुई थी पर मुन्ना हंसराज और छबीले जैसा नही था।

उदारीकरण की कोख से जन्मी पूँजीवादी व्यवस्था ने इस देश के गरीब आदमी को गुलामों की मण्डी में बिकने वाली जिन्स बना डाला है और गरीब औरत को रस्ते का माल सस्ते में जैसी दो कौडी की चीज।

शेखर बाबु से पुष्पा का कथन – “मेरे जिन्दगी में चार मर्द आए है। पति परमेश्वर को छोड कर बाकी ने मुझे भरपूर सुख दिया लेकिन उस सुख के बदले उन्होंने मेरे शरीर से भरपूर सुख लिया भी है”।

निष्कर्ष :- स्त्री जिवन का यथार्थ प्रस्तुत करने का कार्य उपन्यासकार ने किया है। कम उम्र में ब्याह होने के कारण उत्पन्न हुई समस्या का यथार्थ चित्रण भी किया है, साथ-ही-साथ भूख से उत्पन्न समस्या के कारण कुछ नारीयों का गलत इस्तेमाल भी समाज के अनेक पुरुष करते है इसका चित्रण एक और पांचाली में हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ

1. एक और पांचली – अमरीक सिंह दिप
2. भारतीय नारी – विवेकानन्द, मराठी संस्कारण
3. नारी विमर्श की नयी दिशाएँ – डॉ. रेणुका मोरे
4. आधुनिक कथा साहित्य में नारी स्वरुप और प्रतिमा- डॉ. उमा शुक्ल
5. समकालीन महिला लेखन – डॉ. ओमप्रकाश शर्मा

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

गोदान में कृषक जीवन

डॉ . मुरलीधर अच्युतराव लहाडे
प्रोफेसर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष
जनविकास महाविद्यालय बनसारोला ता. केज, जिला बीड़

कृषि प्राचीन काल से भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार रही है , इसके प्रारंभिक प्रमाण हमें वेदों में वर्णित मिलते हैं। तब से लेकर आज तक की आधुनिक औद्योगिक सभ्यता में भी खेती -किसानी एक बड़ा व्यवसाय है और इसकी महत्ता लगातार बनी हुई है। देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा जिसे हम किसान कहते हैं, इस कार्य को करने में सदियों से लगा हुआ है भारत की आत्मा में बसने वाले इन किसानों का जीवन हमेशा से साहित्यकारों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों के अध्ययन, विवेचन, विश्लेषण और शोध का विषय रहा है। हिन्दी साहित्य में भी विभिन्न कालक्रमों में विभिन्न विधाओं में किसान जीवन का चित्रण मिलता है। कविता, उपन्यास और कहानी में इसे ज्यादा 'स्पेस' मिलता है। हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद पहले लेखक हैं जिन्होने किसानों को केन्द्र में रखकर साहित्य की रचना की। इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा जब प्रेमचंद को 'अद्वितीय उपन्यासकार' कहते हैं तो उसके पीछे ठोस कारण हैं। प्रेमचंद की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि किसान को वह रंगमंच के केन्द्र में रखते हैं। प्रेमचंद का वैशिष्ट्य इस बात में है कि उन्होनें पहली बार किसानों के जीवन को भीतर से देखा और उनकी पीड़ा को, उनके हास्य-रूदन को, उनकी गरीबी उनके सीधेपन को और चतुराई को अपने उपन्यासों में सजीव ढंग से चित्रित किया तभी तो उन्होने होरी को व्यक्ति चरित्र से 'वर्ग चरित्र' बना दिया।

गोदान' उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखा गया वह उपन्यास है जिसे कृषक जीवन का महाकाव्य कहा गया है। इस उपन्यास की रचना 1935 ई. में की गई थी। गोदान से पूर्व प्रेमचन्द जी 'प्रेमाश्रम' की रचना कर चुके थे जिसमें जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण का उल्लेख था। 'प्रेमाश्रम' को गोदान की पूर्व पीठिका कहा जा सकता है। प्रेमचन्द के लेखन का सरोकार ग्रामीण जीवन विशेषकर कृषक वर्ग से था। वे उनकी पीड़ा, शोषण, कठिनाइयों से भली-भांति अवगत थे और चाहते थे कि जमींदारी प्रथा समाप्त हो जो किसानों के शोषण के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी थी। अपने एक आलेख में प्रेमचन्द ने लिखा है।

कैसी विडम्बना है कि भारत का किसान अपनी एक छोटी-सी इच्छा को पूरा नहीं कर पाता। होरी के मन में एक गाय की इच्छा थी। यह 'गाय' उसका 'स्टेटस सिम्बल' है। घर के द्वार पर गाय बंधी होगी तभी तो लड़के के ब्याह वाले आएंगे और लोग पूछेगे कि यह किसका घर है। गाय से वह अपने मान-सम्मान की वृद्धि करना चाहता है। संयोग से उसे भोला की गाय उधार में। मिल भी जाती है, किन्तु उसके भाई हीरा की ईर्ष्या भड़क उठती है और वह गाय को जहर दे देता है। गाय के मर जाने से होरी के जीवन का विषाद और भी गहरा हो जाता है। इस गाय ने उसके जीवन को कई रूपों में प्रभावित किया था। इसके लिए वह कर्जदार वना, झुनिया और गोवर का मेल हुआ जिससे उसे सामाजिक दण्ड भुगतना पड़ा, भोला उसके बैल खोल ले गया और उसे किसान से मजदूर बनना पड़ा। अन्त तक वह 'गाय' की अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सका और अब जीवन की अन्तिम बेला में उससे 'गोदान' की अपेक्षा की जा रही है। धनिया आज मजदूरी में मिले पैसों को होरी के ठण्डे हाथ पर रखकर पण्डित दातादीन को देती हुई कहती है, "महाराज घर में गाय है न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।"[1]

उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने गोदान में कृषक जीवन का यथार्थ चित्रण किया है।प्रेमचंद ऐसे प्रथम भारतीय उपन्यासकार हैं जिन्होंने उपन्यासों का उपयोग समाज और जीवन की आलोचना के लिए किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में उन समस्याओं को चित्रित किया है जो वर्तमान युग से जुड़ी हुई हैं और जिन्हें हर व्यक्ति अनुभव करता है। प्रेमचन्द एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जहां भेद-भाव के अभिशाप से मानवता पीड़ित न हो, किसी प्रकार का शोषण न हो और आदमी की पहचान सम्पत्ति और जाति के पैमाने से न हो। गोदान में उनका यही उद्देश्य प्रमुखता से व्यक्त हुआ है। इस उपन्यास का प्रधान उद्देश्य है कृषक जीवन की समस्याओं का चित्रण करना, उसके शोषण का चित्र प्रस्तुतकरना और उसकी दीन-हीन स्थिति से समाज को परिचित कराना। किसान का शोषण कौन करता है। तथा उसका शोषण कितने मुहानों पर होता है और उस शोषण के लिए समाज के कौन-कौन लोग उत्तरदायी हैं इसका सजीव चित्रण गोदान में किया गया है। उपन्यास मनोरंजन की वस्तु नहीं है अपितु वह जीवन की सच्चाइयों को उजागर कर हमें सोचने-विचारने को विवश करता है और संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करता है। अपने उपन्यासों के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचंद लिखते हैं, "हम साहित्य को मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें चित्रण की स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाई का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचौनी पैदा करे, सुलावे नहीं।"[2]

समाज और धर्म भी किसान का शोषण करने में पीछे नहीं हैं। झुनिया को घर में आश्रय देने पर गांव के भाग्यविधाताओं ने 100 रु. दण्ड और तीस मन अनाज जुर्माने के रूप में वसूल किया। दातादीन जैसे धर्म के ठेकेदार भी किसान का शोषण करते हैं। मृत्यु के अवसर पर होरी से गोदान की अपेक्षा करने वाले ये तथाकथित धर्म के ठेकेदार समाज के मुंह पर तमाचा मारते हुए से प्रतीत होते हैं। जो व्यक्ति जीवन पर्यन्त एक गाय का जुगाड़ अपने लिए नहीं कर सका उससे मरते समय गोदान के लिए कहना कहां का न्याय है पर दातादीन को इससे क्या?

गोदान में प्रेमचन्द जी ने पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करने का संकल्प व्यक्त किया है। खन्ना पूंजीपतियों के प्रतिनिधि पात्र हैं। शोषण की प्रक्रिया नगरऔर गांव में समान्तर रूप से चलती है। गांव में जमींदार किसान का शोषण करता है तो नगर में मिल मालिक और पूंजीपति मजदूर का शोषण करके अपनी सोने की लंका खड़ी करते हैं।

प्रेमचन्द को यह स्पष्ट दीख रहा था कि यह शोषण अब अधिक दिनों तक चलने वाला नहीं। रायसाहब को भी इसका आभास हो गया था कि जमींदारी प्रथा अब समाप्त होने वाली है वे कहते हैं- "लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है।"[3] मजदूर अपने पेट के अतिरिक्त और किसी बात पर ध्यान नहीं देता, परन्तु जब पर्याप्त परिश्रम के बाद भी उनका पेट खाली रहता है तो वे विद्रोह पर उतर आते हैं। मिल मालिक खन्ना अपने अहंकार में मजदूरों की उचित य मांगों को भी ठुकरा देते हैं, परिणामतः हड़ताल होती है और य मजदूर खन्ना की मिल में आग लगा देते हैं। शायद 'गोदान तक आते-आते प्रेमचन्द यह समझने लगे थे कि गांधीवादी अंहिसा से शोषण को समाप्त नहीं किया जा सकता उसके लिए तो विद्रोही तेवर अपनाने ही पड़ेंगे। प्रेमचन्द जी ने यह भी सन्देश दिया है कि पूंजी पर अहंकार करना ठीक नहीं, क्योंकि पूंजी क्षणभंगुर होती है। खन्ना की पत्नी गोविन्दी खन्ना सात्विक विचारों की महिला है वह इस आर्थिक हानि पर दुखी नहीं रहती अपितु उसे वरदान मानती हुई कहती है।

"जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, उन्हें लूटने में नहीं। मेरे विचार से तो पीड़क होने से पीड़ित होना कहीं श्रेष्ठ है। धन खोकर अगर हम अपनी आत्मा को पा सके तो यह कोई महंगा सौदा नहीं है।"[4]

प्रेमचन्द जी ने गोदान में सेवा का आदर्श प्रस्तुत करते हुए जो विचार उपस्थित किए हैं वे लोक कल्याण की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं। दौलत से आदमी को जो सम्मान मिलता है वह उसका सम्मान नहीं है, उसकी दौलत का सम्मान है। सच तो यह है कि दौलत व्यक्ति में अहंकार उत्पन्न करती है और उसके हृदय से सेवा, करुणा जैसी सदुवृत्तियां समाप्त हो जाती हैं। प्रेमचन्द जी ने गोदान के पात्रों के माध्यम से सेवा के महत्व को प्रतिपादित किया है। सेवा और परोपकार में मेहता जी का दृढ़ विश्वास है, मालती भी उन्हीं की प्रेरणा से अपने स्वभाव को बदल लेती है अब उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया है। गरीबों को बिना फीस लिए दवा देती है। वह सेवा का आदर्श प्रस्तुत करती है। प्रेमचन्द जी सेवा को कर्मयोग कहते हैं। मेहता जी के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हुए वे कहते हैं - "प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के बीच में जो सेवा मार्ग है, चाहे उसे कर्म योग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊंचा और पवित्र बना सकता है।"[5] नारी को भी अपने व्यक्तिगत जीवन में सेवा धर्म अपनाने का सुझाव देते हुए वे कहते हैं- "सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति केवल सेवाव्रत में है। वही अधिकार का स्त्रोत है वही शक्ति का उद्गम है। सेवा ही वह सीमेन्ट है जो दम्पति को जीवन पर्यन्त स्नेह और साहचर्य से जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े-बड़े आघातों का कोई असर नहीं होता। जहां सेवा का अभाव है वहीं विवाह-विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है।"[6]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हैं कि हिन्दी कथा साहित्य में गाँवों और किसानों के जीवन को लेकर लिखा जाने वाला साहित्य धीरे-धीरे कम होता गया, क्योंकि लेखक शहरी परिवेश में पूरी तरह बस गये। आज ज्यादातर हिन्दी लेखक नहीं जानते कि गाँव में क्या घट रहा है और किस प्रकार घट रहा है। गाँव में कितनी मृत्यु हुई, उसका कारण क्या है। कितनी गरीबी, कितने तरह के तनाव हैं, गरीबों एवं किसानों का शोषण किस तरह से हो रहा है।भारत के सत्तर प्रतिशत ग्रामीण समाज की सच्चाइयाँ साहित्य के पन्नों पर नहीं हैं या बहुत कम देखने को मिलती हैं। वे अखबार के पन्नों पर होती हैं, पर साहित्य में बहुत कम। ऐसी स्थिति में उपरोक्त प्रेमचंद युगीन से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक के कथाकार जिनके कथा-साहित्य की चर्चा की गई है, यह बताता है कि गाँव और किसानों पर लिखा जाना कितना आवश्यक है क्योंकि आज भी गाँवों और किसानों की स्थितियों में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं हुए

हैं। किसान आत्महत्या कर रहा है, आज वह तबाही के कगार पर खड़ा है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. प्रेमचंद – गोदान- मनोज पब्लिकेशन्स संस्करण 2005 पृ.35
2. डॉ. राम विलास शर्मा - प्रेमचंद और उनका युग- राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पृ.251
3. सरिता राय - उपन्यासकार प्रेमचंद की सामाजिक चिंता- वाणी प्रकाशन पृ.203
4. वागार्थ - दिसम्बर 2005 पृ.33
5. प्रेमचंद – गोदान- मनोज पब्लिकेशन्स संस्करण 2000 पृ.123
6. समकालीन साहित्य समाचार अक्टूबर 2014 पृ.25

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

श्री राम जन्मभूमि भारतियों की अस्मिता

प्रा. परशुराम प्रभु राठोड

सहायक प्राध्यापक

नवगण शिक्षण संस्था कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय परली वैजनाथ, जिला बीड

सारांश:

"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मुरत देखी तिन तैसी".....

प्रभु को जिसने जिस रूप में सोचा, जिस व्यक्ति की भावना जैसी रही उसने अपने मन में उसी के अनुसार ईश्वर की छवि गढ़ ली....

रामचरित मानस के बालकांड से ली गई यह चौपाई बहुत खूबसूरत महत्व रखती हैं। सीता स्वयंवर का प्रसंग उकेरते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा कि जब अपने गुरु की आज्ञा पाकर प्रभु श्रीराम शिव धनुष तोड़ने के लिये बढ़ रहे थे, तब उस राजसभा में मौजूद लोगों ने श्रीराम के अनुपम सौंदर्य को अपनी भक्ति भावना के साथ निहारा। किसी ने उन्हें बालक राम के तौर पर देखा तो किसी ने उन्हें तरुण आकर्षक राम को, किसी ने वात्सल्य रूप से भगवान राम के दर्शन किये तो किसी ने दास भाव से उनकी आराधना की।

इसी दृश्य को समझाते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने समझाया कि जिस व्यक्ति के भीतर जैसी भावना रही उसने श्रीराम के उसी रूप में दर्शन भी किये....

22 जनवरी को अयोध्या में हम प्राण प्रतिष्ठा के कार्यक्रम में गए थे। वह केवल धार्मिक कार्यक्रम नहीं था बल्कि राष्ट्रीय अस्मिता का विषय था। राम मंदिर तोड़ने वाले आक्रांताओं ने केवल मंदिर नहीं तोड़ा था बल्कि पूरे देश को संदेश दिया था कि हम भारत में घुसकर कुछ भी कर जाएंगे और कोई कुछ नहीं कर पाएगा। यही कारण रहा कि जब उसी स्थान पर भव्य मंदिर बना, तो पूरा देश उसके साथ खड़ा हो गया। इतने वर्षों बाद ही सही, किंतु हमने यह लड़ाई जीत ली।

संकेत शब्द: 491 वर्षों बाद मिली अस्मिता पर आघात से निजात।

प्रस्तावना:

राममंदिर की मुक्ति के लिए लड़े गए 76 युद्ध एवं लाखों लोगों ने दिया बलिदान। मुक्ति के साथ मंदिर निर्माण की भी शुरू हुई तैयारी। 2010 में जमीन बंटवारे का फैसला। 40 दिन की नियमित सुनवाई के बाद आया सर्वोच्च निर्णय।

अयोध्या [रघुवरशरण]। सबसे बड़े विवाद का समाधान गत वर्ष नौ नवंबर को होने के साथ उस अयोध्या की कल्पना की जा सकती है, जिसने 491 वर्षों से अपनी छाती पर इस विवाद का बोझ सहा है। बाबर के आदेश पर उसके शिया सेनापति मीर बाकी ने 21 मार्च 1528 को जो मंदिर तोप से ध्वस्त कराया था, वह कोई साधारण मंदिर नहीं था। यह परात्पर ब्रह्म, मर्यादा पुरुषोत्तम, व्यक्ति और राजा के रूप में आदर्श एवं संभावनाओं के शिखर

माने जाने वाले भगवान राम की जन्मभूमि पर बना मंदिर था। भगवान राम और उनकी जन्मभूमि की महत्ता के अनुरूप यह अत्यंत भव्य था।

हालांकि भगवान राम के स्वधाम गमन के बाद सरयू में आई भीषण बाढ़ से अयोध्या की भव्य विरासत को काफी क्षति पहुंची। भगवान राम के पुत्र कुश ने अयोध्या की विरासत नए सिरे से सहेजने का प्रयास किया। इसी क्रम में उन्होंने रामजन्मभूमि पर विशाल मंदिर का निर्माण करवाया। युगों के सफर में यह मंदिर और अयोध्या जीर्ण-शीर्ण हुई, तो विक्रमादित्य नाम के शासक ने इसका उद्धार किया। मीर बाकी ने 1528 में जिस मंदिर को तोड़ा था, उसे 57 ई.पू. में युग प्रवर्तक राजाधिराज की उपाधि ग्रहण करने वाले विक्रमादित्य ने ही निर्मित कराया था। डेढ़ सहस्राब्दि से भी अधिक के सफर में राजाओं और आम श्रद्धालुओं से सेवित-संरक्षित यह मंदिर अपनी समृद्धि, भव्यता और उप महाद्वीप सहित पूर्व से लेकर उत्तर पश्चिम एशिया तक में फैले हिंदुओं की आस्था-अस्मिता का शीर्षस्थ केंद्र था।

पारंपरिक स्रोतों से प्राप्त इतिहास के अनुसार राममंदिर की वापसी के लिए 76 युद्ध लड़े गए। एकाध बार ऐसा भी हुआ, जब विवादित स्थल पर मंदिर के दावेदार राजाओं-लड़ाकों ने कुछ समय के लिए कब्जा भी जमाया पर यह स्थाई नहीं रह सका। जिस वर्ष मंदिर तोड़ा गया, उसी वर्ष पास की भीटी रियासत के राजा महताब सिंह, हंसवर रियासत के राजा रणविजय सिंह, रानी जयराज कुंवरि, राजगुरु पं. देवीदीन पांडेय आदि के नेतृत्व में मंदिर की मुक्ति के लिए जवाबी सैन्य अभियान छेड़ा गया। हालांकि शाही सेना को उन्होंने विचलित किया पर वे पार नहीं पा सके। 1530 से 1556 ई. के मध्य हुमायूं एवं शेरशाह के शासनकाल में 10 युद्धों का उल्लेख मिलता है।

इन युद्धों का नेतृत्व हंसवर की रानी जयराज कुंवरि एवं स्वामी महेशानंद ने किया। रानी स्त्री सेना का और महेशानंद साधु सेना का नेतृत्व करते थे। इन युद्धों की प्रबलता का अंदाजा रानी और महेशानंद तथा उनके सैनिकों की शहादत से लगाया जा सकता है। 1556 से 1605 ई. के बीच अकबर के शासनकाल में 20 युद्धों का जिक्र मिलता है। इन युद्धों में अयोध्या के ही संत बलरामाचार्य बराबर सेनापति के रूप में लड़ते रहे और अंत में वीरगति प्राप्त की। इन युद्धों और बलरामाचारी की शहादत का यह परिणाम रहा कि अकबर को इस ओर ध्यान देने के लिए विवश होना पड़ा, उसने वीरबल और टोडरमल की राय से बाबरी मस्जिद के सामने चबूतरा पर राममंदिर बनाने की इजाजत दी।

औरंगजेब के शासनकाल 1658 से 1707 ई. के मध्य राममंदिर के लिए 30 बार युद्ध हुए। इन युद्धों का नेतृत्व बाबा वैष्णवदास, कुंवर गोपाल सिंह, ठाकुर जगदंबा सिंह आदि ने किया। माना जाता है कि इन युद्धों में दशम् गुरु गोविंद सिंह ने निहंगों को भी राममंदिर की मुक्ति संघर्ष के लिए भेजा था और आखिरी युद्ध को छोड़कर बाकी में हिंदुओं को कामयाबी भी मिली थी। 18वीं शताब्दी के मध्य तक मुगल सत्ता का तो पतन हो गया, पर मंदिर के लिए संघर्ष बरकरार था। हालांकि अवध के नवाबों के समय अयोध्या को कुछ हद तक सांस्कृतिक-धार्मिक स्वायत्तता हासिल हुई। बार-बार के युद्धों से तंग अवध के नवाब सआदत अली खां ने अकबर की भांति हिंदुओं और मुस्लिमों को साथ-साथ पूजन एवं नमाज की अनुमति दी। इसके बावजूद संघर्ष नहीं थमा।

1847 से 1857 ई. के मध्य अवध के आखिरी नवाब रहे वाजिद अली के समय बाबा ऊद्धौदास के नेतृत्व में दो बार युद्ध का उल्लेख मिलता है। इन युद्धों के परिणामस्वरूप नवाब ने एक हिंदू, एक मुस्लिम और ईस्ट इंडिया कंपनी के एक प्रतिनिधि को शामिल कर कमीशन का गठन किया। इस कमीशन का निष्कर्ष था कि वहां कभी मस्जिद थी ही नहीं। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह भी बताया कि मीर बाकी ने मंदिर तोड़ कर जिस ढांचे

का निर्माण कराया था, उसके एक पत्थर पर यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि यह फरिश्तों के अवतरण का स्थल है। ऐसे निष्कर्ष और 1857 की क्रांति में निहित मूल्यों का संभवतः असर था कि हिंदुओं-मुस्लिमों की एकता प्रतिष्ठित हुई। इसी दौरान अयोध्या-फैजाबाद के स्थानीय मुस्लिमों ने बैठक कर तय किया कि मुस्लिम मंदिर के लिए बाबरी मस्जिद का दावा छोड़ दें। अंग्रेजों को जब इसकी भनक लगी, तो उन्होंने इस मुहिम के सूत्रधार अमीर अली एवं बाबा रामशरणदास को विवादित स्थल के कुछ ही फासले पर स्थित इमली के पेड़ पर फांसी दे दी।

युद्ध के मैदान से अदालत की चौखट तक

15 जनवरी 1885 को निर्मोही अखाड़ा के महंत रघुवरदास ने फैजाबाद के सब जज की अदालत में प्रार्थनापत्र देकर मंदिर निर्माण की आज्ञा मांगी। सब जज ने उनकी मांग अस्वीकार कर दी, तब उन्होंने जिला जज की अदालत में अपील की। 18 मार्च 1886 ई. को जिला जज कर्नल एफईए चेमियर ने विवादित स्थान का स्वयं निरीक्षण किया। उसने रघुवरदास की अपील तो खारिज कर दी पर यह कहते हुए कि हिंदुओं की पवित्र जन्मभूमि पर मस्जिद बनाना दुर्भाग्यपूर्ण है। 1912 से 34 ई. के बीच साधु समाज और आम श्रद्धालुओं ने विवादित भूमि पर अधिकार जमा लिया, पर अंग्रेजों ने इसे स्थायी नहीं होने दिया। इस दौरान कुछ हिंदुओं पर मुकदमे भी चले पर वे निर्दोष साबित हुए।

देश आजाद होते ही परवान चढ़ा संघर्ष

1947 में देश आजाद होते ही राममंदिर का संघर्ष परवान चढ़ा। इसकी भावभूमि सोमनाथ मंदिर से तैयार हुई। देश आजाद होते ही तत्कालीन गृह मंत्री सरदार पटेल ने केंद्रीय मंत्रिमंडल की स्वीकृति से महमूद गजनवी द्वारा ध्वंस्त सोमनाथ मंदिर का पुर्निर्माण कराया। राममंदिर के प्रति सरोकार और संघर्ष विरासत के रूप में पाने वाला तबका इन परिस्थितियों में चुप नहीं रह सका। 22-23 दिसंबर 1949 की रात विवादित ढांचे में रामलला का प्राकट्य प्रसंग सामने आया। दूसरे पक्ष का कहना था कि रामलला को साजिशपूर्वक रखा गया। जबकि ममंदिर की वापसी की जुगत कर रहे लोगों का कहना था कि रामलला चमत्कारिक घटना क्रम के बीच विवादित इमारत में स्वयं प्रकट हुए। इस मुहिम के साथ मंदिर के दावेदारों की नई पीढ़ी सामने आई। इनमें निर्वाणी अखाड़ा से जुड़े महंत अभिरामदास, रामचंद्रदास परमहंस एवं गोपाल सिंह विशारद जैसे किरदार प्रमुख थे। ...तो पर्दे के पीछे तत्कालीन गोरक्षपीठाधीश्वर एवं मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के परमगुरु महंत दिग्विजयनाथ जैसे किरदार भी थे। बहरहाल, विवादित इमारत में रामलला के प्राकट्य का डैमेज कंट्रोल करने में लगे तत्कालीन मुख्यमंत्री गोविंद

वल्लभ पंत के आदेश से विवादित इमारत के मुहाने पर लोहे की सरिया वाला दरवाजा लगाकर उस पर ताला लगा दिया गया पर नित्य पूजन बाधित नहीं किया गया। 29 दिसंबर को ही प्रशासन ने विवादित स्थल को अपनी कस्टडी में लिया और फैजाबाद नगरपालिका के तत्कालीन अध्यक्ष प्रियादत्तराम को रिसीवर नियुक्त किया।

तत्कालीन सिटी मजिस्ट्रेट गुरुदत्त सिंह की अहम भूमिका

तत्कालीन सिटी मजिस्ट्रेट ठाकुर गुरुदत्त सिंह पर शासन का दबाव था कि वे रामलला की मूर्ति विवादित इमारत से बाहर कराएं पर उन्होंने आदेश मानने से इंकार कर दिया। यह कहकर कि रामलला को हटाना हिंदूओं के व्यापक आक्रोश का सबब बनेगा और यदि ऐसा हुआ तो स्थितियां अनियंत्रित हो सकती हैं। इसकी कीमत उन्हें त्यागपत्र देकर चुकानी पड़ी।

अदालती लड़ाई में तब्दील हुआ मंदिर-मस्जिद विवाद

देश की आजादी के बाद राममंदिर के संघर्ष का रुख बदल चुका था। युद्धों से विवाद के पटाक्षेप की कोशिशें अदालती पैरोकारी में तब्दील हो रही थीं। इसकी शुरुआत गोपाल सिंह विशारद ने की। 16 जनवरी 1950 को उन्होंने सिविल जज की अदालत में दो वाद दाखिल किए। एक में रामलला की मूर्ति न हटाने तथा दूसरे में पूजा करने के हिंदुओं के अधिकार को बरकरार रखने की मांग की गई। तीन दिन बाद ही मिले अंतरिम आदेश से विशारद और हिंदू पक्ष को कुछ राहत भी मिली। इसी साल 21 फरवरी को मुस्लिमों ने दावा किया कि जिस इमारत में रामलला स्थापित किए गए हैं, वहां मस्जिद थी और बाबर के हुक्म से बनाई गई थी। इसी बीच तीन मार्च को अदालत ने आदेश दिया कि मूर्तियां नहीं हटेंगी, पूजा होती रहेगी किंतु संपत्ति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। 5 दिसंबर 1950 को रामचंद्रदास परमहंस ने अदालत से आम दर्शनार्थियों के लिए पूजन और दर्शन का अधिकार मांगा। 21 दिसंबर 1959 को सिविल जज की अदालत में निर्मोही अखाड़ा ने अपना वाद प्रस्तुत किया। एक वर्ष के भीतर ही सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड भी अदालत पहुंचा।

यूं पड़ी मंदिर आंदोलन की नींव

सात-आठ अप्रैल 1984 को दिल्ली में आयोजित विहिप की धर्मसंसद में सनातन-वैदिक धर्म के विभिन्न संप्रदायों के 528 संतों ने एकमत से रामजन्मभूमि मुक्ति के निर्णय के प्रस्ताव का समर्थन किया। 18 जून 1984 को दिगंबर अखाड़ा में संतों की सभा के माध्यम से रामजन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति का गठन किया गया। इसका संयोजक प्रदेश सरकार के पूर्व मंत्री दाऊदयाल खन्ना, अध्यक्ष तत्कालीन गोरक्षपीठाधीश्वर महंत अवेद्यनाथ एवं उपाध्यक्ष रामचंद्रदास परमहंस एवं महंत नृत्यगोपालदास को चुना गया। जन जागरण के उद्देश्य से मुक्ति यज्ञ समिति के संयोजन में बिहार के सीतामढ़ी से 25 सितंबर को राम-जानकी रथयात्रा शुरू हुई। इसी वर्ष सात अक्टूबर को हजारों आम रामभक्तों एवं साधु-संतों ने अयोध्या स्थित तट पर सरयू जल से रामजन्मभूमि मुक्ति का संकल्प लिया। अगले दिन रामजन्मभूमि मुक्ति संकल्प यात्रा विशाल रैली के रूप में लखनऊ के लिए रवाना हुई। 14 अक्टूबर को लखनऊ के बेगम हजरत महल पार्क में विशाल सभा के माध्यम से मंदिर के लिए हुंकार भरी गई। इसी दिन मुक्ति यज्ञ समिति के शीर्ष प्रतिनिधि मंडल ने तत्कालीन मुख्यमंत्री नारायणदत तिवारी से भेंट कर उन्हें अपनी मांग से अवगत कराया। यह यात्रा 31 अक्टूबर को दिल्ली पहुंचनी थी और वहां सभा के साथ एक प्रतिनिधि मंडल तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से भेंट करने वाला था। यात्रा गाजियाबाद तक ही पहुंची थी, तभी ज्ञात हुआ कि श्रीमती गांधी की हत्या कर दी गई है और इसी के साथ संकल्प यात्रा स्थगित कर दी गई।

परमहंस ने किया आत्मदाह का एलान

तत्कालीन प्रधानमंत्री की हत्या से उपजा तनाव थमते ही विहिप और रामजन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति का नेतृत्व सक्रिय हुआ। 26 मार्च 1985 को राममंदिर की मुक्ति के लिए 50 लाख रामभक्तों का बलिदानी जत्था तैयार करने की घोषणा की गई। इसी वर्ष 18 अप्रैल को ही रामचंद्रदास परमहंस ने एलान किया कि आगामी रामनवमी तक यदि रामजन्मभूमिपर लगा ताला नहीं खुला, तो वे आत्मदाह कर लेंगे। इस बीच यात्राओं, बैठकों, सभाओं एवं बयानों से मंदिर की दावेदारी को धार मिलती रही।

रामलला के द्वार का खुला ताला

21 जनवरी 1986 को अधिवक्ता उमेशचंद्र पांडेय ने रामलला के द्वार पर लगा ताला खोलवाने के लिए फैजाबाद की मुंसिफ अदालत में मुकदमा दायर किया। मुंसिफ ने इस पर कोई भी आदेश देने से इंकार कर दिया। इसके बाद पांडेय जनपद न्यायाधीश की अदालत में गए और एक फरवरी 1986 को जनपद न्यायाधीश ने ही ताला खोलवाने का आदेश दिया।

मुक्ति के साथ मंदिर निर्माण की भी शुरू हुई तैयारी

रामलला का ताला खुलने से मंदिर समर्थकों में उत्साह का संचार हुआ। 1986 में ही मंदिर निर्माण के लिए रामजन्मभूमि न्यास का गठन किया गया। न्यास के ही संयोजन में 1991 से अयोध्या में ही रामंदिर निर्माण कार्यशाला संचालित है। इस कार्यशाला में प्रस्तावित मंदिर के लिए दो तिहाई पत्थरों की तराशी की भी जा चुकी है।

1989 में ही हो चुका है शिलान्यास

- 1987 में यदि प्रदेश सरकार ने रामजन्मभूमि मुक्ति यात्राओं को प्रतिबंधित किया, तो आंदोलनकारियों ने देश भर में रामजन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समितियों का गठन किया। एक फरवरी 1989 को प्रयाग की तृतीय धर्मसंसद में एक लाख संतों ने रामशिला पूजन तथा इसी साल 10 नवंबर को राममंदिर का शिलान्यास करने का एलान किया। विहिप नेतृत्व पर शिलान्यास रोके जाने का काफी दबाव पड़ा पर शिलान्यास का कार्यक्रम स्थगित नहीं किया गया। दो नवंबर को काशी के विशेषज्ञ विद्वानों ने रामलला से 192 फीट दक्षिण-पूर्व कोने पर शिलान्यास के लिए भूमि सुनिश्चित की। पांच नवंबर से हजारों की संख्या में संत एवं श्रद्धालु पूजित शिलाएं लेकर अयोध्या पहुंचने लगे। मंदिर समर्थकों के आगे दबाव का सामना कर रही तत्कालीन प्रदेश सरकार ने यह स्पष्ट किया कि जहां शिलान्यास प्रस्तावित है, वह स्थान गैरविवादित है। तय तारीख पर अपराह्न 1:35 बजे बिहार निवासी अनुसूचित जाति के कामेश्वर चोपाल ने प्रथम शिला रखी।

गर्भगृह के इर्द-गिर्द पुरातात्विक उत्खनन

मामले की तह तक जाने की गरज से 2003 में हाईकोर्ट के आदेश पर गर्भगृह के इर्द-गिर्द आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की ओर से उत्खनन कराया गया। उत्खनन की रिपोर्ट अदालती निर्णय के लिए मील का पत्थर साबित हुई।

2010 में जमीन बंटवारे का फैसला

30 सितंबर 2010 को इलाहाबाद हाईकोर्ट की लखनऊ खंडपीठ ने विवादित जमीन को रामलला विराजमान और सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के बीच बांटने का आदेश दिया। गर्भगृह सहित दो तिहाई हिस्सा रामलला को एवं एक तिहाई हिस्सा मस्जिद बनाने के लिए दिया गया।

उच्चतम न्यायालय ने हाईकोर्ट के फैसले पर लगायी रोक

नौ मई 2011 को उच्चतम न्यायालय ने हाईकोर्ट के फैसले पर रोक लगा दी।

मध्यस्थता का सुझाव

मार्च 2019 में सुप्रीमकोर्ट ने मध्यस्थता से मसले के हल का सुझाव दिया, पर बात नहीं बनी। अंततः छह अगस्त 2019 से सुप्रीमकोर्ट में मामले की नियमित सुनवाई शुरू हुई।

40 दिन की नियमित सुनवाई के बाद आया सर्वोच्च निर्णय

नौ नवंबर 2019 को सुप्रीमकोर्ट के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय बेंच ने अपना निर्णय मंदिर के पक्ष में सुना कर इस गंभीर मामले का पटाक्षेप कर दिया।

रामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र ट्रस्ट का गठन

राम मंदिर निर्माण के लिए सुप्रीमकोर्ट के आदेशानुसार पांच फरवरी 2020 को रामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र ट्रस्ट का गठन किया गया।

प्रधानमंत्री ने किया भूमिपूजन

राम मंदिर निर्माण के लिए पांच अगस्त 2020 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भूमिपूजन किया।

अयोध्या में हुए **प्राण प्रतिष्ठा समारोह** । सुमित्रा महाजन ने कहा कि **अयोध्या** की व्यवस्था देखने और सीखने लायक थी। कार्यक्रम के बाद में पता चला कि एक साधु बिना आमंत्रण कार्यक्रम में जाने की जिद कर रहे थे और पुलिस अधिकारी उन्हें रोक रहे थे। साधु ने पुलिस पर लाठी चला दी, लेकिन पुलिस जवान ने प्रभु श्रीराम का कार्यक्रम समझकर साधु को कुछ नहीं कहा। शायद वह साधु की ममता समझ रहा था।

मालवा चैम्बर्स आफ कामर्स एंड इंडस्ट्रीज के अध्यक्ष अजीत सिंह नारंग ने कहा कि जब बाबर जुर्म कर रहा था, तब गुरुनानक देव जी ने बाबर को जाबर कहा था। बाबरी मस्जिद बनाकर हमारे तिलक और मस्तिष्क का अपमान हुआ था। निहंग सिखों ने बाबरी मस्जिद में घुसकर श्रीराम के नारे लगाए थे और 14 दिनों तक हवन भी किया था। इनके अलावा गुरमीत सिंह नारंग ने कहा कि सामाजिक संस्था के माध्यम से 15 साल की सेवा का अवार्ड मुझे ईश्वर ने दिया कि मुझे अयोध्या बुला लिया।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जब कहा कि हमारे राम आ गए, तो उस पल ने सभी को भावुक कर दिया। वरिष्ठ पत्रकार अष्ठाना ने कहा कि यह जीवन का कोई पुण्य ही था कि जिसमें हम सब आपकी तरफ से साक्षी बन सके। जैसा अखबारों में वहां का वर्णन पढ़ रहे थे, वहां सबकुछ वैसा ही था। राम राज्य के नागरिक होने के नाते हमें जो करना है, अभी वो शेष है। राम के आदर्शों को अपने जीवन में उतारना होगा। इसके बाद कार्यक्रम में देशभक्ति गीतों की प्रस्तुति हुई।

राम लला को याद कर भावुक हुईं ताई

सुमित्रा महाजन ने अपने अनुभव सुनाते हुए कहा कि लड़ाई हम सबने लड़ी है। श्रीराम भाई, पुत्र, राजा आदि के रूप में सबसे आदर्श किरदार हैं। मैं जब रामलला के सामने थी, तो आंखों में आंसू आ गए थे। शायद लला भी रो रहे होंगे और कह रहे होंगे कि मैं आ गया। इतना कहते ही ताई की आंखों से आंसू आ गए, मानो वह सीधे रामलला से बातें कर रहीं हों। ताई ने बताया कि जब मैं दर्शन करके वापस लौट रही भी तो साध्वी ऋतंभरा ने दौड़कर गले लगा लिया और रोने लगीं। कह रही थीं कि रामलला आ गए। मैंने उन्हें कहा कि यह तुम्हारे संघर्ष

का सुफल है। साध्वी ने मुझसे कहा कि यह आपकी भी मेहनत है। ताई ने कहा कि रामलला ने बुला लिया और ऐसी साध्वी मुझे ये कह रही हैं जिन्होंने पूरा जीवन रामलला को समर्पित कर दिया। यह सुनकर मेरा पूरा जीवन सफल हो गया।

मोमबत्ती जलाकर किया बलिदानियों को नमन

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर रीगल चौराहा स्थित इंडिया गेट की प्रतिकृति व अमर जवान ज्योति पर वीर बलिदानियों को श्रद्धांजलि दी गई। यहां भारत माता की जय व वंदे मातरम के उद्घोष गूंजते रहे। संस्था सेवा सुरभि की मेजबानी में जिला प्रशासन, विकास प्राधिकरण, पुलिस एवं नगर निगम की सहभागिता में आयोजित झंडा ऊंचा रहे हमारा अभियान में सैकड़ों नागरिकों ने वंदे मातरम् और देश के जाबांज बलिदानी अमर रहें, जैसे जोशीले नारों के बीच मोमबत्ती प्रज्वलित कर अपनी दीपांजलि समर्पित की।

निष्कर्ष:

कई सालों बाद भारतीयों ने अपनी स्व अस्तित्व को पहचाना।

भारतीयों का स्वाभिमान फिर से जागृत हुआ।

यह धर्म की नहीं यहां अस्मिता की लड़ाई थी।

इस प्राण प्रतिष्ठा के बाद अगर हम सभी उन बलिदानियों के प्रति अगर कृत करता व्यक्त करते थे तो मैं समझूंगा कि मेरा यहां आर्टिकल लिखने का उद्देश्य सफल हुआ।

संदर्भ:

1. Source www.jagran.com
2. http/www.amarujala.com
3. www.naidunia.com
4. https://www.naidunia.com/madhya-pradesh/indore-gold-and-silver-price-in-mp-gogold-and-silver-price-in-mp-indore-sarafa-bazar-ratlam-sarafa-bazar-and-ujjain-sarafa-bazar-gold-and-silver-rateld-stable-due-to-stoppage-of-rise-in-dollar-fall-in-silver-continues-see-todays-prices-8275293

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में मजदूर तथा कृषक जीवन

गोपाळ शंकरराव भोसले
प्राध्यापक, हिंदी विभाग
जनविकास महाविद्यालय बनसारोळा
ता.केज. जि.बीड. 431517

हमारा भारत देश एक कृषि प्रधान और गावों का देश है।यहाँ पर लगभग 65 ते 70 प्रतिशत आबादी कृषि कार्य पर निर्भर है। इसलिए हमारे देश को 'किसानों का देश' कहना चाहिए।हमारे देश में किसानो को रीड की हड्डी कहा जाता है ।जब से इस धरती पर जीवन की उत्पति हुई है तब से ही किसान खेती करके अनाज का उत्पादन कर रहे है।यानि किसान ही सारी दुनिया के लिए भोजन हेतु अनाज, फल, सब्जियाँ और चारे का उत्पादन करते आ रहे है। इस धरती पुत्र किसानों को 'अन्नदाता' भी कहा जाता है। यदि किसान खेती नहीं करेंगे तो अनाज का उत्पादन नहीं होगा और हमारे भोजन की व्यवस्था भी नहीं होगी। बिना भोजन के हमारा जीवित रहना असंभव है।

मानव सभ्यता के विकास में कृषि की अमूल्य भूमिका रही है। मानव का अस्तित्व ही कृषि पर टिका हुआ है। परंतु आज सारी दुनिया में सबसे ज्यादा दुर्दशा किसानों की ही है। किसान सब के लिए अनाज उगा रहे है और खुद भुखे मरने के लिए विवश है। किसान अपनी खेती से इतना भी नही कमा पाते कि वो अपने परिवार का ठिक-ठाक से प्रबंध कर सके। किसान के जैसा परिश्रमी और धैर्यवान कोई भी नही है। फिर भी आज की इस हालात में किसान सुखी नही है। कभी-कभी वो भयानक अकाल (सूखा) की मार से मारा जाता है और कभी प्रलयंकारी बाढ से। इन बढती अपदावों के बोझ से ज्यादा किसान कर्ज के बोझ से आत्महत्या (खुदखुशी) करने पर मजबूर होते है। सरकारी और प्रशासनिक व्यवस्था किसान को ही हमेशा हर प्रकार से लुटती रही है।

समकालीन परिदृश्य को समझने के लिए जब तक हम प्रेमचंद के समय के किसान आन्दोलन को नहीं समझेंगे तब तक हम समकालीन साहित्य में किसान विमर्श को नहीं समझ सकते। किसान हमेशा सें जुझता रहा है। इसके बावजूद भी वह अपने कर्तव्य के प्रति इमानदार रहा है। किसान को आज भी राजनेता, साहूकार और प्रशासनिक अधिकारी धोरवा देते आये है। कभी भी किसानों की समस्याओं को समाप्त6 करने का कोई नहीं सोचता है।

कमजोर, आर्थिक स्थिति का सामना करता हुआ गरीब किसान और मजदूर हालात के आगे मजबूर है। खेतों में आये दिन मेहनत करना, मजदूरी करना और खेत में आयी फसल की जंगली जानवरों से रक्षा करना। यही आज के किसानो की खस्ता हालात है। इस बात का प्रमाण प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'पूस की रात' का हल्कू कहता है - "फसल तौ चौपट हो गयी अब जाडे की रात में खेत में सोना तो नहीं पडेगा।"[1]

वास्तव में किसानों के जीवन का वर्णन इतना सच्चा मर्मस्पर्शी, जीवन्त और मार्मिक तरीके से प्रेमचन्द जी ने किया है की 'पूस की रात' में किसान की ह्रदय विदारक पहलू को जीवन्तता के साथ उजागर करके किसान के ह्रदय की वेदना को शब्दबद्ध किया है। प्रेमचन्द गरिबी की मूल कारणों तक पहुँचना चाहते है। 'पूस की रात' कहानी के हल्कू की गरीबी 'प्राकृतिक गरिबी' नहीं है जो उत्पादन की कमी के कारण पैदा होती है। यह तो शोषण और संसाधनों के असमान वितरण से पैदा होने वाली 'कृत्रिम गरीबी' है। जिसे आज भी सामन्ती शक्तियाँ कायम रखना चाहती है। 'पूस की रात' कहानी के प्रमुख पात्र हल्कू की दुर्दशा है। ठिक आजादी कें 75 साल के बाद भी

किसानों की हीन दशा है। उनकी सामाजिक - आर्थिक व वर्गीय स्थिति है। भारतीय समाज में राजनीति, राजनेता, पूँजीपति, अधिकारी, पटवारी शासन सत्ता के तथाकथित एवं स्वघोषित रहनुमाओं का 'पहला' एवं 'आखरी' निशाना भारतीय किसान तथा मजदूर बनता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी आपली रचना 'संपत्तिशास्त्र' में लिखते है-

जहाँ तक जमीन की उर्वरा या उत्पादक शक्ति की सीमा का अतिक्रमण नहीं होता। वही तक अधिक खर्च करने से लाभ हो सकता है। आगे नही। उत्पादकता की सीमा पर पहुँच जाने पर खर्च बढाने से लाभ के बदले उलटा हानि होती है । अंततः फल यह होगा कि पैदावार बढाने की कोशिश में अधिक पूँजी लगाने और अधिक मेहनत करने पर भी काफी आदमी हिस्सा कम पडेगा। धीरे- धीरे यह हिस्सा और कम होता जायेगा। यहाँ तक दो चार वर्ष पैदावार की अपेक्षा खर्च बड जायेगा और उन पन्द्रह आदमियों का गुजारा मुश्किल से होगा। उन्हें जमीन छोडकर भागना पडेगा।"[2]

आज का किसान कर्ज की समस्या के साथ- साथ बिजली, खाद, पानी आदी की समस्याओं से परेशान है। किसानों के फसलों को उचित मूल्य न मिल पाना उनके लिए बहुत बडी समस्या है। किसानों की इन समस्या पर सूर्यदीप यादव 'जमीन' उपन्यास में लिखते है - " जमीन किसी की निजी बपौती नहीं होती वह सार्वजनिक सर्व राष्ट्रीय बल्कि विश्व की धरोहर होती है। धरती सा जमीन की गोद और आकाश की छत्रछाया के बिना हवा की कोख से असंख्य जीव सृष्टि से जन्म लेते है और उसे हम मान्य रखते है। स्वीकार करते है जिसे गैर की नाजायज चीज समज कर अस्विकार करते है उस जमीन की उपज यह कृत है।"[3]

पंकज सुबीर अपने उपन्यास 'अकाल में उत्सव 'में लिखते है - "कमला की तोडी बिक गई। बिकनी ही थी। छोटी जात के किसान की पत्नी के शरीर पर जेवर क्रमशः घटने के लिय ही होते है। और इस घटाव का एक भौतिक अंत शून्य होता है। जब परिवार की महिला के पास धातुओं का अंत हो जाता है तब तय हो जाता है कि किसानी करणे वाली बस यह अंतिम पिढी है, इसके बाद अब जो होंगे वह मजदूर होंगे। यह धातुएँ बिक - बिक कर किसान को मजदूर बनने से रोकती है।"[4]

वर्तमान समय में देश ऐसी स्थितिसे गुजर रहा है कि किसान अपने अधिकारों के लिए आंदोलन कर रहे है, मगर उनकी समस्याओं को सुनने वाल कोई भी नहीं है। किसान तथा मजदूर का जीवन कष्टों सें दुःखों सें भरा हुआ है फिर भी वह देश के लिए दिन रात मेहनत करके अनाज उगाते है। वह खुद भुखा सोता है मगर दुसरों का पेट भरता है।

" मैं उगाता कपास तो दुनिया कपडे पहनती है,

मेरी ही लाश कफन के लिए क्यों तरसती है।

संदर्भ ग्रंथ.

1. कथा द्वादशी - हिंदी अध्ययन मंडल - पृष्ठ-25- वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
2. संपत्तिशास्त्र - महावीर प्रसाद -द्विवेदी- पृष्ठ-47
3. जमीन - डॉ. सूर्यदीप यादव - सरिता प्रकाशन, नडियाबाद भूमिका से लिया गया है।
4. अकाल में उत्सव - पंकज सुबीर - पृष्ठ 78. शिवाना प्रकाशन

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी साहित्य में नारी अस्मिता

डॉ. राम सदाशिव बड़े

स्वामी रामानंद तीर्थ, महाविद्यालय अंबेजोगाई

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है-

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी

आंचल में है दूध और आंखों में पानी"।

इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि अपार सहनशील तथा ममता की प्रतिमूर्ति नारी ने पुरुष के अत्याचार और यातनाएं तिरस्कार सहे है। वास्तव में यहां पर गुप्त जी नारी की असमर्थता एवं अक्षमता पर दुख व्यक्त कर रहे हैं।

भारतीय समाज में स्त्रियों का आदर और सम्मान प्राचीन काल से होता रहा है। उनके प्रति समाज की स्वाभाविक श्रद्धा और भावना रही है। उनका महत्व इतना अधिक रहा है कि उनके बिना पुरुष अपने आप को अकेला समझता था। प्राचीन और मध्ययुग में स्त्री को इतना सम्मान होने के बावजूद भी वह पुरुष की तरह स्वतंत्र नहीं थी। वह सभी जरूरतो के लिए पुरुष पर निर्भर थी। बचपन में पिता द्वारा, विवाह के पश्चात पति द्वारा और वृद्ध आश्रम में पुत्र द्वारा संरक्षित की गई। आज नारी आधुनिक हो गई है, किंतु इतना भी नहीं कि वह स्वतंत्रता से घूम सके स्वयं के निर्णय स्वयं कर सके। उसके लिए सामाजिक बंधन उतने ही कड़े हैं, जितने पहले थे और वह पुरुष पर उतनी ही निर्भर है, जो स्वयं को असहाय है और निर्बल समझती है। इसीलिए तो राजा हिंदुस्तानी फिल्म की नायिका फिल्म के अंत में कहती है-" तुम तो मर्द हो कभी भी छोड़ कर जा सकते हो मैं कहां जाऊं? "

वाहरे तुम्हारा समाज और न्याय! बात करते हैं स्त्री-पुरुष समानता वाली और प्रत्यक्ष रूप में अन्याय करते हो स्त्री के साथ। समाज में रहते हुए पुरुष खुली सांड की तरह घूमता रहे, शराब पिए, मांस मछली खाएं, इधर-उधर मुंह मारे, वेश्याओं के तलवे चाटे और स्त्री किसी के और मुंह उठाकर भी देखें तो भ्रष्ट हो जाए। चरित्रहीन हो जाए? क्या चरित्र और शील स्त्री के लिए ही है? पुरुष को कुछ भी नहीं। इसमें दोष है, पुरुष मानसिकता का। वह तो स्त्री को उस चार दिवारी से बाहर ही नहीं आने देना चाहता था, जो समाज ने उसके लिए बनाई है। पुरुष जाति का एक वर्ग स्त्रियों को हमेशा कहता रहता है वह कुल्टा है, वेश्या है। हम उनसे प्रश्न पूछना चाहते हैं कि उसे कुल्टा किसने बनाया? उसे वेश्या किसने बनाया? आपने ही ना!

जिस प्रकार चुंबक और लोहे का परस्पर आकर्षण रहता है, उसी प्रकार नारी और पुरुष में भी पारस्परिक आकर्षण होता है। शारीरिक सौंदर्य नारी और पुरुष के पारस्परिक आकर्षण का केंद्र रहता है। बात आकर्षण तक तो ठीक है, किंतु यह आकर्षण यहां तक नहीं होना चाहिए जहां सेक्स और वस्तु का रूप आ जाए। पहले हमने जिस नारी को देवी, मां बहन, बेटी के रूप में देखा था क्या आज वह इतनी गिर गई है कि वह केवल एक वस्तु बन जाए। स्त्री गिर नहीं गई हमने उसे गिराया है। हमारी पुरुष मानसिकता ने उसे गिरा दिया है। यह तो सरासर पुरुष जाति का दोष है। पुरुष तो यहां तक गिर गए है कि किसी कुत्ते को हड्डी का टुकड़ा डालने के बाद लाल टपकता हुआ उसके पीछे भागता है। उसी प्रकार पुरुष भी स्त्री को देखते ही लाल टपकता हुआ उसके पीछे लगता है। पुरुष का उद्देश्य एक ही होता है जवान लड़की दिखाई दी, तो बस उसे अपनाओ और फेंक दो । यकीन नहीं होता, तो राम तेरी गंगा मैली देखिए और सोचिए की गंगा रूपी पवित्र नारी को हम किस प्रकार से भ्रष्ट कर रहे हैं।

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद जी ने कामायनी में एक ओर नारी के सौंदर्य का चित्रण किया है , तो दूसरी ओर उसे श्रेष्ठ साबित करने का प्रयास किया है –

"नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखला अंग,

खिला हो जो, बिजली का फूल मेघ बन बीच गुलाबी रंग "2

नारी की श्रेष्ठ साबित करते हुए प्रसाद जी कहते हैं-

"मनु उसने तो कर दिया दान

वह हृदय प्रणय से पूर्ण सरल जिसमें जीवन का भारत मान

जिसमें चेतनता ही केवल नीज प्रभासे ज्योतिमान

पर तुमने तो पाया सदैव उसकी सुंदर जड़ देह मात्र"3

नारी को पुरुष प्रताड़ित करते हैं इसमें कोई शक नहीं है। हम शायद ऋग्वेद की शिक्षा भूल गए हैं। ऋग्वेद में एक स्थान पर लिखा गया है-" हे स्त्री मै सौभाग्य अर्थात ग्रहस्तश्रम में सुख के लिए तेरा हस्त ग्रहण करता हूं और इस बात की प्रतिज्ञा करता हूं कि जो काम तुझको अप्रिय होगा मैं कभी ना करूंगा। ऐसे ही स्त्री भी पुरुष से कहती है, जो व्यवहार आपको अप्रिय होगा उसको मैं भी ना करूंगी और हम दोनों व्यभिचार आदि दोष रहित होकर वृद्धावस्था पर्यंत परस्पर आनंद के व्यवहारों को करेंगे। "4 हम रामायण जैसे ग्रंथ में कुछ ऐसे उदाहरण पाएंगे जहां नारी के सामने बड़े से बड़ा व्यक्ति भी नतमस्तक होता दिखाई देता है। दशरथ कहते हैं-"हे कैकई मैं तुम्हें हाथ जोड़ता हूं तुम्हारे पैरों का स्पर्श करता हूं। तू राम की रक्षा कर इस धरती पर धर्म मुझे स्पर्श न कर सके "5

प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार जयशंकर प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी नाटक में नारी जीवन की वर्तमान समस्याओं पर प्रकाश डाला है। इसमें उन्होंने नारी को पराधीनता से मुक्ति पाने का आग्रह किया है। नाटक में उन्होंने पुरुषों के अत्याचार, अन्याय, दमन, शोषण आदि का चित्रण किया है-" कुछ नहीं मैं केवल यही कहना चाहती हूं कि पुरुषों ने स्त्रियों को पशु संपत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है। वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपनी कल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते। हां तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहां से चली जाऊंगी" 6

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की धारणा थी की नारी पिंड मात्रा न होकर तत्व है। मांस पिंड को नारी समझना भूल है। नारी परम शिव का निषेधात्मक तत्व है। वह भोग के लिए नहीं, अपितु आनंद लूटने के लिए संसार में आती है। उपन्यास में एक स्थान पर लिखते हैं -" क्या संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु इसी प्रकार अपमानित होती रहेगी"7 नारी की स्थिति और उसके डावाडोल होने वाले विश्वास को रमेश बक्षी कुछ इस प्रकार अभिव्यक्ति देते हैं -"हम पंख मुक्त पंखहीन पक्षी है, हमारे पंख तो देखने भर के हैं, यह खूबसूरत है, कीमती है और ऐसा नारी जीवन हिंदुस्तान के हर घर में पाया जाता है।"8 कमलेश्वर के शब्दों में -"नारी स्वतंत्र हाथी के दांत है, जिन्हें खूबसूरती के लिए लगाए रखना है।"9

वर्तमान भारत में आज नारी मुक्ति, नारी स्वतंत्रता जैसे अभियान चलाए जा रहे हैं। इन आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य है, नारी को आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व उपलब्ध कराना। विज्ञान एवं तकनीकी विकास के आज के युग में जब विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों और टेलीविजन के अनेक चैनलों का भारत में प्रवेश हो चुका है। शहरी वातावरण एकदम बदल गया है और इसका सीधा परिणाम मध्य वर्ग पर हुआ है। पश्चात नारी वर्ग की स्वच्छंदता ने पब्लिक स्कूलों, कॉन्वेंट तथा सेंट्रल स्कूल आफ कॉलेज में शिक्षित भारतीय नारी वर्ग को विशेष कर अपनी और आकृष्ट किया है। उनमें से कुछ सिगरेट, मदिरा अथवा नशीले पदार्थों का सेवन वैसे ही करती है, जैसे पुरुष। यदि दोनों काम करते हैं, तो थकावट केवल पति को क्यों हो। वहा पत्नी को भी होती है। फिर वह अकेला सारा काम क्यों करें?

इस संपूर्ण विवेचन में हमने नारी की श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयास किया है। ऐसा करके हमने केवल स्त्री की श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयास किया है। हम केवल स्त्री की श्रेष्ठता सिद्ध करना नहीं चाहते, अपितु हम तो स्त्री और पुरुष दोनों को मिलकर साथ चलने का आग्रह करना चाहते हैं। हां कुछ बातों में स्त्री पुरुष से अवश्य श्रेष्ठ है। प्रेमचंद के शब्दों में देखिए-" स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श है। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और आध्यात्मिक विषयों का आश्रय लेकर इस लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है। पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूं उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ। "10

संदर्भ ग्रंथः-

1. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृष्ठ.28
2. जयशंकर प्रसाद, कामायनी ,पृष्ठ.29
3. वही, पृष्ठ. 83
4. महर्षि दयानंद सरस्वती ,ऋग्वेद पृष्ठ.207
5. अ. ज. प्रभु, रामायण समालोचना, पृष्ठ.509
6. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ. 25
7. वही, पृष्ठ. 28
8. रमेश बक्षी, किस्सा एक शतुर मुर्ग का : मेज पर टिकी हुई कहानी, पृष्ठ.37
9. कमलेश्वर, तीन दिन पहले की बात, कस्बे का आदमी, पृष्ठ.9
10. प्रेमचंद,गोदान, पृष्ठ.165

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में में किन्नर विमर्श

डॉ. विद्या बाबूराव खाडे दलवे
कला महाविद्यालय नांदुरघाट ता केज
जि बीड महाराष्ट्र 431126

प्रस्तावना :

आज समाज में किन्नर का नाम लेते ही सबके मन में एक अजीब- सी भावना पैदा होती है। बस अड्डे पर, रेल डिब्बे में, स्टेशन या चौराहे पर किन्नरों की व्यवहार से त्रस्त व्यक्ती उनके मानवाधिकारों के बारे में सोचना तो दूर उनको देखते ही दूर भागने का प्रयास करता है । इसलिये इस समुदाय ने भी संवैधानिक रूप से अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष शुरू कर दिया है। हिंदी साहित्यकार भी इस समुदाय की समस्याओं को उजागर करने का प्रयास कर रहे है । संवेदनशील रचनाकारों ने कविता, कहानी, और उपन्यास के माध्यम से किन्नरों के प्रति सहानुभूती व्यक्त की है । लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने अपनी आत्मकथा ' मै हिजडा मै लक्ष्मी ' 2015 में स्वानुभूती के माध्यम से किन्नर समुदाय के सच को जागर किया है। महेंद्र भीष्म के उपन्यास ' किन्नर कथा ' में राजघराने में जन्मे किन्नर सोना उर्फ चंदा के राज को माँ अपनी ममता के कारण बहुत दिनों तक प्रकट नहीं होने देतीं। महेंद्र भीष्म ने जगह - जगह पर उस माँ की ममता और पीड़ा को उजागर किया है। जिसकी संतान को किन्नर होने के कारण उससे दूर किया जाता है - " संतान कैसी भी हो, उसमें शारीरिक, मानसिक कमी क्यों न हो, फिर भले ही वह संतान हिजड़ा ही क्यों न हो। फिर भी सामाजिक परिस्थितियाँ, खानदान की इज्जत- मर्यादा, झूठी शान के सामने अपने हिजड़े बच्चे से उसके जन्मदाता हर हाल में छुटकारा पा लेना चाहते हैं। " 1 भारतीय परिप्रेक्ष्य में हरेक समाज की अपनी कहानी है और हर एक समाज का अपना दर्द भी है। इस कड़ी में समकालीन हिंदी कहानियाँ किन्नर समाज और उसके दर्द को बयान करने में अपना सफर तय कर रहीं हैं। विमर्श के हर दौर में ये कहानियाँ किन्नर समाज को केंद्र में रखकर एक नया विमर्श खडा करती है। किन्नर समाज को कालांतर से हाशिए पर रखने के साथ- साथ उससे घृणा- हीन भावना उत्पन्न होता है। भारत में प्राचीन काल से ही इस विशेष वर्ग के समुदाय से अर्थात हिजड़ों का उल्लेख मिलता है। भारत के पौराणिक ग्रंथ महाभारत में भी ' श्रीखंडी' नामक किन्नर का उल्लेख हुआ है। महाभारत मे अर्जुन ने अपने अज्ञातवास के समय वृहन्नला नामक हिजड़ा का रूप धारण करके वहाँ अपना जीवन निर्वाह किया था। ऐसे ही कयी उदाहरण हमें पुरानों में भी देखने को मिलते है। यही इसका प्रमाण है। इस समाज को अपने जनानांगी दोषों के कारण समाज से बहिष्कृत किया गया। यह समाज न तो नर है नही मादा । अर्थात इसका कोई लिंग नहीं। इसलिए इस समाज को किन्नर, हिजड़ा, छक्का, थर्ड जेंडर, कीव, खोजा, मौसी आदि नामों से जाना जाता है।

वर्तमान समय में लेखक , लेखिकाओं ने अपनी लेखनी के माध्यम से अनेक विमर्शों से अस्मिता की पहचान की है। चाहे स्त्री - विमर्श हो, या दलित विमर्श हो, या आदिवासी विमर्श हो, किंतु जब हम किन्नर विमर्श की बात करते हैं; तो यह साहित्य मौन हो जाता है। अब तक किन्नर के विषय में बहुत लिखा गया है किंतु उसे नायक नही बनाया गया। नीरजा माधव द्वारा लिखित उपन्यास ' यमदीप ' हिंदी साहित्य जगत में किन्नर समाज का स्वतंत्र रूप प्रतिनिधित्व करनेववाला प्रथम उपन्यास है। किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, गुलाम मंडी - निर्मला भुराडिया , नाला सोपारा - पोस्ट बॉक्स नं0 203 , चित्रा मुदगल- 50-50 , भगवंत अनमोल - तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, मोनिका देवी का उपन्यास ' अस्तित्व की तलाश में सिमरन और ' हाँ मैं किन्नर हूँ ' आदि उपन्यास

प्रमुख है। यह समाज इस समुदाय को इंसान के रूप में स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है। जनांनग दोष के साथ पैदा हुए बच्चे को परिवार नहीं स्वीकारता। अपनी इज्जत बचाने के लिए अपने ही बच्चे को अपनी जिंदगी से बाहर निकाल देते हैं। समाज की ऐसी मानसिकता ही किन्नर समुदाय को शापित जीवन जीने के लिए विवश करतीं हैं। ' यमदीप ' उपन्यास में लेखिका एक जगह लिखतीं है - " हिजडे का बाप कहलाना न आप बर्दाश्त कर पाएंगे और न बाप के परिवार के लोग। लुली - लंगडी होती या, कानी - कोतर होती, तो भी आप इसे अपने साथ रख सकते थे..... इसलिए इसे अब उसके हाल पर छोड़ दीजिये। यही उसका भाग्य था, यही बदा था.... सोच लीजिए, मर गयीं, सब्र कर लीजिए। " 2 किन्नर के माता पिता न चाहते हुए भी अपनी औलाद को अपना नहीं पाते। हमारे भारतीय समाज और किन्नर समुदाय के बीच एक बहुत बडी दीवार खडी है । यह समाज हर समय इन पर चोट करता है। उन्हें तरह- तरह की गंदी गाली देकर भी अपमानित करता है। हमारी असंवेदना के कारण ही यह लोग शापित जीने के लिए विवश हैं। किन्नर समुदाय का सिर्फ सामाजिक तिरस्कार ही नही किया जाता बल्कि उसके जीवन के सभी पहलुओं पर यह समाज गहरा प्रतिघात है। गुलाम मंडी उपन्यास में लेखिका निर्मला भुराडिया अंगूरी के माध्यम से कहती है कि - " कोई भरती करता क्या पाठशाला में, पहले पूछते मेल कि फिमेल। अपनी वो शर्मिला है न छोरा बनके भरती हुई थी, तो बहनजी ने एक दिन चड्डी उतरवा ली थी उसकी और जूते मारकर के स्कूल से निकलवा दिया था उसकों। उमराव गुरु के कुनबे ने शरणं दी उसकों उसकों वरना भूखी मर जातीं तो। " 3 किन्नर समुदाय के प्रति समाज का नजरिया अमानवीय है। समाज जो इस समुदाय को अपना नहीं मानता वह इन्हें चैन से रहने भी नहीं देता। इन्हें अपमानित करता रहता है।किन्नर के रूप में जन्म लेना ही एक बहुत बड़ी त्रासदी है, ईश्वर ने इन्हें किन्नर जीवन देकर प्रताड़ित करता है। यह भगवान् के द्वारा किया गया अन्याय ही है - " तू हिजड़ा है हिजड़ा, हमारा तेरे से कोई नाता नहीं, तू हमारा कुछ नहीं लगता, भाग जा यहाँ से क्यों हमारी नाक कटाने पर लगा है। हिजड़ा कहीं का। " 4

भारतीय समाज और परिवार इस समुदाय को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। इस समाज से इतना तिरस्कार मिलने के लिए बाद अब ये समुदाय अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। हिंदी साहित्य में अब इस विमर्श को स्वीकार किया जा रहा है। लेखिका चित्रा मुदगल द्वारा लिखित उपन्यास उपन्यास ' पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा के माध्यम से कहतीं है कि - " साथ देंगे किन्नर हमारा तो हम उनके आरक्षण की मुहिम चलाएँगे जोडेंगे उन्हें, विकास के समान अवसरों से शिक्षा, रोजगार, सम्पत्ति, बूढों को पेंशन, बेरोजगार युवाओं का भत्ता, लेकिन ताली एक हाथ से नहीं बजती संगठित होना पडेगा। आवाज उठानी पडेगी। देशव्यापी आंदोलन छेडना पडेगा, जेले भरनी पड़ेगी। " 5 किन्नर समुदाय के प्रति समाज का नजरिया अमानवीय है। इस समुदाय को अपना नहीं मानता। वह इन्हें चैन से रहने भी नहीं देता। यह समाज अकारण ही इन्हें अपमानित करता रहता है। पितृसत्तात्मक समाज में पुरूषों का ही समाज में वर्चस्व रहता है। तृतीय लिंग के व्यक्तियों को समाज में अधिकारों से हीन उन्हें कमजोर बनाकर समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता रहा है। परिवार रिश्ते, नाते, शिक्षा, रोजगार, आवास, सुविधाएँ, अधिकार आदि। इनके लिए बेमानी हो जातें हैं। इन सब के अभाव में ये नरकीय जीवन जीने के लिए बाध्य हो जाते हैं। किन्नरों को सामाजिक बहिष्कृति एक खास तरह की मनोवृत्ति के कारण होती है जिसे ' ट्रान्सफोबिया ' कहाँ जाता है। " तीसरे लिंग के प्रति भय, लज्जा, क्रोध, हिंसा, पूर्वाग्रह भेदभाव आदि नकारात्मक भावों के सम्मिश्रण से बना यह ' ट्रान्सफोबिया ' तीसरे लिंग के जीवन को नरक बना देता है। " 6

किन्नरों का बहिष्कार सामाजिक दबाव एवं पूर्वाग्रह के कारण उसके अपने घर और माता - पिता के द्वारा प्रारंभ होता है। भारतीय समाज में हिजड़ा बच्चा पैदा होना उसके पिता के पुरूषत्व पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है। जिसके कारण हिजड़े बच्चे को अधिकांश मामलों में पुरूष की ही तरफ से बहिष्कार का सामना करना पड़ता है।

पितृसत्तात्मक समाज में पुरूष होने का दंभ उसे विचलित कर देता है। अपनी इसी व्यथा को ' तीसरी ताली ' में सुप्रिया कपूर ने एक पत्रिका के इंटरव्यू में व्यक्त करतीं हैं- " मैं कैसी हूँ? कितनी पीड़ा सहती हूँ। इन सवालों से किसी को सरोकार नहीं है कि मेरे जन्म के बाद मेरी माँ ने मुझे देखकर आत्महत्या कर ली। बाद में बड़ी बहन सिर्फ इसी बात के लिए ससुराल से निकाल दी गयी कि उसकी बहन हिजड़ा है। " 7 भारतीय समाज में किन्नरों को काम केवल बच्चों के जन्म और शादी विवाह जैसे खुशी के अवसरों पर बधाइयाँ देने और नेक लेने तक ही सीमित कर दिया गया है। ' किन्नर कथा ' में विस्थापन को हिजड़ों की नियति बताते हुए कथाकार कहता है - " प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने ही परिवार से बिछडने के दंश से समाज का पहला घाट यही से उस पर शुरू होता है। अपने परिवार से विस्थापन का दंश सर्व प्रथम उन्हें ही भुगतना होता है। " 8 विस्थापन के बाद आवास की समस्या सभी किन्नरों के सम्मुख आती है। किसी न किसी कारणवश किन्नर को गुरु के डेरे में शरण लेनी ही पडती है। आज समुदाय को शिक्षा के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है। जो उन्हें रोजगार प्राप्त करने के लिए प्रेरित करें। कुछ किन्नर उचित शिक्षा के अभाव के कारण आर्थिक असमर्थता का शिकार उन्हें होना पड़ता है। अधिकतर हिजड़े सेक्स बिजनेस में लगकर अपनी कमाई कर लेते हैं। किन्नरों के बीच आपसी संघर्ष भी देखने को मिलता है। ' मैं पायल ' उपन्यास में लखनऊ के हजरत गंज की मोना किन्नर और पायल सिंह के बीच वर्चस्व को लेकर संघर्ष देखा जा सकता है।

निष्कर्ष :

समाज के तृतीय वर्ग के इन लोगों की पीड़ा को समझना जरुरी है। समाज के ऐसे लोगों को जीने के लिए समान माहौल देना होगा। हम सबको उनके प्रति सकारात्मक सोच रखनी होगी। किन्नरों को बचपन से ही पारिवारिक और सामाजिक बहिष्कार तिरस्कार बर्दाश्त करना पड़ता है। दर -ब- दर की ठोकरें खाकर भीख माँगकर जीवन यापन करना पड़ता है।

आज के दौर में कुछ किन्नर पढ़- लिखकर अपने पैरों पर खड़े हो रहें हैं। साथ ही दूसरों के लिए भी राह दिखा रहे हैं। वे एक क्षेत्र में सक्रिय हो रहें हैं। अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं, फिर भी इस समाज को अपनाने के लिए वक्त लगेगा। समाज कुछ वर्षों से इनके प्रति सजग हुआ है। साथ ही तमाम रचनाकार साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से इनके विषयों पर लिखकर समाज में इनकी समस्याओं पर सकारात्मकता बढ़ा रहा है।

संदर्भ :

१) भीष्म महेंद्र - किन्नर कथा, सामाजिक प्रकाशन नयी दिल्ली, पृ. ५१

२) माधव नीरजा, यमदीप, सम्यक् प्रकाशन दिल्ली पृ.८२

३) भुराडिया निर्मला, गुलाम मंडी, सम्यक् प्रकाशन नयी दिल्ली, पृ. ८५

४) भीष्म महेंद्र, किन्नर कथा, सामाजिक प्रकाशन नयी दिल्ली पृ. ५१

५) मुदगल चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं0203 नाला सोपारा, सामाजिक प्रकाशन नयी दिल्ली पृ.१५३

६) सं. डॉ. एम. फिरोज खान सं प्रथम 2017 थर्ड जेंडर, कथा आलोचना, अनुसंधान पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रिक्युटर्स कानपुर पृ.५२

७) प्रदीप सौरभ, संस्करण, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली पृ १७८

८) महेंद्र भीष्म, पेपरबैक संस्करण 2016 , किन्नर कथा, सामाईक प्रकाशन. नयी दिल्ली पृ. ४१-४२

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य मे नारी अस्मिता और अभिव्यक्ति के विभिन्न आयाम

आशा वैजनाथ फड

साहित्य मे स्त्री विमर्श की चर्चा को मै कागजी चर्चा ही मानती हुं | उनका स्त्रियों के वास्तविक जीवन की समस्यांओ से कोई लेना देना नही है | अन्यथा पश्चिमी देशों की भांती भारत मे भी कोई व्यापक स्त्रीविषयक आंदोलन प्रारंभ हो चुका होता | हमारे देश की स्त्रियो को सहज रूप से एक आधुनिक संविधान की तहत पुरुषों के समकक्ष कनूनी अधिकार तो मिल गये परंतु वे उनका उपयोग नही कर सकी है | हमारी राष्ट्रीय नेताओ की व्यापक दृष्टी के कारण स्त्री पुरुष समान अधिकारों को संवैधानिक मान्यता तो मिल गई, परंतु हमारा सामाजिक ढांचा ऐसा है जिसमे सामंती मूल्य बहुत गहरे जडे जमाये हुये है | उन्हे तोडने या जड से उखाडणे के लिये हमारे देश मे कोई व्यापक आंदोलन नही छेडा जा सकता | स्वतंत्रता के पूर्व तो हमारे समाज मे राजा राम मोहन राय, महात्मा गांधी, विवेकानंद, बाबासाहेब आंबेडकर, महात्मा ज्योतिबा फुले, आदि के द्वारा कूछ प्रयास तो हुये,परंतु स्वतंत्रता के पशचात ,स्त्री पुरुष समानाधिकरो पर कोई व्यापक बहस आंदोलन और उन अधिकार के व्यवहारिक प्रचलन पर ध्यान नही दिया गया |यह सदी विमर्शो की सदी है | यानी समाज की किसी भी समस्या पर चर्चा परिचर्चा, संवाद, तर्क - वितर्क आदि | दुसरे शब्द मे कहा जाये तो जब व्यक्ती किसी समूह मे किसी विषय पर चिंतन अथवा चर्चा परिचर्चा करता है तो उसे विमर्श कहा जाता है या जब कोई व्यक्ति किसी विषय को लेकर अकेले मे गहन ,चिंतन, मनन,करके किसी समूह मे जाकर उस विषय पर अन्य व्यक्तीयो से तर्क- वितर्क करता हैं तो उसे विमर्श कहते है

स्त्री विमर्श :

समकालीन विमर्श की चर्चा में सबसे पहले बात करूं नारी विमर्श की,जो साहित्य मे अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिती दर्ज करा चुका है | वर्तमान समय में एक विमर्श मात्र नही रह गया है | बल्की एक आंदोलन का रूप अख्तियार कर चुका है | सदियों से नारी शोषित रही है यही वजह है कि आज समाज मे नारी अपनी समान उपस्थिती दर्ज कराना चाहती है | आज उसके अधिकार पाने का संघर्ष साहित्यिक विमर्श का हिस्सा बन चुका है | साहित्य और संस्कृती के फलक पर इसकी व्याप्ती जहाँ विचारोत्तेजक रही ,वही निरंतर जटील होती सामाजिक संरचना के दयारे में कई आयाम उभेरे है | यह सच है की आज समाज में नारी की स्थिती पहिले की तुलना मे बेहतर हुई है, किंतू यह भी सच है कि यह स्थिती बहुत संतोष जनक भी नही है | वस्तूतः स्त्री विमर्श सहज यव बौद्धिक विमर्श नही है, यह सामाजिक परिवर्तन का माध्यम है | नारी यह बताना चाहती है कि ये दुनिया उसकी भी है | वह भी सृष्टी का महत्वपूर्ण हिस्सा है |उसे भी वही अधिकार और स्थान चाहिए जो समाज मे पुरुषों को प्राप्त है | वह किसी भी तरह पुरुषों से कमजोर नही है और न ही उसे कमजोर आंका जाना चाहिए | यह विमर्श स्त्री सहित समुची मानवजाती की स्वतंत्रता का पक्षधर है | कई दशकों पहिले महादेवी वर्मा ने इस ओर भी महत्वपूर्ण संकेत किया था | स्त्री विमर्श को प्रायः प्रतिशोध पीडित रूप में देखा जाता रहा है | जब की वह ऐसा है नही | यह अधिकार और न्याय के लिये उठाई गई स्वाभाविक आवाज है | इसी तरह यह अपने मुलार्थ मे पुरुष बनने का समर्थक आंदोलन भी नही है | यह आंदोलन पित्रसत्तात्मक समाज मे पल रहे स्त्री संबंधित पूर्वाग्रहो जैसे स्त्री को हिनतर और भोग का साधन मात्र मानने के खिलाफ है | इसका एक और वैशिष्ट्ये इस बात मे है की यह सार्वभौम भगिनीवाद के मूलमंत्र को हर स्तर, हर वर्ग, हर नस्ल, हर देश, तक पोहोचाने के लिये प्रयत्नशील है | यदि यह कही आक्रमक हुआ है तो उसके पीछे शताब्दीयों की सामाजिक जकडन से मुक्ती की तिखी तिखी छटपटाहट कारण रही है |

वस्तुतः सामंती व्यवस्था मे नारी सिर्फ एक वस्तू है, संपत्ती है, संभोग और संतान की इच्छा पुरी करणे वाली मादा है |यहां सेवा, उपयोग और वफादारी के बदले पुरुष नारी को उसी तरह सजाता,सुरक्षा देता और उसकी जिम्मेदारी लेता है जैसे अपने हाथीयों, घोडो, और बैलों को सजाता, संवारता और संरक्षण देता है "१

इस सच्चाई को इबसन ने अपने नाटक 'डॉल्स हाऊस ' में प्रस्तुत किया है | पशु को, गुलामो और स्त्रीयों की वफादारी धर्मपरायणता मालिक के प्रति जान न्यूछावर करणे की बलिदान भावना, त्याग की कहानीयों से सारा मध्ययुग भर पडा है | यही उनका स्त्रीत्व है और यही शील | विमर्श के संदर्भ में पाश्चात्य साहित्य में सिमेंन द बुवा की 'द सेकंड सेक्स ' एक अच्छे स्तर की वैज्ञानिक पुस्तक है | जिसमे स्त्री के साथ हो रहे योंन शोषण पर प्रकाश डाला गया | इसके बाद बेट्टी फायडन की किताब 'द फेमिनन मिस्टीक ' की चर्चा कर सकते है | जिसमे यह सिद्ध किया गया की, पुरुषप्रधान समाज मे मनोरंजनिक दबाव डालकर स्त्रिया को वासना पूर्ती का साधन बनाने और मां गृहिणी तथा रमणी की भूमिका स्वीकार करने के लिए विवश किया गया |इसी से स्त्रियों की मौलिक प्रतिभाए नष्ट हुई | समाज मे उछकलता और अस्थिरता बडी |

जहा तक हिंदी साहित्य मे स्त्री विमर्श की शुरुवात की बात है तो इसे छायावाद काल से माना जा सकता है | महादेवी वर्मा की कविताओ में वेदना का विभिन्न रूप देखने को मिलता है | लेकिन मादीवी वर्मा ने भारतीय समाज मे स्त्री अस्मिता के प्रश्न सिमोन द बउआर से भी बहुत पहिले सन १९४२ मे ही 'श्रखला की कडियां 'के माध्यम से उठाया था | उनकी श्रखला की कडियां स्त्री सशक्तीकरण का सुन्दर उदाहरण है |जिसमे नारी जागरण एव मुक्ती का सवाल को उठाया गया है | यह पुस्तक एक प्रकार से स्त्री अधिकारों का दस्तावेज है | इसका प्रमाण माहदेवी वर्मा के इस कथन से ही मिलने लगता है जब वो कहती है कि भारतीय नारी भी जिस दिन अपने संपूर्ण प्राणप्रवेग से जाग सखेगी उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिये संभव नही | उसके अधिकारी के संबंध में यह सत्य है कि ये भिक्षावृत्ती से न मिले है ,न मिलेंगे, क्योंकि उनकी स्थिती आदान प्रदान योग्य वस्तूंओ से भिन्न है | "२

एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रुरतंम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रिया उसके अकारण दंड को अधिक भारी बनाये बिना नही रहती इस तरह पग पग पर पुरुष से साहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिती कुछ विचित्र सी है व जितनी ही पहुंच के बाहर होती है ,पुरुष उतना ही झंजलाता है और प्राय: यह झुंजलाहट मिथ्याभियोग के रूप मे परिवर्तित हो जाती है |३"

दलित विमर्श :

इसके बाद जो सबसे अधिक चर्चित विमर्श है वो है दलित विमर्श | दलित साहित्य वर्तमान का ऐसा विमर्श बन चुका है जिसका अध्ययन कीए बिना संपूर्ण हिंदी साहित्य को समजना गलत होगा | भारी संख्या मे इस दिशा मे लेखन के लिये प्रेरित होना ये बताता है कि यहा भी कम चेतना नही है, बस बोलने का मौका नही दिया गया | आज दलित विमर्श हिंदी का ही नाही हिंदी प्रदेश की सीमाओ से बाहर निकाल कर बडा स्वरूप ले चुका है, जिसका मूल उद्देश है दलित जीवन की बुणयादी समस्या को जनता के सामने लाना संपूर्ण भारतीय भाषा में दलित लेखन तेजी से हो रहा है |

दलित साहित्य के लेखन में किस किस को शामिल किया जाये यह अभी तक स्पष्ट नही हो पाया है | दलीत सहित्यकरो का मानना है कि दलित की पीडाओ को वही समझ सकता है जिसने इसको भोगा है ,यानी की

अनुभूती के आधार पर, जब की दुसरा खेमा दलितो के इतर लिखे गये साहित्य को, जो दलित जीवन पर उसी भी उसमे शामिल करने की बात कर रहा है | हिंदी साहित्य के मुख्यधारा में ,'दलीत विमर्श 'का मुद्दा अस्सी के दशक मे उभरा जो नब्बे तक आते आते काफी चर्चित हो चुका था | साहित्य की बहुचर्चित पत्रिका ' हंस' मे दलित साहित्यकार ओम प्रकाश वाल्मिकी की आत्मकथा 'जूठन 'धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुई जो अलोचकों और पाठकों में बहुत चर्चित हुई | १९९७ में इसे राजकमल प्रकाशन ने आत्मकथा के रूप में प्रकाशित किया जो बहुत चर्चित हुआ | यही से दलित साहित्य, विमर्श का मुद्दा बन गया | दलीत साहित्य मे दलीत साहित्यकार अपने जीवन के कटू अनुभव को यक्त करते हैं, जीसका एक मात्र उद्देश यही है की पुरी दुनिया यह जान सके की उनके साथ क्या दूर्व्यवहार हुआ है | विख्यात दलीत चिंतक कंवल भरती ने लिखा है - " दलीत साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिंनमें दलितो ने स्वय अपनी पिडा को रूपाईत किया है,अपने जीवन संघर्ष में जीस यथार्थ को भोगा है,दलीत साहित्य उनका उसी की अभियक्ती का साहित्य है | यह कला के लिये कला का नही,बल्की जीवन का औंर जीवन की जिजिविषा का साहित्य है | "४

ओमप्रकाश वाल्मिकी लिखते है दलित साहित्य मे दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल नही है, बल्की साधारण परिस्थितीयों में साधारण चरित्र का वास्तविक पुनर्सजन है | इस कार्या में दर्शन और कलात्मक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता कतई नही है | पाठक की चेतना और अनुभूती को प्रभावित करनेंवली गहन संवेदना से ही यह संभव है |"५

वृद्ध विमर्श :

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श, स्त्रीविमर्श, आदिवासी विमर्श,किन्नर विमर्श के बाद वृद्ध विमर्श की भी धमक सुनाई देने लगी है | वैसे आज कल जीस तरह नई पिढी,युवा पिढी, की चर्चा जोरों पर हैं उसे देखते हुए वृद्ध विमर्श का होना भी उचित ही लगता है |वृद्ध या बुढे को लेकर आमतोर पर ऐसे लोगों की तस्वीर उभरती है ,जो सफेद बाल, झडे हुए दांत, शिथील ऊर्जा, हीन शरीर लेकर जीवन यापन करते है |हिंदीवालों के बीच तो केशवदास का यह कहा खूब प्रचलित है - केशव केशन अस करी जस अरीहू न कराय चंद्रवन मृगलोचनी बाबा कही कही जाय| 'इसका मतलब यही हुआ न की चंद्रवदन मृगलोचनी वनीताओ को आकृष्ट करने की सामर्थ्य से चूक जाने का नाम बुढापा है |वैसे औंर भी कवी रसिकों की बडी जमात रही है |जिन्होने खानदेशी लेखक प्रसिद्धी वृद्धवस्था की दंतहिन जर्जर काया,शिथिल इंद्रीयो की दशा के रूप में देखते हुये इसे कोसने में कोई कसर नही छोडी है | पर वृद्धवास्था को मात्र इस रूप में देखणा एक मूल्यवान रिस्क का सरासर अनादर करना है |

प्रसिद्ध फ्रानसिसी लेखक अनातोले फ्रान्स का कथन है-" काश बुढापे के बाद जवानी आती!' अनातोले का यह कथन बडा ही सांकेतिक है | जवानी वह शारीरिक अवस्था है,जो जोश ,ऊर्जा,शौर्य से ओत प्रोत होती है, जीसका उपयोग करते हुये हर व्यक्ती अपने - अपने ढंग से जीवन यात्रा तय करता है और इस क्रम मे वह बुढापे तक पहुंचाता है | बुढापे मे जवानी वाली ऊर्जा शक्ती तो नही रह जाती, रहे जाता है विविध अनुभव का भंडार |इन अनुभवो के अलोक मे व्यक्ति को जवानी के अनुभव रहित जोश मे किये गये अपने कई गलत निर्णय और कार्य का अहसास होता है, तो वह अनुताप की आंच मे तपते हुए यह सोचता है कि अगर उसे बुडापे में जवानी जैसी ताकत, स्फूर्ती मिल जाये तो वह पहेले से बेहतर ,श्रेयस्ककर कार्य कर सकता है- यही आशय है अनातोले की फ्रान्स के इस कथन का |"

किन्नर विमर्श :

हिंदी साहित्य मे किन्नर विमर्श की शूरुवात उपन्यास सन २००२ में नीरजा माधव के द्वारा रचित 'यमदीप'से मानी जाएगी |इस उपन्यास के बाद से ही साहित्यकारो का ध्यान किन्नर लेखन की तरफ गया | उसके बाद मनमित पत्रिका मे 'किन्नर 'विशेशांक ' निकला जो एक किन्नर जीवन के यथार्थ से जुडा हुआ है | जिसके संपादक कुमार अरविंद के एक पत्रकार है, इसके कारण उन्होंने बहुत सारे किन्नर लोगो के साक्षात्कार लिये जिसमे किन्नरों ने अपनी पीडा और वेदना प्रकट किया, तो एक बार प्रकार से हम कह सकते है किन्नर की सुरुवात सन 2000 के बाद ही हुई है वर्तमान समय मे साहित्य मे कही विश्वविद्यालय मे शोधकार्य भी हो रहा है | यमदीप उपन्यास के बाद में कथाकार महेंद्र भीष्मने 'किन्नर कथा ' सन 2010 उपन्यास लिखा और वर्तमान समय मे काफी सारे उपन्यास और कहानिया लिखे जा रही है | हिंदी के प्रमुख किन्नर आधारित उपन्यास यमदीप, किन्नर कथा, मै पायल और गुलाम मंडी, जिंदगी ५०-५०, प्रदीप सौरभ का तिसरी ताली उपन्यास बहुत ही चर्चित है | और हिंदी कहानी संग्रह भी लिखे जा रहे है जैसे हम भी इन्सान है | वांग्मय आदि इसी के साथ पत्रिका जनकृती में किन्नर विशेशांक निकला गया | साहित्य की इन विभिन्न विधाओ में किन्नर समस्यांओ की पडताल की गई है | इसी क्रम में मोनिका देवी द्वारा रचित 'सिमरन 'उपन्यास भी है जो आत्मकथनात्मक शैली मे लिखा गया है | उपन्यास और कहानी में पात्रो के माध्यम से किन्नर से जुडी संवेदन को प्रकट किया गया है | उनकी पारिवारिक उपेक्षा और रिशतो की तडप, संवेदनाओं की तलाश और आर्थिक संकट, सामाजिक तिरस्कार, शैक्षणिक और आर्थिक सशक्तिकरण, के लिए किस तरह संघर्ष करते है |

किसान विमर्श :

धरती और किसान का अटूट रिस्ता हैं ,वह अपनी जमीन से सर्वाधिक लगाव रखता है | वही उसका सबकुछ है | दर असल कृषक समाज के लिए कृषी कोई धंदा नही बल्की उनकी जीवनशैली है | किसान के लिए खेती कोई व्यापार व्यवसाय भी नही है बल्की यह तो उसकी रोजमरर की जिंदगी का एक बडा हिस्सा है, किसान अपने खेतो से सर्वाधिक लगाव रखता है और वह किसी भी किंमत पर अपने खेत छोडने को तयार नही होता | लाख प्रलोभन भी उसे नही डीगा पाते, किसान के लिए उसका खेत ही सब कुछ होता है, सब कुछ खोकर भी वो किसान बना रहना चाहता है |वह दो बीघे की जायदाद का मालिक कहलाना जादा पसंद करता है और जब जब उसकी धरोहर को छिनने की कोशिश की गई है, तब तब उसने उग्र रूप धारण किया है और आंदोलन के रास्ते पर उठ खडा हुआ है | हर दौर में किसान किसी ने किसी रूप से शोषित और प्रताडीत रहा है जिसकी अभिव्यक्ती उपन्यासकारोने की है | किसानों के संघर्षमय जीवन को केंद्रीय बिंदू बनाकर प्रेमचंद से कथाकार संजीव और पंकज सुबीर तक एक लंबी परंपरा रही है |

21 वी सदी की विभिन्न चूनोतियां ने किसानो के समक्ष बहुत सारे सवाल खडे कर दिये | वैश्विकरण और भूमंडलीकरण के प्रभाव ने अन्नदाताओ को आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया | बढते पुंजीवदी प्रभाव ने किसान जीवन को हशिये पर धकेल दिया | लेखन की दुनिया मे भी आज किसान धीरे धीरे गायब होता जा रहा है ऐसे भीषण समय मे प्रेमचंद आज भी हमारे लिए प्रासंगिक और समकालीन है क्योंकि न किसानो और जमीन की समस्या हल हुई है न भूमिहीन मजदूरों को श्रम शोषण से मुक्ती मिली है, बल्की उसमे स्त्रिया ,दलितो, आदिवासी और अल्पसंख्यांक के नये आयाम और जुड गये | प्रेमचंद की संवेदना, सरोकार और दृष्टी ही उनकी परंपरा है |

आदिवासी विमर्श :

21वी सदी के विमर्शो मे आदिवासी विमर्श केंद्र मे है | जहा कुछ विमर्श राजनीति मे पले तो कुछ अस्मिता व अस्तित्व को लेकर वादविवाद के विषय रहे, वही आदिवासी मे राजनीति और अस्मिता दोनो का समावेश है | आदिवासी गद्य साहित्यिक की शूरुवात बिस्वी सदी की आठवे दशक मे हुई | वाल्टर भेंगरा ने झारखंड अंचल और वहा के जीवन को केंद्र मे रखते हुये 'सुबह की शाम ' उपन्यास लिखा | हिंदी का पहिला आदिवासी उपन्यास माना जाता है | पीटर पाल एक्का ने 'जंगल के गीत ' लिखा | इस उपन्यास मे उन्होने तुंबा टोली गाव के युवक करमा और उसकी प्रिया करमी के माध्यम से बिरसा मुंडा के उलगुलान का संदेश पोहोचाया | आदिवासीयो द्वारा लिखे गए उपन्यास समकालीन शिल्प औंर ढाचो से दूर दिखाई पडते है | इस कमी की भरपाई गैर आदिवासी द्वारा लिखे गये आदिवासी उपन्यास संस्थे कुछ हद तक हो गई है | ऐसे उपन्यास में रमनिका गुप्ता का 'सीता मावशी' कैलास चंद् चव्हाण का 'भवर 'रनेंनद्रा का 'ग्लोबल गाव का देवता आदि महत्वपूर्ण है |

निष्कर्ष

इस तरह हम पाते है की हिंदी साहित्य मे समयानुसार समाज की समस्याओ पर तिक्षणता से नजर डाली गई है | विमर्स के क्षेत्र में हिंदी साहित्य की उपलब्धिया बहुत महत्वपूर्ण है | तथा इसका भविष्य बहूत उज्वल है जिसमे अनेक संभावनाए विद्यमान है | साहित्य मे स्त्री विमर्श से शूरू की श्रणखला दिनबदिन बढती जा रही है जो सही मायने मे साहित्य समाज का दर्पण होता है की उक्ति को चरितार्थ कर रही है|

संदर्भ

१) जैन अरविंद औरत होने की सजा विकास पेपर बाईक्स नई दिल्ली प्रथम संस्करण उन्नीसो 14 प्रश्न 20

२) वर्मा महादेवी संक्रातीकडे लोकभारती प्रकाशन पहिला मंजिल दरबारी बिल्डिंग महात्मा गांधी मार्ग ईलाबाद तिसरा संस्करण 2008 ट्रस्ट ग्यारा

३) महादेव वर्मा अतीत के चलचित्र राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण १६७

४) भारती कमल दलित की भूमिका इलाहाबाद इतिहास बोध प्रकाशन परिवर्तित संस्करण 2004 प्रश्न 67

५) वाल्मिकी ओमप्रकाश दलित साहित्यिका सौंदर्यशास्त्र राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 2018 59

६) सिंह श्री भगवान साहित्य मे दर्द भिमस आलेख जनसत्ता प्रकाशन वर्ष 2018

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

" शिवानी के उपन्यासों में नारी.... "

डॉ.पुंजाराम रूपचंद भगोरे, डॉ.सैराज अन्वर तडवी

शिवछत्रपती महाविदयालय, छत्रपती संभाजीनगर

हिंदी विभाग प्रमुख, संत ज्ञानेश्वर महाविदयालय सोयगांव

जि.छ.संभाजीनगर(महा)पिन-431120

शिवानी ने अपने उपन्यासों में मानवी जीवन का तटस्थ होकर यथार्थ चित्रण किया हैं । कहा जाता हैं की ,साहित्य समाज का दर्पण हैं ,लेकिन पुरुष प्रधान संस्कृति ने उस नारी को उसके अधिकार से वंचित रखने का प्रयास किया हैं । शिवानी ने अपने कलम से नारी के कई स्तर को प्रस्तुत किया हैं ,जिसमें उच्चवर्ग ,मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग की उब ,अकेलेपन ,कुण्ठा ,यातनाएं और पुरुषों के बीच पिसती हुई तथा उतार चढाव में ताने को झेलती हुई नारी के विभिन्न रूपों को शिवानी ने प्रस्तुत किया हैं .शिवानी एक सीधे-साधी साहित्यकार के रूप में उभरकर आयी हैं,जिन्होंने दीये समान खुद जलकर दूसरों को प्रकाशमय करने का कार्य किया हैं । ये गौरीपंत शिवानी के नाम से परिचित हैं ,जिन्होंने साहित्य के सभी विधाओं का यथार्थ चित्रण किया हैं। लखनौ निवासी गौरीपंत शिवानी का जन्म राजकोट (सौराष्ट्र) में 17 अक्तूबर 1923 में हुआ था , घर में शैक्षिक वातावरण होने के कारण शिवानी का खेल से अधिक पढाई में अधिक लगाव रहा हैं । शिवानी का साहित्यिक योगदान में 15 उपन्यास ,6 कहानी-संग्रह, 6निबंध ,3 बाल साहित्य 1 रिपोर्ताज और यात्रावृत्त लिखे हैं .शिवानी जी " कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों से भी सम्मानित हैं । सन 1979 में भारतेन्दु हरिश्चंद्र उर्दू अकादमी व्दारा अपने साहित्य की ऊंचाई के उपलक्ष्य में वह पद्मश्री से अलंकृत हुई । राज्य साहित्य की ओर से भी वह सन 1970-71 में पुरस्कृत हुई । सन 1992 में प्राप्त वीरेन्द्र भट्ट स्मृति पुरस्कार तथा सुब्रम्ह्न्यम भारती पुरस्कार निश्चित रूप से स्तरीय हैं । राज्य सरकार ने उनके वातायन नामक संस्करण को रामचंद्र शुक्ल पुरस्कार से सन्मानित किया हैं । "1शिवानी ने अपने साहित्य तथा पुरस्कारों के बलबूते पर कई साहित्यकारों को नई भूमि प्रदान की हैं ।

शिवानी कुमाऊँ के पहाड़ों में रहनेवाली थी,इसलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित नारी विशेष में नारी के विभिन्न पहलू पर चर्चा की हैं । हिंदी उपन्यासों में बहुत कम साहित्य पहाड़ी जीवन पर लिखा गया हैं ,उसकी पूर्ति शिवानी ने अपने उपन्यासों में पूरी की । शिवानी ने कुमाऊँ के ग्रामीण अंचलों से लेकर ओरछा एवं गुजरात तक के सभी का जीवनयापन निकटता से देखा हैं .गुजरात ,मध्यप्रदेश ,केरल ,उत्तरप्रदेश तथा कुमाऊँ आदि के प्रदेशों को शिवानी ने घूम –घूमकर देखकर उन्होंने अपने उपन्यासों में यथार्थता की सजीवता पायी हैं। शिवानी जी कुल पंद्रह उपन्यास की नायिका प्रधान हैं ,इन उपन्यासों में सारी समस्याएं ये नारी से सम्बंधित हैं । जिसके अंतर्गत विवाहित ,अविवाहित ,तलाकशुदा ,सौतेली माँ ,कुँवारी माँ,रखेल आदि पारिवारिक सबंधों को व्यक्त किया हैं । नारी पेशे से जिस ओहदों पर कार्य करती हैं ,उस सभी पेशों को शिवानी ने अपने उपन्यासों में स्पर्श किया हैं । अर्थात शिवानी ने अपने उपन्यासों में नारी के कई समस्याएं को प्रस्तुत किया हैं । " कैजा उपन्यास में एक डॉक्टर नारी व्दारा पला हुआ बेटा ,उसे सौतेली माँ न कहे ,इस डर से मरणोन्मुख गुंडे ,बलात्कारी से विवाह कर लेती हैं और सुहागरात के दिन ही विधवा हो जाती हैं । " माणिक उपन्यास में शिवानी ने स्त्रियों के बीच के समलैंगिकता पर बल देना चाहती थी ,लेकिन माणिक की अंगूठी और उसके दुष्परिणामों में फंस जाती है । "किशुनली की धांट में एक वृद्ध शास्त्री जी पागल लड़की पर बलात्कार कर उसे माँ बनाकर भाग जाते हैं । उनकी बाँझ पत्नी व्दारा अनजाने में कुँवारी माता का लालन –पालन उपन्यास को नया मोड़ देता हैं । " 2. शिवानी

ने अपने उपन्यासों में अंधविश्वासों का भी सहारा लिया हैं ,शिवानी के उपन्यासों में अधिकत्तर उचशिक्षित महिला हैं ,लेकिन आधुनिक शिक्षा लेने के बाद भी भीतर से ये अंधविश्वासी हैं । " 'गैंडा ' उपन्यास में एक पिढी –लिखी आधुनिका पीली मस्जिद के पीछे नीमतले के मौलवी से अपनी सौत हो रही बचपन की सहेली राज के के लिए एक टोटका लाती हैं ,जिसे केवल लांघने भर से उसकी मृत्यु हो जाती हैं । सिर्फ बारह आने खर्च कर देने मात्र से यदि किसी को रास्ते से हटाया जा सकता हैं तो ऐसे मौलवी के पास भीड़ लगनी चाहिए । शिवानी शायद कथानक को मोड़ देने या फिर पाठकों को चौंकाने के लिए ऐसे अन्धविश्वासों का सहारा लेती हैं । "3 शिवानी के उपन्यासों में सामाजिक ,धार्मिक समस्याएँ का समावेश हैं । सामाजिक समस्याएँ में दाम्पत्य जीवन ,रखेल प्रथा ,वैश्याजीवन ,प्रेम तथा वैवाहिक समस्याएँ आदि विषय को वर्ण विषय की समस्याएँ बतायी हैं । धामिक समस्याएँ विषयी शिवानी कहती हैं कि ,भारतीय संस्कृति में पाश्चत्य संस्कृति का मिश्रन हो रहा हैं ,भारतीय संस्कृति पर पाशचात्य संस्कृति प्रभावित होने के कारण धर्म संबंधी विभिन्न समस्याएँ खड़ीं हुई हैं । आज विवाह में भी कभी बदल देखने को मिल रहा हैं ,जिसके कारण वैवाहिक जीवन में विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं ,इसका उल्लेख शिवानी अपने विचारों में करती हैं कि,आज विवाह मैत्रीपूर्ण समझोता समझा रह गया हैं । आज विवाह संबंधी विषयी महानगरों में किसी के पास न समय हैं न किसी को इसकी आवश्यकता हैं ,इसमें केवल औपचारिकता रह गयी हैं । इसका फलस्वरूप प्रेमविवाह ,आंतरजातीय विवाह ,अनमेल विवाह ,दहेज़ प्रथा विवाह – विच्छेद आदि वैवाहिक समस्याएँ उभरकर सामने आ रही हैं।

विभिन्न प्राचीन ग्रंथो या कोशो में नारी के लिए विभिन्न पर्यायवाची शब्द हैं ,नारी को वेदों में घर कहा गया हैं ,गृहस्थी चलाने वाले को गृहिणी ,तो पूज्य होने के कारण महिला आदि शब्द हैं । लेकिन इस पुरुष प्रधान संस्कृति ने उसे केवल भोग्या के रूप में देखा हैं । इस नारी के सामने केवल एक समस्याएँ नहीं हैं ,अनेक समस्याएँ हैं ,जिसका उल्लेख शिवानी अपने उपन्यासों में करती आयी हैं ।

रथ्या उपन्यास में नारी : इस उपन्यास में नारी के आतंरिक पीड़ित का चरित्र चित्रण मिलता हैं । इस उपन्यास में बालिका बसंती के माता पिता गुजर जाने के बाद उसका लालन पालन उसके बुआ ने किया था । लेकिन समाज का सही सहयोग न मिलने के कारण कारण दिशाहीन हो जाती हैं । आज भी कई नारी बालिका बसंती के जैसे अनाथ ,योग्य परवरिश न होना ,सन्मान न मिलना और माँ बाप का प्यार न मिलने के कारण समाज के ठोकरे खाते हुई दिखायी देती हैं ।

शमशान चंपा में नारी :इस उपन्यास में पारिवारिक समस्या ,आर्थिक असमानता के अभाव में चंपा के चित्रण को उजागर किया हैं । इस उपन्यास में आंतरजातीय विवाह की समस्याएं प्रस्तुत हैं .उपन्यास की नायिका धरनीधर की पुत्री चंपा डॉक्टर हैं । चंपा के बहन जूही का विवाह तनवीर बेग से आंतरजातीय के रूप में हुआ । डॉ .मधुकर आकर सगाई तय करके जाते हैं ,लेकिन जब चंपा की बहन जूही के विवाह के बारे में पता चलता तो चंपा का विवाह टूट जाता हैं .इस बारे में आधुनिक शिक्षा के शिवानी चंपा के जरिए लिखती हैं कि , " अपने समाज में यदि सुयोग्य पात्र नहीं जुटता तो दुसरे समाज को अपनाने में क्या दोष हैं ?"4 इस उपन्यास में चंपा के माध्यम से कर्तव्यदक्ष नारी का चित्रण प्रस्तुत हैं ।

सुरंगमा उपन्यास में नारी : ये उपन्यास समस्या प्रधान हैं ,इस में राजनेताओं के भष्टाचार ,दावपेंच ,वेश्याव्यवसाय आदि का चित्रण हैं । इस उपन्यास की प्रधान नायिका सुरंगना जटिल परिस्थितियों संघर्ष करती हुई ,सभी समस्याएं के साथ जुडी हैं । सुरंगमा की की माँ राजलक्ष्मी समृद्ध घर की इकलोती कन्या बतलाया हैं । राजलक्ष्मी माँ बाप से वंचित छोड़कर संगीत के अध्यापक गजानन से विवाह कर लेती हैं लेकिन दोनों में अनबन होने के

कारण पति का घर छोड़कर आत्महत्या करना चाहती हैं किन्तु रेलवे गार्ड म्युरी ने उसे बचा लिया था । राजलक्ष्मी का शराबी पति वैरीनिका के घर आकर हंगामा करके राजलक्ष्मी को घसीटकर अपने घर ले जाता हैं ,लेकिन राजलक्ष्मी कुछ न बोल पाती । राजलक्ष्मी सब कुछ भूलकर अपनी बेटी को आत्मनिर्भर बनाना चाहती हैं.इस पर शिवानी लिखती हैं कि, " जिस उम्र में लड़कियां उधडने पहनने के पीछे दीवानी होती हैं ,वह इस वयस में वितरानी ,भिक्षुणी सी बन गयी थी "5 माता पिता के तनावपूर्ण वातावरण के कारण सुरंगना जीवनभर अविवाहित रहने का निर्णय लेती हैं .जब सुरंगना मंत्री दिनकर के ओउती मिनी को पढाई जाती हैं ,उस समय मंत्री दिनकर अपने परिवार के साथ नैनीताल घुमने सुरंगना को साथ लेकर जाते ,लेकिन बारिश में मंत्री दिनकर अपने बेटी समान सुरंगना को अपने बांहों में भर लेता हैं और अपनी बेटी मिनी आने पर गिरगिट के जैसे अपना रुख बदल देता हैं। इस उपन्यास में मंत्री दिनकर सुरंगना को अपनी प्रेयसी बनाना चाहता हैं। अर्थात इस उपन्यास के माध्यम से कामी ,ढोंगी ,विलासी राजनेताओं ने आधुनिक नारी को सुरंगना जैसा सन्मान दिया हैं ,लेकिन उसका भरपूर उपयोग किया हैं ,लेकिन नारी की त्रासदी को समझा नहीं हैं । इस के साथ शिवानी ने " " में भी वेश्याव्यवसाय ,अनमेल विवाह ,बलात्कार तथा पाखंडी साधू के कथा को भी उजागर किया हैं । इसलिए मृदुला गर्ग लिखती हैं कि, " स्त्रियों की स्वत्रंता,अस्मिता,आत्मसन्मान का एक ही शत्रु ही पति। एक ही खलनायक पुरुष एक ही दुष्ट आदमी पुरुष ।"6

सारत : शिवानी ने अपने उपन्यासों में नारी विषयी पारिवारिक समस्या ,सामाजिक ,धार्मिक ,राजनैतिक , अंधविश्वास,अनाथ बच्चों की आदि समस्याएँ को स्पर्श किया हैं। अनेक समस्याओं का चित्रण करते समय समाज को नयी दिशा देने का भी प्रयास हुआ हैं । अर्थात शिवानी लिखित उपन्यासों में नारी सम्बंधी शिवानी का उद्देश्य सुधारवादी तथा मानवतावादी रहा हैं ।

संदर्भ सूचि :

1. शिवानी के उपन्यासों में नारी –डॉ.रोहिणी वांगीकर(आसरडोहकर) –अप्रतिम प्रकाशन ,औरंगाबाद प्रकाशन वर्ष-२००२ पन्ना-13.
2. वही , पन्ना-19 .
3. वही ,पन्ना क्रं -20 .
4. शमशान चंपा –शिवानी ,राधाकृष्ण प्रकाशन ,दिल्ली ,प्रकाशन वर्ष – २००६ ,पन्ना क्रं -११.
5. सुरंगना –शिवानी , राधाकृष्ण प्रकाशन ,दिल्ली ,प्र .वर्ष -2006 ,पन्ना -७४.
6. मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी :डॉ रमा नवले ,विकास प्रकाशन कानपूर२००७

a. पन्ना क्र-2.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

स्त्री विमर्श की हस्ताक्षर : मेहरून्निसा परवेज

प्रा डॉ द्वारका गिते-मुंडे

कला महाविद्यालय, नांदुर घाट, तह केज, जि बीड 431126

साहित्य के क्षेत्र में महिला लेखिकाओं के आगमनने स्त्री विमर्श अधिक चर्चा में लाया। जग बीती के साथ साथ आपबीती लिखकर महिला रचनाकारों ने मुक्ति की मांग की। अन्याय ,अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाई। परंपरागत रूढ़िवादीता तथा अमानवीय नारी संहिता को नकारते हुए संघर्ष करती रहीं महिलाओंने अपना अस्तित्व , अपनी पहचान बनायी है। हिंदी साहित्य में योगदान देने वाली महिला रचनाकारों की जो लंबी सूची है ,उसमें पद्मश्री मेहरुन्निसा परवेज का नाम शीर्षस्थ लिया जाता है। स्त्री विमर्श की हस्ताक्षर रही परवेजजीने अपने साहित्य में महिला एवं आदिवासियों की दयनीय स्थिति ,उनका होने वाला शोषण ,अज्ञान ,भुखमरी ,गरीबी ,दयनीयता आदि का चित्रण स्पष्टता से किया है। मानवीय संवेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति उनके साहित्य में नजर आती है। बचपन में माता-पिता के बीच तनावपूर्ण संबंध होने के कारण घर का माहौल इतना अच्छा नहीं रहा। मधुकर सिंह द्वारा संपादित पुस्तक "गर्दिश के दिन में "लेखिका लिखती है" - हर दिन ,हर रात ,हर बात पर घर में झगड़े होते। झगड़े भी ऐसे की सारे मोहल्ले में आवाज गूंजती और हम दो भाई-बहन घर के किसी सुने कमरे में ,अंधेरे में ,एक दूसरे से चिपटे हुए रोते रहते। जब से होश संभाला ,अपने घर में शीशे के टुकड़े ,खून और आंसू ही देखे हैं। "बचपन के साथ-साथ उनका वैवाहिक जीवन भी कष्टप्रद रहा ,पर उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी। बस्तर कॉलेज से उन्होंने हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। और बाद में साहित्य सृजन में अपना समय बिताती रही। उसकी प्रथम कहानी धर्मयुग में छपी थी। सन 1978में भागीरथ प्रसाद के साथ उन्होंने अंतरधर्मीय विवाह किया। जो भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी और बस्तर जिले के कलेक्टर थे। यह उनका दूसरा विवाह है। अपने आसपास का वातावरण देखते हुए और साहित्यिक पत्रिकाओं को पढते हुए वह साहित्य लेखन में जुट गई। वह कहती है, "घर में साहित्य का माहौल नहीं था, पर परिस्थितियाँ ऐसी थी जिन्होंने मेरे मन को साहित्य रचना की ओर प्रेरित किया।" उनकी कहानियों में आदिवासी अंचल की समस्याएँ, पारिवारिक समस्याएँ महिलाओं के संघर्षों का चित्रण हुआ है। उनका पहला उपन्यास "आंखों की दहलीज" प्रकाशित हुआ, पर बाद में आए उनके उपन्यास "कोरजा" और "अकेला पलाश" अधिक चर्चा में रहे।

साहित्य तथा सामाजिक कार्य में रूचि रखने वाली परवेज़ 1975 से 78 तक राज्य बैंकिंग भर्ती बोर्ड की सदस्य रह चुकी है। वह 1993 से 96 तक मध्यप्रदेश पिछड़ा वर्ग आयोग की सदस्य रही है। महू में अंबेडकर शोध संस्थान कार्यकारिणी की सदस्य भी वह रह चुकी है। महात्मा गांधी ट्रस्ट की न्यासी सदस्य है। 2003 में चरारे शरीफ की घटना पर मध्य प्रदेश सरकारने उन्हें शांति पीठ मिशन में शामिल किया। साहित्य लेखन के सिलसिले में उन्होंने पूरे युरोप तथा रूस की यात्रा की है। उनकी इस साहित्य सृजन के लिए देश-विदेश में उन्हें सम्मानित भी किया गया है। 1980 में उपन्यास "कोरजा" के लिए उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान तथा मध्यप्रदेश साहित्य परिषद द्वारा अखिल भारतीय महाराजा वीरसिंह देव पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। 1995 में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा साहित्य भूषण पुरस्कार, 1995 में महात्मा गांधी के 125 वी जयंती के अवसर पर सम्मानित हुई है, 1999 में राष्ट्रभाषा स्वर्ण जयंती के अवसर पर हिंदी भाषा और साहित्य के लिए विश्व हिंदी सम्मान से लंदन में सम्मानित, 2003 में "समर" पत्रिका के संपादन- प्रकाशन के लिए रामेश्वर गुरू पुरस्कार। इस के अलावा सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार, राही मासुम राजा पुरस्कार आदि सम्मानों से वह सम्मानित हो चुकी हैं। असाधारण लेखन

और शिक्षा क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए 2005 में भारत सरकार की ओर से पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित हो चुकी है। पद्मश्री सम्मान पाने वाली मध्य प्रदेश की पहली लेखिका है।

पंद्रह से अधिक साहित्य रचनाओं की रचनाकार रही परवेजजीने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है।

साहित्य साधना -

प्रमुख उपन्यास - आंखों की दहलीज, कोरजा, अकेला पलाश, पासंग, उसका घर, समरांगन आदी।

कहानी संग्रह - आदम और हव्वा, अंतिम पढ़ाई, कानी बाट, टहनियों पर धूप, सोने की बेसर, ढहता कुतुबमीनार, गलत पुरुष, अयोध्या से वापसी, रिश्ते, फाल्गुनी, एक और सैलाब, समर, कोई नहीं आदि।

मेहरुन्निसा परवेज बस्तर एवं वहाँ के आदिवासियों से प्रभावित है, क्योंकि उसका बचपन वहां के जंगलों में बीता है। उनके साहित्य में बस्तर जिले के गांव कस्बों के निम्न मध्यम वर्गीय परिवारों में व्याप्त दुख दरिद्रता, भूख, शोषण, सेक्स, मजबूरियां, जातिगत विषमता, भ्रष्ट राजनीति आदि का चित्रण है। जीवन की समग्रता को उन्होंने प्रस्तुत किया है। उसके पात्र सामाजिक व्यवस्था के अभिशाप से मुक्ति का मार्ग ढूंढते हैं। रतलाम के पास बसे बांछड़ा समुदाय के महिलाओं की वेदना पर उन्होंने कार्य किया है। "म्हारा गोरी सी हथेली छाला पड़ गया म्हारोजी" नामक पुस्तक में उन्होंने स्त्रियों की व्यथा कथा विशद की है।

"आंखों की दहलीज" उपन्यास में पारिवारिक द्वंद्व का असर बच्चों पर किस तरह पड़ता है और इसका अंजाम क्या होता है इसका विवेचन लेखिका ने किया है। तालियां उपन्यास की प्रमुख पात्र है, जो अपने मां-बाप के पारिवारिक संघर्ष के कारण ऊब गई है। पारिवारिक कलह के कारण तालियां जल्दी से शादी करके मां-बाप का घर छोड़ना चाहती है। पिताजी के पास आने वाले शमीम से वह सीधा सवाल करती है, "आप मुझसे शादी करेंगे?" शमीम अचरज से देखता रह जाता है तो तालियां उसे हां या ना कहने के लिए कहती है। पारिवारिक रस्म-रिवाज को ठुकराकर स्वंय ही शादी की बात करती है। क्योंकि वह घर के कलुषित माहौल से परेशान है। अपना यह विद्रोह वह बोल देती है। "मैं इस घर के वातावरण से इतना घबरा गई हूं कि, बाहर भागने की बहुत इच्छा होती है। यदि आप हां नहीं कहेंगे तो मैं किसी भी वक्त, किसी के साथ शादी कर लूंगी, अंजाम चाहे कुछ भी हो। बदलते पारिवारिक संबंधों का चित्रण करते हुए लेखिकाने नारी की मुक असहाय अंतर्वेदना को वाणी देने का प्रयास अच्छी तरह से किया है।

"कोरजा" उपन्यास में मुस्लिम जीवन और संस्कृति को आधार बनाया है। उपन्यास में बदलते रिश्ते नाते, गरीबी, गर्भपात की समस्याएं, नपुंसकता, हिंदू-मुस्लिम प्रेम संबंध, आत्महत्या आदि सामाजिक समस्याओं का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में लेखिका ने आदिवासी नारी की समस्याओं का भी जिक्र किया है। कुछ आदिवासी स्त्रियां शहरी बाबू के मोहजाल में फंसकर अपना जीवन बर्बाद करती है। शहरी बाबू कानून के डर से उन लड़कियों से शादी तो करते हैं, पर उनका साथ नहीं निभाते हैं। तबादला हो जाने पर इन लड़कियों को यही छोड़कर चले जाते हैं। ऐसी लड़कियाँ न शहर की हो सकती है, न उस पुराने माहौल में जी सकती है। घुट-घुटकर अपनी जिंदगी बिताती है। उपन्यास का प्रमुख पात्र अमित के माध्यम से लेखिकाने इस विषय को चित्रित किया है। भ्रष्टाचार की समस्या आज सर्वव्यापी हो गई है। सत्ता की नीति से भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिल रहा है। जनसामान्य की, आदिवासियों की समस्याएँ उनकी अपनी है। उन समस्याओं को सुलझाने में किसी को रुचि नहीं है। केवल समस्याओं के नाम पर सॉंग रचाए जाते हैं। उपन्यास में लेखिका अमित के माध्यम से पत्रकारों पर व्यंग्य करती है। "एक दिन चित्रकूट,

एक दिन बेलाडीला, एक दिन जगदलपुर, जहां सर्किट हाउस में मीडिया डांस देखें, दो-चार लोगों से मिले, फिर चल दिए, यह है आज के मिनिस्टरों का बस्तर टूर। कहने को वह पत्रकारों से कहते हैं कि, हम आदिवासियों की समस्याओं के लिए आए हैं, पर यदि कोई पूछे तो यहां की एक भी समस्या का नाम नहीं गिना सकेंगे।" राजनीति की वास्तविकता लेखिका ने विशद करते हुए आदिवासियों को सचेत करने का प्रयास किया है।

"अकेला पलाश" उपन्यास में अंचलों में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या का चित्रण हुआ है। आंचलवासियो की दयनीय स्थिति में सुधार लाने हेतु शासकीय स्तर पर कई सारी योजनाएं बनाई जाती है, पर इन लोगों का अज्ञान एवं भोलेपन के कारण ऐसी योजनाओं का लाभ भ्रष्ठ अधिकारी, कर्मचारी तथा राजनेता उठाते हैं। 'अकेला पलाश' की तहमीना भूखे नंगे आदिवासियों को देखकर सोचती है कि, "सारा कुछ तो बीच के लोग खा जाते हैं। इनसे ज्यादा भूखे तो भरे पेटवाले लोग हैं।" लेखिकाने आंचलवासियो की निर्धनता का भी जिक्र किया है। जिसके कारण इन लोगों को न अच्छा भोजन, न अच्छे कपड़े, न अन्य जरूरी चीजें मिलती है। जलवायु पर आधारित खेती, सहायक उद्योग-व्यवसाय का न होना, बढ़ती आबादी, कुपोषण तथा बीमारी के कारण यह लोग विकास की प्रक्रिया से कोसों दूर है। ऐसी पिछड़ी समाज व्यवस्था राष्ट्रीय विकास में बाधक होती है। इसीलिए शिक्षा का प्रचार प्रसार होना बहुत जरूरी है। शिक्षा के कारण अज्ञान दूर होता है और व्यक्ति व्यक्ति में जागरूकता निर्माण होती है। लेखिका व्यसनाधिनता के घातक परिणामों का जिक्र करते हुए चिंता व्यक्त करती है। युवा पीढ़ी राष्ट्र की संपत्ति होती है और यह राष्ट्रीय संपत्ति गलत रास्ते से जाएगी तो राष्ट्र का नुकसान होगा। आदिवासियों में व्यसनाधिनता की बहुत बड़ी समस्या है। जिसके घातक परिणाम शारीरिक तथा मानसिक रूप से लोगों को सहने पड़ते हैं। स्त्रीविमर्श प्रधान इस उपन्यास में लेखिकाने सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ नारी शोषण का चित्रण भी किया है। उपन्यास की नायिका तहमीना अपनी स्वार्थी माँ के कूटनीति की शिकार होती है। लड़कियों का जीवन परिवार वालों के अनुसार चलता है, जिसे हमारी समाज व्यवस्था ने संस्कार नाम दिया है। संस्कारों का पालन करके, अपने परिवार वालों के मर्जी से आचरण करने में परिवार की भलाई होती है, पर जानबूझकर कोई अपने लड़कियों से खिलवाड़ करता है, उन्हें कुछ अहमियत न देते हुए एक बोझ समझकर किसी नालायक के हाथ सौंपता है तो यह बहुत बड़ा अपराध है। तहमीना की माँ अपने बेटी का विवाह अपने पति के मित्र से करना चाहती है। जिससे वह देर रात तक बातें करती है। "वही व्यक्ति जो पिता की उम्र का था, जिसे कभी शक्ल सूरत से भी पसंद नहीं किया था। उसीने उसके कमरे में, उसके अपने घर में, मांॅ की मौजूदगी में लूट लिया। तब तहमीना के कोमल मन में औरत की इज्जत का रोमानी ख्याल था। शायद यह उन दिनों पढ़ी किताबों का असर था, या उन दिनों देखी धार्मिक फिल्मों का असर था कि, औरत अपनी इज्जत को बचाने के लिए या तो जान दे देती है या फिर उस व्यक्ति से शादी कर लेती है।" लड़कियों पर जोर जबरदस्ती करके अपनी बनाना या अपनी हवस पूरी करने वाले नामर्द पुरुष मर्द हो ही नहीं सकते। जमशेद के साथ ब्याही गई तहमीना चेअरमन के पद पर कार्य करती है। घर और ऑफिस का काम संभालते हुए वह परेशान हो जाती है। खराब मौसम के कारण जब उसकी तबीयत बिगड़ जाती है और सुबह उठने में देर होने से बच्चे की स्कूल बस छूट जाती है, तब वह अपने पति को बच्चों को स्कूल छोड़ने को कहती है। तो उसका जवाब मिलता है-" तुम रोज थककर आओगी, ऑफिस की बातों को लेकर तुम्हारे दिमाग में टेंशन रहेगा, रात को तुम्हें नींद देर से आएगी, सुबह तुम देर से उठोगी और इसी तरह रोज स्कूल बस छूट जाया करेगी।" निर्भर बनती नारी को पुरुषी अहंभाव सहयोग नहीं करता है। कर्तव्य परायणता केवल नारी के लिए है। पुरुषों को सब छूट ही छूट है। दफ्तर और परिवार की जिम्मेदारियों से परेशान तहमीना तनावग्रस्त हो जाती है, तब नारी का हौसला बुलंद करते हुए नाहिद बाजी को प्रतीक बनाकर लेखिका लिखती है-" पागल हो तहमीना, छोटी-छोटी बातों को तुम बहुत गहराई से ले लेती हो, अभी तो यह कुछ नहीं है। तुम्हारे सामने ढेर सारी समस्याएँ आएगी और तब

उनका सामना तुम्हें अकेले ही करना होगा।" वह आगे कहती है, "कुछ भी कहो औरत के बाहर काम करने से उसके मन में आत्मविश्वास भर जाता है। तुम्हारा डर अब धीरे-धीरे खत्म हो जाएगा और तुम घरेलू और दब्बू किस्म की औरतों की हदों से बाहर आ जाओगी। अब तुम्हें अपना, अपनी शख्सियत का अंदाजा रहेगा।" इस उपन्यास में अंतर धर्मीय विवाह का भी जिक्र हुआ है। जिसके परिणाम स्त्री को ही भुगतने पडते हैं। नाहिदबाजी डॉक्टर होकर भी अपने मनमर्जी से नहीं जी पाती। समस्या और संघर्ष उसे करना पड़ता है। परिवार वालों की रजामंदी न मिलने के कारण एक हिंदू डॉक्टर के साथ कोर्ट मैरेज वह करती है। पिताजी उससे हमेशा के लिए रिश्ता तोड़ देते हैं और ससुराल वाले भी उसके साथ अच्छा बर्ताव नहीं करते हैं। जहां तक की उसकी सास उसके हाथ का खाना भी नहीं खाती है। पारिवारिक क्लेश निर्माण हो जाते हैं, जिसका असर नाहिद के मन मस्तिष्क पर होता है। परंपराओं को तोड़ने वाली औरत बिल्कुल अकेली हो जाती है। अपना दुख-दर्द व्यक्त करते हुए नाहिदबाजी तहमीना से कहती है- "दूसरी लड़कियाँ ससुराल में घबरा जाती है तो कुछ दिन के लिए मायके चली जाती है, पर मेरे लिए तो वह द्वार भी बंद है। ससुराल की अपेक्षा मायके में अधिक नफरत, बताओ आदमी जिए तो कैसे जिए?" मनमर्जीसे आचरण करने वाली नाहिद जैसी स्त्रियों की हालत बहुत ही दयनीय होती है। पुरुषों के लिए हमारा समाज क्षमाशील है, पर स्त्रियों को उनके मनमर्जी की कठोर शिक्षा मिलती है। समाज जीवन का वास्तव पाठकों के सामने लाने का एक अच्छा प्रयास लेखिकाने इस उपन्यास के माध्यम से किया है।

"पासंग" की बानो औरत के अधिकार की बात करते हुए कहती है- "औरत किसे प्यार करें, किसे अपना शरीर दे, इस निर्णय का हक उसे मिलना चाहिए। जबरदस्ती से मनमानी करना, बिना इच्छा के संबंध रखना, सब बंद होना चाहिए।" बानो का बच्चा जब उससे छीन लिया जाता है तब वह और भी मजबूती से समाज के पुरानी रूढ़िवादिता के खिलाफ खड़ी हो जाती है।" अपने को एक बार फिर ताकतवर बनना होगा। बच्चों की वालदियत का हक अपने नाम वापस लेना होगा। अपने इंसान होने का सबूत देना होगा। दुनिया में उसका बराबर का हिस्सा है, यह बात बतानी होगी। आदमी के गुलामी से इन्कार करना होगा।"

उपन्यास "उसका घर" स्त्री पुरुष प्रेम की उलझने, जाती-धर्म का विरोध, प्रेम की बदलती परिभाषा को व्यक्त करता है। उपन्यास के प्रमुख नारी पात्र सेफिया सच्चे प्रेम के लिए, सुख के लिए भटकती है पर उसे सुख नहीं मिलता है। वह कहती है, "एलम्मा औरत प्यार के लिए भटकती है, पर उसे प्यार नहीं मिलता। औरत हमेशा मर्द के घर का सुख होती है। मैंने कितने मर्द बदले हैं पर क्या उन्होंने मुझे प्यार दिया? नहीं। सब शरीर को चाहते हैं, प्यार की परिभाषा आज बदल गई है। आज वह बेकार और मजाक सी लगती है।" "समरांगन" उपन्यास अल्पायुषी रहा बेटा समर की स्मृतियों को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है। मन की उथल-पुथल इसमें उन्होंने रेखांकित की है। उनकी साहित्यिक पत्रिका का नाम भी "समरलोक" है।

प्रेम विवाह चाहे अंतर्जातीय हो या अंतर्धर्मिय हो अपवाद रूप में लंबे समय तक टिकते हैं। मनचले युवक युवतियों का यह आत्मीय समझौता वैचारिक धरातल पर जब डगमगाने लगता है ,तब बात तलाक तक आ जाती है। आज यह एक बड़ी सामाजिक समस्या बन गई है। "बीच का दरवाजा "इस कहानी में लेखिका ने ऐसे ही प्रेम विवाह का जिक्र किया है। कहानी के प्रमुख पात्र शीला और राजन प्रेम विवाह करते हैं। कालांतर में राजन माली की बेटी चंपा की ओर आकर्षित हो जाता है और पति-पत्नी में मनमुटाव आता है। जिसने मांग में सिंदूर भरा था ,आजन्म साथ देने का वादा किया था। वह शरीर आकर्षण की तृप्ति के लिए किसी दूसरी लड़की की ओर आकर्षित हो गया और बात तलाक तक पहुंच गई। तलाक देकर भी नारी मन की उद्विग्नता कम नहीं होती है। वह और भी बढ़ जाती है।" कुछ दिनों बाद उसने तलाक ले लिया ,तब से वह अकेली है ,कितनी पीड़ा देती है जिंदगी। "

तलाक देकर पुरानी यादों को भूल जाना नारी के लिए कितना पीड़ादायक होता है और समाज की नजरों में वही अपराधी होती है।

"अंतिम पढ़ाई" कहानी में तलाक पीड़ित स्त्री का विवेचन हुआ है। नारी पुनर्विवाह हमारे समाज में निषिद्ध माना जाता है। पुरुष कितने भी विवाह करें यह उसकी जरूरत होती है, पर कोई स्त्री पुनर्विवाह करती है तो वह अपने बच्चों से दूर चली जाती है। नफरत की शिकार होती है। इस कहानी का प्रमुख पात्र जितेन अपने पुत्र रूपेश को मां के बारे में बचपन से ही गलत बातें बता देता है और मां के प्रति बेटे के मन में कड़वाहट पैदा हो जाती है। आगे चलकर रूपेश अपने ही माँ से नफरत करता है। "कभी उसे रूपेश से मिलने नहीं दिया और नन्हे रुपेश के दिमाग में उसके खिलाफ तरह-तरह की बातें भरी, उसे बदचलन घोषित किया।" बड़ा होकर रूपेश अपने माँ को पत्र लिखकर कहता है कि, मैं आपके शहर में क्रिकेट खेलने को आ रहा हूँ। यह समाचार सुनकर माँ अपने पति के साथ उनसे मिलने के लिए स्टेशन पहुंच जाती है। रुपेश माँ से कहता है -"आप ही माला भारद्वाज है।" अपनी माँ से अजनबी हुआ रूपेश माँ को नहीं समझ पाता है, पर माँ उसे मिलने के लिए, उसके साथ बात करने के लिए उसका मातृहृदय वात्सल्य से भर जाता है। नारी मन की कनखरता भी लेखिकाने अपने कहानियों में चित्रित की है। "कयामत आ गई है" कहानी की नायिका अपने पति के मृत्यु के बाद दुखी होती है, पर घुट घुट कर मरना नहीं चाहती। पति के मृत्यु के बाद स्वंय आर्थिक व्यवस्थापन करती है। व्यवसाय से अर्थार्जन करती है। लेखिका लिखती है - "खाला का पति हैजे की बीमारी से मर चुका था, बच्चे नहीं थे, बस्स उन्होंने मुर्गियां पाल ली और वह उसकी विशेषज्ञ बन गई।" प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करके अपने अस्तित्व को बनाए रखना बहुत बड़ी कसौटी होती है और इस कसौटी में सही सलामत बाहर निकलना उतना आसान तो नहीं है, पर असंभव भी नहीं है। यही लेखिकाने इस कहानी के माध्यम से दर्शाया है।

"टहनियों पर धूप" कहानी संग्रह की कहानियों में बदलते हुए रिश्ते और कामसंबंधों का चित्रण लेखिकाने किया है। नारी का साहसी, जुझारू रूप, प्रतिशोध की भावना इसमें व्यक्त हुई है। अन्याय अत्याचार के खिलाफ दो हाथ करने करने वाली औरतें भी आज समाज में नजर आ रही है। अयोध्या से वापसी, बूंद का एक हक आदि कहानियों में नारी जीवन की विवशता, परेशानियाँ चित्रित हुई है। "बंजर दुपहर" कहानी में संतति के अभाव में परेशान पति-पत्नी की मनोव्यथा चित्रित हुई है। पत्नी संतान देने योग्य नहीं, केवल लड़कियाँ ही हुई तो दोष स्त्री को ही दिया जाता है। परिणाम स्वरुप परिवार में असंतोष, एक दूसरे के प्रति परायापन निर्माण हो जाता है। एक साथ रहकर भी दोनों अकेले-अकेले से रहते हैं। कहानी की प्रमुख पात्र सपना अकेले में रोती है। पति प्रोफेसर है वह अपने काम में व्यस्त रहता है। अकेलेपन से त्रस्त सपना पति के दोष निकालना शुरू करती है और पार्टनर बदलने की सोचती है। "शायद इसी वातावरण से बचने के लिए विदेशी अपना पार्टनर बदलते रहते हैं, वहां जीवन एक छलकता जाम है, मगर यहां जीवन ऊब और बर्फ से ज्यादा कुछ नहीं, कोई चेंज नहीं, हर आदमी ऊब से भरा जल्दी-जल्दी जीवन खत्म करना चाहता है।" "जमाना बदल गया है" सास बहू के रिश्तों को दर्शाने वाली कहानी है। शहर-नगरों में रहने वाले बहू-बेटे गांव में रहने वाले बड़े-बुजुर्गों को मिलने जब आते हैं, तब उन्हें अच्छा लगता है। जिस उम्र में बहु-बेटे की जरूरत होती है, पोतों का प्यार-दुलार अच्छा लगता है, पर बुढ़े-बुजुर्गों के लिए आज समय ही नहीं रहा है। सब अपने आप में व्यस्त है। "बहू, एक-दो दिन और यहां रह जाओ, कौन तुम लोग दिल्ली से रोज आ पाते हो।" बहू-पोतों के साथ रहने का मन होते हुए भी ज्यादा दिन एक साथ नहीं रह सकते हैं। यह आधुनिक समाज व्यवस्था की पहचान हो गई है। "बच्चे सब कान्वेंट में पढ़ते हैं और उन्हें छुट्टियां नहीं मिल पाती।" छुट्टी न मिलने का बहाना बनाकर सब एक दूसरे से भाग रहे हैं। सच में जमाना बहुत तेजी से बदल रहा है।

नारी जीवन की उदारता, त्याग, समर्पण और सहनशीलता का दर्शन "आकाश नील" कहानी में नजर आता है। सामाजिक नियम एवं बंधनों को बनाए रखने में नारी अपना दायित्व समझती है। परिणाम स्वरुप अन्याय, अत्याचार की शिकार भी हो जाती है, पर वह सामाजिक प्रवाह खंडित होने नहीं देती। यह सदियों की स्त्री मानसिकता है। विशाल और तरू का विवाह नहीं होता क्योकि वह विवाहित है। फिर भी तरू उससे प्यार करती है और उसके बच्चे की मां बनने वाली है। वह अपने आने वाले बच्चों को पिता का नाम देना चाहती है। "मैं नहीं चाहती कोई मुझे या मेरे होने वाले बच्चों को नाजायज कहे।" "शनख्त" कहानी अतृप्त वासना की तीव्रता को चित्रित करने वाली कहानी है। बनी का पिता ही बेटी को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। जो व्यसनांध है। "खामोशी की आवाज" कहानी में नारी जीवन की घुटन विशद की गई है। अनु और रमेश दोनों पति-पत्नी है। रमेश घर का खर्चा उठाता है, पर अनु की इच्छा अनिच्छा की उसे जरा भी परवाह नहीं है। अनु को उसके साथ रहना कष्टप्रद लगता है। वह रमेश से कहती है, "दो समय का खाना और कपड़ा देते हो तो इसका मतलब नहीं कि मैं तुम्हारी खरीदी हुई लौंडी हूँ। मुझे सब कुछ देकर भी तुम मुझे कुछ नहीं दे पाए, तुमने समझने की कोशिश नहीं की मुझे क्या चाहिए?" नारी की बदलती सोच लेखिकाने इस कहानी के माध्यम से विशद करने का अच्छा प्रयास किया है। आज पढ़ी-लिखी लड़कियां खुद का अस्तित्व, खुद का वजूद निर्माण कर रही है और अपनी बात स्पष्टता से सबके सामने खोल देती है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि ,स्त्री विमर्श मेहरुन्निसा परवेज के कथा साहित्य का प्रमुख बिंदु रहा है। स्त्री सशक्तिकरण के संदर्भ में संवेदनात्मक गहराई को चित्रित करते हुए आत्मनिर्भर नारी का रूप उनके साहित्य में नजर आता है। स्फूर्ति एवं चेतना जागृत करने का प्रयास लेखिका ने किया है। मानवीय संवेदना के धरातल पर संघर्ष करती नारी गुलामी की जंजीरें तोड़ने का प्रयास करती है। आदिवासियों की हालत, गांव कस्बों के निम्न मध्यम वर्गीय परिवारों में व्याप्त दुख दरिद्रता, भूख, शोषण, सेक्स, मजबूरियां, जातिगत विषमता, भ्रष्ट राजनीति आदि का चित्रण है।

संदर्भ –

1.अकेला पलाश - मेहरुन्निसा परवेज

2.पासंग -मेहरुन्निसा परवेज

3.टहनियों पर धूप - मेहरुन्निसा परवेज

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

"समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर / थर्ड जेंडर की आस्मिता "

विजय हरिश्चंद्र सोमवंशी

प्रस्तावना :

आज का समय विमर्श का समय है | बहुकेंद्रियता का समय है | स्त्री,दलीत, अल्पसंख्यक वृद्ध औंर आदिवासीं समुदाय परिधी को छोडकर केंद्र में आ चुके हैं और अपने मूलभूत मानवाधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं | किन्नर समुदाय भी हशियापरक जिंदगी को छोडकर अपने अधिकारों के लिए लड रहा है | यह यक ऐसा समुदाय है जो समाज के बिचो बीच उपस्थित है लेकीन उसका कोई अस्तित्व नही |रामायण और महाभारत काल से ही समाज मे ईस समुदाय की उपस्थिती दर्ज है पर 'सभ्य समाज' मे तिरस्कार और अपमान का दंश झेलने के लिये विवश है | किन्नर उपहास का पात्र बनते है |लेकीन उनका मजाक उडाणे वाले उनकी पिडा को नाही समजते | साहित्यिक दृष्टिकोन से आज हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अनेक विमर्श पर चर्चा होती रहती है | समाज के अनेक उपेक्षित समस्याओ एव वर्गो पर चिंतन और बहस हो रहे है | स्त्री विमर्श, परिस्थितीक विमर्श, किन्नर विमर्श आदी इनमें प्रमुख है | इन विमर्श के अंतर्गत हाशिये पर दबाये हुए एव तिरस्क्रत समुदाय की चर्चा होती है | समाजसे बहिष्कृत लिंग निरपेक्ष 'किन्नर विभाग' के संबंध में आज बहुत अधिक चर्चा होती है | दरअसल समाज मे स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त एक और वर्ग भी है जिन्हे हम घ्रन्हा की दृष्टि से देखे जाते है | संसार मे केवल दो लिंगों के लिए मान्यता मिली है की स्त्री और पुरुष के लिए लेकिन इनके अतिरिक्त एक और जाती भी है जिन्हे हम किन्नर हिजडा, उभयलिंग, ट्रान्सजेंडर आदी नाम से पुकारते है | वर्तमान समय में इन्हे हिजडे के नाम से जाने जाते है |

"किन्नर शब्द हिमाचल प्रदेश के किन्नोर निवासियों के लिए प्रयुक्त होता था"१ इन वर्गो के पेशे थे की विशेष संदर्भ में घर परिवार जाकर बधाईयां गाकर आशीर्वाद देकर और रुपये लेकर विदा होना | इन जातीयों को दक्षिण में हिजडे के नाम से जानने लगे जो एक प्रकार की भीक्षावृत्ती से जीवन यापन करणे को विवश थे | "पारिवारिक मांगलिक कार्य, पर्व ,उत्सव पर इनकी उपस्थिती को प्राय: संदिग्ध दृष्टी से देखा जाता है | ट्रेनो, बसो,बाजारो में भी इनको देखा जा सकता है जो मुख्य रूप से वसुली करते हुए पाये जाते है"२ | शास्त्र मे इनकी उपस्थिती शुभ शगुन के रूप मे माने जाते है | परंतु समाज मे उनके प्रति मानवीय और संवेदनशील व्यवहार का घोर अभाव है |

किन्नर या हिजाडो से तात्पर्य उन लोगों से है जिनके जननांग पूरी तरह से विकसित न हो पाये, अथवा पुरुष होकर भी स्त्रेन स्वभाव के लोग जो पुरुषों की जगह स्त्रियों के बीच रहने में सहजता का अनुभव करते है | इन किंन्नरो को चार वर्गो में विभक्त किया जा सकता है | वे हैं बुचरा, नीलिमा, मनसा, और हंसा | वास्तविक हिजडा तो बुचराही होते है, क्योंकि जन्मजात पुरुष, न स्त्री होते है | नीलिमा ये है जो किसी कारणवश स्वयं को हिजडा बनने के लिए समर्पित है | मानसा तन के स्थान पर मानसिक तौर पर स्वयं को विपरीत लिंग अथवा स्त्रीलिंग के अधिक निकट महसूस करते है | हंसा शारीरिक कमी या यौन निवंताव के कारण किन्नर बने होते है |नकली हिजडों को अबुवा कहा जाता है जो वास्तव में पुरुष होते है किंतु धन के लोभ मे हिजडे का स्वांग रख लेते है | जबरन बनाये गये हिजडे छिबरा कहलाते है, परिवार से रणजिश के कारण इनका लिंगविच्छेदन कर ईन्हे हिजडा बनाया जाता है | भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार पुरे भारत मे 4.9 लाख किन्नर है | ईसी जनगणना के अनुसार शिक्षित किन्नरों की संख्या सिर्फ ४६ प्रतिशत ही है | इंनमे आधे से अधिक नकली स्वाँग

करने वाले हिजडे है | शेष दो लाख असली हिजडो में से केवल 400 ही जन्मजात हिजडे है बाकी सब स्वभाव के कारण हिजडों की विभाग मे गिनती की जाने वाले है |

किन्नरों के उद्भव के संबंध में अनेक कथाये प्रचलित है | इनमे सर्वाधिक प्रचलित एक कथा भगवान श्रीरामचंद्र जी से संबंधित है | जब दशरथ की आज्ञा पालन करते हुए राम सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट आ गये तो उन्हे मना कर आयोध्या वापस लाने के लिए अयोध्या के सारे लोक चित्रकूट आये | लेकिन भरत तथा अयोध्यावाशियो की प्रार्थना आस्वीकार करते हुए राम ने सभी नर नारियो को वापस जाने को कहा | लेकिन हिजडो के संबंध में उन्होंने कुछ नही कहा | कहा जाता है की श्री रामचंद्र जी का कोई स्पष्ट आदेश न होने के कारण हिजडो ने 14 वर्ष तक वही रुक कर प्रभू की प्रतीक्षा करते रहे | प्रचलित एक अन्य कथा का संबंध महाभारत कथा से है | इसके अनुसार एक बार अर्जुन को द्रोपदी से विवाह की एक शर्थ के उल्लंघन के कारण राज्य से निष्कासित कर तीर्थयात्रा पर भेजा जाता है | भ्रमण के अवसर पर अर्जुन उत्तर पूर्व प्रदेश मे पहुंच गया जहा उनकी मुलाकात एक विधवा नाग एक राजकुमारी उलूपी से होती है | दोनो के बीच प्यार पलते है और विवाह कर लेते है | उलुपी एक पुत्र को जन्म देती है और उसका नाम अरावण रखा जाता है | कुछ समय बाद अर्जुन दोनों को वही छोडकर आगे निकल जाते है | अरावण अपनी मा के साथ नागलोक मे रहता है | युवा होने पर अरावन अपने पिता के पास आता है | इस समय कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध चल रहा था | अर्जुन अरावण को युद्ध करने के लिए रणभूमी मे भेज देता है | युद्ध के अंत में पांडओ को अपनी जाती के लिये मां 'काली'के चरणो मे नरबली हेतू एक राजकुमार की जरूरत पडती है | कोई भी राजकुमार तयार नही होता तो अरावण खुद प्रस्तुत करत है |अरावण बली के लिए शर्त रखी की बलि करणे से पूर्व की रात एक सुंदर स्त्री से विवाह करना है | शर्थ के कारण बहुत संकट की स्थिती उत्पन्न होती है | कोई भी राजा यह जानते हुए की अगले दिन अपने बेटी विधवा हो जायेगी, अरावन से शादी के लिए तयार नही होता है | जब कोई भी रास्ता नही बचता है तो भगवान श्रीकृष्ण स्वयं मोहिनी रूप स्वीकार कर अरावन से शादी करते है | अगले दिन अरावन अपना जीवन ' काली ' के चरणों पर अर्पित करता है | मृत्यू के बाद मोहिनी काफी देर वीलाप भी करती है | पुरुष होते हुए भी स्त्री में श्रीकृष्ण अरावन से शादी की | इसलिये किन्नर जो स्त्री रूप मे पुरुष माने जाते है | वे सभी कथाये मिथक के रूप मे पुराने मिलती है | तामिळनाडू के किन्नर की पूजा करते है और कई जगहो पर अरावन के मंदिर बन चुके है | इनका सबसे प्राचीन मंदिर विल्लुपुरम्म जिले के कुवागम्म गाव मे है | इस मंदिर में अरावन की पूजा की जाती है | हर साल तमिल नऊ वर्ष की पहिली पौर्णिमा को 18 दिनो तक चलनेवाले उत्सव होते है | इस अवसर पर किन्नर लोक वही एकत्र होकर नाचते गाते है | और अरावन की विवाह की तयारी करते है | तमिल संघम साहित्य में ईसका विवरण मिलता है | इसी प्रकार बंगाल के किन्नर समुदाय भगवान श्रीकृष्ण की आराधना करते है और कर्नाटक के किन्नर समुदाय देवी की उपासना करते है |

समाज मे किन्नरों की प्रतिष्ठा अत्यंत हेय दृष्टी से देखी जाती है | यदि किसी परिवार मे बुचरा अर्थात हिजडों का जन्म होता है तो परिवार के सदस्य उसे अपने परिवार से दूर करने का प्रयास करते है | हिजडे की मा बाप भी यही संदेह करते है कि बच्चे परिवार की प्रतिष्ठा नष्ट करेगा |अंत: वे जल्द से संतान को हिजडो के बीच छोड देते है | नीलिमा कोटी के हिजडे किसी न किसी कारण स्वयं हिजडे बन जाते है | मानसिक तौर पर स्वयं हिजडे की निकट समजते है | मनोवैज्ञानिक चिकित्सा देकर यांनी वापस ले सकते है | हंसा कोटी के हिजडे यौन अक्षमता के कारण हिजडों के साथ जोड लेते है |अबूआ किन्नर प्राय: पुरुष लोग हैं जो साडी पहनकर किन्नर बनने का नाटक करते है दुसरो से धन लुटने का काम करते है | रात के समय सडको पर घुमकर ड्रायव्हर लोगो के साथ प्रकृती विरुद्ध संसर्ग से योन क्षुधा शांत करते है | असली किन्नर स्वभावता स्त्री होते है और पुरुष के

प्रति आकर्षण होता है | लेकिन नकली किन्नर वस्तूव मे पुरुष होते है और उनका आकर्षण स्त्रियो के प्रति होता है | छीबरा नामक किन्नर वर्ग अत्यंत क्रूर यवं भयावह काम करनेवाले है | ये लोग शत्रू के परिवार के लडके लडकीयो को उठाकर उनके लिंग हटवाकर किन्नर बना देते है | ऐसे व्यक्ति को आजन्म नरक तुल्य जीवन जीना पडता है |

आज भारतीय साहित्य मे इन उपेक्षित किन्नर वर्गो पर चिंतन हो रहा है | समाज में ईन्हे कोई स्थान नही मिला है | कोई भी किन्नर को अपने घर मे बुलाना नही चाहता है और उनसे सामाजिक संपर्क भी करना नही चाहता है | किसी शुभ अवसर पर ये बधाईया देने आते है तो घरवाले जल्दी होने कुछ देकर इनसे जान छुडाना चाहते है | आज समाज मे राजनीती मे, संविधान मे ,अदालत मे ,और साहित्य मे ,भी इनकी समस्याओ की चर्चा यवं समाधान की कोशिश हो रही है | अब ईन्हे राजनीति में और चुनाव मे भाग लेने का अधिकार मिला है |ई यातना ओ पर चर्चा होती रहती है | साहित्य मे तृतीय लिंगी विमर्श व किन्नर विमर्श के नाम पर महत्व पूर्ण चिंतन हो रहा है | नीरजा माधव का 'यामदिप' 'प्रदीप सौरभ की 'तिसरी ताली ' महेंद्र भीष्म की 'किन्नर कथा ' 'मै पायल ' निर्मला भुराडीया का 'गुलाम मंडी ' चित्रा मुदगल का 'पोस्ट बॉक्स नं.२०३ नालासोपारा आदि किन्नरों की ज्वलंत समस्या को लेकर सामने आये है |ईन उपण्यासो की कथावस्तू किन्नर समुदाय की है जो उनकी पिडा, व्यथा, यवं भयानक त्रासदी की स्थिती को चित्रित करते हैं |यामदिप उपन्यास की कथा 'नाज बिबी' की कथा है | जो किन्नर व्यक्ती यवं उपन्यास की नाईका भी है | तिसरी तली में भुख और गरिबी के कारण हिजडे के धंदे आपनाने वाले लोगों की कहानी अत्यंत बरिकिसे हुआ है | किन्नर कथा मे राज घराणे मे पैदा हुई चंदा की कथा है | वह व राजपरिवार के लिए आश्चर्यजनक घटना बन जाती है | गुलाम मंडी में तीरसक्रत किन्नरों की कथा चित्रित है | पोस्ट बॉक्स नं.२०३ नालासोपारा मे रहने वाले छोटे लडके विनोद उर्फ बिन्नी की कथा है | वो भी किन्नर है|

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि इन सभी उपन्यासो में एक किन्नर समाज के व्यथा कथा अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित हुई है | उपेक्षित किन्नरों की असली स्थिती-जीवन यापन, मानसिक संघर्ष, परिस्थितीयों के प्रति संघर्ष, अपने अधिकार के प्रति मांग, सामाजिक प्रतिष्ठा की मांग,शिक्षा की मांग ,आदी को यथावत रूप में चित्रित करने मे आधुनिक हिंदी साहित्य के उपन्यासकार यवं उनकी रचनाये सफल हुई है|

संदर्भ :

1. बिश्नोई मिलन किन्नर विमर्श : साहित्य और समाज, विद्या प्रकाशन, कानपूर, प्र.२
2. दिवाकर शर्मा, क्रांतीदुत पत्रिका, 2017 दिसंबर, पृ .४ पूरणायन, मध्य प्रदेश ४७३५५१.
3. चित्रा मृदगल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 ,नालासोपारा, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2017
4. प्रदीप सौरभ, तिसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली २०११.
5. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामायिक प्रकाशन,नई दिली २०११.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी आदिवासी साहित्य और विमर्श

प्रो. डॉ. शेषराव लिंबाजी राठोड
शोध निदेशक एव्म हिन्दी विभागाध्यक्ष
श्री. शिवाजी महाविद्यालय, परभणी

आदिवासी विमर्श बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरू हुआ अस्मितामूलकविमर्श है | इसके केंद्र में आदिवासीयों के जल, जंगल, जमीन और जीवन की चिंताएंहैं | ऐसा माना जाता है कि 1991 के बाद भारत में शुरू हुए उदारीकरण और मुक्तव्यापार की व्यवस्थाओं ने आदिम काल से संचित आदिवासीयों की संपदा के लूट कारास्ता भी खोल दिया | विशाल एवं अत्यंत शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय एवं देशी कंपनीयों नेआदिवासी समाज को उनके जल, जंगल और जमीनों से बेदखल कर दिया | इसनेआदिवासी इलाकों में बडे पैमाने पर विस्थापन को जन्म दिया | बडी संख्या मेंझारखंड, छत्तीसगढ, दार्जिलिंग आदी इलाकों से लोग बडे महानगरों जैसे दिल्ली,कलकत्ता आदी में आने को विवश हुए | इन आदिवासी लोगों के पास न धन था, नही आधुनिक शिक्षा थी | शहरों में ये दिहाडी मजदूर या घरेलू नौकर बनने को बाध्यहुए | विशालकाय महानगरों ने इनकी संस्कृति, लोकगीतों और साहित्य को भी निगल लिया | नई पिढी के कुछ आदिवासीयों ने शिक्षा प्राप्त की और अवसरों का लाभ उठाकर सामर्थ्य अर्जित किया | उन्होंने सचेत रूप से अपने समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए आवाज उठाना आरंभ किया | उन्होंने संगठन भी बनाए | आदिवासीयों ने अपने लिए इतिहास की नए सिरे से तलाश की | उन्होंने अपने नेताओं की पहचान की | अपने लिए नेतृत्व का निर्माण किया | साथ ही समर्थ आदिवासी साहित्य को जन्म दिया | प्रतिरोध अस्मितामूलक साहित्य की मुख्य विशेषता है | आदिवासी विमर्श भी आदिवासी अस्मिता की पहचान, उसके अस्तित्व संबंधी संकटों और उसके खिलाफ जारी प्रतिरोध का साहित्य है | यह देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति भेदभाव का विरोधी है | यह जल, जंगल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिये आदिवासीयों के “आत्मनिर्णय” के अधिकार की माँग करता है | आदिवासी साहित्य की अवधारणा : आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीन तरह के मत है |

1) आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है |

2) आदिवासीयों व्दारा लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है |

3) आदिवासी दर्शन के तत्वोंवाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है |

पहिली अवधारणा गैर -आदिवासी लेखकों की है | परंतु समर्थन में कुछ आदिवासी लेखक भी है | जैसे रमणिका गुप्ता, संजीव, राकेश कुमारसिंह, महुआ माजी, बजरंग तिवारी, गणेश देवी आदि | दूसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखकों और साहित्यकारों की है जो जन्मना और स्वानुभूती के आधार पर आदिवासीयों व्दारा लिखे गए साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानते हैं | अंतिम और तीसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखकों की है, जो आदिवासीयत के तत्वों का निर्वाह करने वाले साहित्य को ही आदिवासी साहित्य के रूप में स्वीकार करते हैं | आदिवासी साहित्य से तत्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासी लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया जाता है | आदिवासी साहित्य में आदिवासीयों के जीवन का जीवंत वर्णन होता है | उनके रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, बोलियों, लोकसंस्कृति आदि का सजीव वर्णन रहता है | डॉ. विनायक तुकाराम के अनुसार- “आदिवासी साहित्य वन संस्कृती से संबंधित साहित्य है | आदिवासी साहित्य वन-जंगलों मे रहने वाले वंचितो का साहित्य है

जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया | यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है, जिनके आक्रोश पर मुख्यधारा की समाज व्यवस्था ने कभी कान नहीं धरे | यह गिरी कंदराओं में रहनेवाले अन्यायग्रस्तों का क्रांती साहित्य है | सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय व्यवस्था ने जिनकी सैकडों पीडियों को अजीवन वनवास दिया, उस अदिम समूह की मुक्ती का साहित्य है, आदिवासी साहित्य |" वर्तमान समय में साहित्य के क्षेत्र में कई तरह के विमर्श चल रहे हैं, जैसे स्त्री- विमर्श, दलित विमर्श, वैसे ही आदिवासी विमर्श पर भी जोरों से विचार-विमर्श किया जा रहा है | साहित्य के सभी विधाओं में आदिवासी विमर्श चर्चा का केंद्र बना हुआ है | डॉ. प्रमोद चौधरी आदिवासी विमर्श को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "आदिवासी विमर्श से तात्पर्य है उनके अस्तित्व एवं अस्मिता का विमर्श |" अतः आदिवासीयों के अस्तित्व एवं अस्मिता को लेकर किया गया विचार –विमर्श ही आदिवासी विमर्श है | आदिवासी प्रकृति की गोद में रहते हैं | वे जंगलो में ही झोपडीयाँ बनाकर पेडों के उपर छोटा-सा मकान बनाकर रहते हैं | उन्हें खाने-पीने के सभी साधन प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं | वे भारत के मूलनिवासी है | आदिवासी शब्द को परिभाषित करते हुए मानक हिंदी शब्दकोश में लिखा गया हैं- "किसी स्थान पर रहनेवाले वहाँ के मूलनिवासी यानी आदिवासी |" वर्तमान समय में आदिवासी विमर्श साहित्य के क्षेत्र में प्रमुख विषय बनता जा रहा है | खासकर कविता में आदिवासीयों के जीवन संघर्ष को प्रभावित रूप से चित्रित किया जा रहा है | युवा कवी सोनू रुद्र मांडवी अपनी कविता में लिखते हैं- "मेरा आदिवासी होना ही काफी है मेरी हत्या के लिए |" कविता के शीर्षक से स्पष्ट हो जाता है की, आदिवासी होना ही वर्तमान समय में एक अभिशाप है | क्यों की जब आदिवासी अपने अधिकार के लिए लढते हैं तो उन्हें प्रशासन नक्सलवादी घोषित करती हैं | छत्तीसगड राज्य में सबसे अधिक आदिवासी रहते हैं | वहा के आदिवासीयों पर हो रहे अन्याय का चित्रण कवी सोनू रुद्र मांडवी अपनी कविता में करते हैं- "मेरा आदिवासी होना ही काफी है मेरी हत्या के लिए, नक्सली व मुखबीर होना तो बस बहाना है |" चतुर-चालाक प्रशासन विकास का नाम देकर आदिवासीयों की जमीन, वन आदी नैसर्गिक संपदा को छीन रहा हैं | उन्हे मरने के लिए छोड दिया गया है-

"मेरी माटी पर है नजर तुम्हारी

विकास व समरसता तो बस फसाना है |

छीन लेना चाहते हैं सारी सम्पदाएं मुझसे

जो प्रकृति ने दिया मुझे प्यार से,

मैंने संरक्षण किया सबका

पर अब लुटना चाहते हैं व्यापार से |"

आदिवासीयों के अधिकारों का भारी मात्रा में हनन हो रहा हैं | उन्हें अपने ही घर से विस्थापित कर दिया गया है | वर्तमान में आदिवासी होना अपने-आप में एक अभिशाप है | क्योंकि उनको आज दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं हो रही है | सरकार आदिवासीयों को रोजगार और मकान देने का वायदा तो करती है, परंतु उसे पुरा नही करती | बडे-बडे कारखाने, उद्योग लाने का बहाना बनाकर उनकी जमीन जब्त कर ली जाती है | आदिवासीयों को रोजगार मिलेगा ऐसा कहा जाता है | पर असल बात यह है की कारखाने, उद्योग बन जाने पर भी आदिवासीयों की झोली में कुछ नहीं दिया जाता | उल्टे उनको वहां से विस्तापित कर दिया जाता है | इस गंभीर समस्या को सोनू रुद्र मांडवी अपनी कविता में बयां करते हैं-

"मै जंगलो मे रहकर उसी रूप में ढलने लगा,

प्रकृति के आँगन में मुस्कुराकर पलने लगा,

पर उनकी क्रूर नजर से बच नहीं पाया,

मेरी माटी मेरा वन साथ रख न पाया,

चंद कौडी के लालच मे लुट गई मेरी माटी और वन

छोड अपनी मातृभुमी किया मेरा विस्थापन |"

मुक्त बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के दौर में आदिवासी कभी पैसे और कभी सरकारी नियमों के बल पर अपने जमीन से बेदखल होकर पलायन कर रहें हैं | इसके कारण आदिवासी भाषा एवं संस्कृति संकट में पड गई है | परंपरागत खेलों से लेकर आदिवासीयों की लोक-कला तक विलुप्त होती जा रही है | इस संकट को कवी वामन शेलके आपने कविता में चित्रित करते हैं-

"सच्चा आदिवासी कटी पतंग की तरह भटक रहा है,

कहते हैं, हमारा देश इक्कीसवी सदी की ओर बढ रहा है |"

उपसंहार :

इस प्रकार आदिवासीयों ने बहुत जुल्म को सहा है | परंतु वर्तमान में अनेक आदिवासी कवियोंने आपने जाति, समुदाय के लोगों पर हो रहे अन्याय, अत्याचार के खिलाफ कलम की तलवार उठा ली है | वे अपने भाईयों को अपने उपर होनेवाले अत्याचार के खिलाफ जागृत कर रहे हैं | आज का युवा आदिवासी कवि अपनी कविता से अपने भाईयों के लिए अधिकार की मांग कर रहा है | उन्हें जागृत करने का प्रयास कर रहा है | वर्तमान कवियों ने आदिवासीयों की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितीयों को समाज के सामने लाने का सराहणीय कार्य किया है | आदिवासीयों की स्थिती को अगर सुधारणा हैं तो आदिवासी लोगों के साथ-साथ सभ्य समाज के लोगों को भी इसमें अपना योगदान देना आवश्यक है | तब कही जाकर आदिवासीयों की स्थिती में सुधार हो सकता है |

संदर्भसूची

1) आदिवासी केंद्रित उपन्यास –डॉ. प्रमोद चौधरी

2) मेरा आदिवासी होना ही काफी है मेरी हत्या के लिए, सोनू रुद्र मांडवी, छत्तीसगढ बॉस्केट- विचारों का साझा मंच

3) आदिवासी साहित्य विविध आयाम –संपा. डॉ. रमेश संभाजी कुरे, डॉ. मालती शिंदे

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

साहित्येतिहास में अस्मिता-विमर्श की दस्तक

डॉ. अरुण प्रसाद रजक

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
गोरुबथान गवर्नमेंट कॉलेज, कलिम्पोंग
पश्चिम बंगाल, भारत

शोध-सार:

20वीं सदी से विमर्शों की शुरुआत होती है और 21वीं सदी में यह काफी लोकप्रिय हुआ है। यह भी कह सकते हैं कि समकालीनता का दौर वाद का नहीं, बल्कि विमर्शों का दौर है। दरअसल विमर्श, समकालीन साहित्य की शक्ति है। समकालीन विसंगतियों का व्यंग्य-विद्रूप विमर्शों में देखने को मिलता है। समाज के सभी वंचित समूहों का अपने हक, अधिकार और अपनी पहचान के लिए निर्णायक संघर्ष जारी है। यह हाशिये के लोगों की लड़ाई मुख्यधारा के विरूद्ध अपने पक्ष में लड़ी जा रही है। यह संघर्ष सिर्फ हवाई मुक्केबाजी नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक सुविचारित दर्शन कार्य कर रहा है। समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में उत्तर आधुनिकतावादी, सबाल्टर्न और विखंडनवादी विचारधाराओं का व्यापक प्रभाव है। हिंदी साहित्य के मुख्य तीनों विमर्शों अर्थात् दलित, नारी और आदिवासी विमर्श में समाज के वंचित वर्गों ने कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा तथा अन्य विधाओं के माध्यम से साहित्य जगत में मुख्यधारा का ध्यान अपनी ओर खींचा है। कुछ अन्य अस्मितामूलक विमर्शों जैसे विकलांग विमर्श, किन्नर विमर्श, बाल विमर्श, मुस्लिम विमर्श, पर्यावरण विमर्श में भी शोषित समाज के हक के लिए लेखन कार्य किया जा रहा है। ये सभी विमर्श इतिहास में जगह पाने के लिए दस्तक दे रहे हैं। इतिहास अब सिर्फ वादों का नहीं, विमर्शों का भी है। इस तरह विमर्श के नाम पर चलने वाले विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों के कारण समकालीन साहित्य के इतिहास को किसी एक विशेष अवधारणा में निर्धारण कर पाना एक दुष्कर कार्य है।

बीज-शब्द:

हाशिये, विमर्श, मुख्यधारा, इतिहास, पहचान, संघर्ष,

शोध-विस्तार:

'मानक हिंदी कोश' में विमर्श का अर्थ है- 'विचारण, आलोचना, व्याकुलता, क्षोभ और उद्वेग।'[1] विमर्श का अर्थ है- निरंतर संवाद। हिन्दी में 'विमर्श' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के डिस्कोर्स (Discourse) शब्द के लिए किया जाता है। अंग्रेजी में 'Discourse' शब्द का अर्थ वाचिक सम्प्रेषण या बहस है। इसे लिखित वाद-विवाद-संवाद भी कह सकते हैं। किन्तु समकालीन सन्दर्भ में इसके अर्थ का प्रचलन अलग हो गया है। दलित, स्त्री, बाज़ार, इतिहास, साम्प्रदायिकता आदि के साथ विमर्श शब्द जोड़ने पर एक विशिष्ट प्रकार का अर्थ अभिव्यंजना देने लगता है। अब विमर्श का अर्थ है- व्यक्ति के बहाने सामुदायिक अस्मिता का विवेचन, विचार, समीक्षा या आलोचना। विश्व के अनेक देशों में उसके आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित एवं शोषित तबकों पर कभी गंभीरता से विवेचन नहीं हुआ। यह वर्ग हमेशा दोयम रूप में अथवा तथाकथित मुख्यधारा में प्रस्थापित वर्ग की दया पर ही जीता रहा। 20वीं सदी में जब शिक्षा और व्यक्तित्व विकास के अवसर सभी को उपलब्ध कराये गयें, तब इस वर्ग के भीतर अपने अस्तित्त्व और अस्मिता को लेकर अनेक प्रश्न उठने लगें। यह वर्ग अपने खोये हुए मानवाधिकारों की मांग

करने लगा। परिणामत: इस वर्ग की दशा पर प्रस्थापित और उपेक्षित दोनों वर्गों में जो बहस शुरू हुई, उसी को विमर्श कहते हैं। विमर्श का अस्मिता के साथ मानवाधिकार से गहरा सम्बन्ध है |

'विमर्श' शब्द साहित्य और चिंतन में भले ही आधुनिक युग की देन प्रतीत होता है, लेकिन इतिहास के पन्नों में यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव सभ्यता के इतिहास से जुड़ा हुआ है। जब से मानव की सभ्यता-संस्कृति है, तभी से उसकी अस्मिता अलिखित रूप में दर्ज है। सत्ता- संघर्ष के इतिहास में अस्मिता का विमर्श पदबंध हमेशा से मौजूद रहा है। दलित, स्त्री, आदिवासी, पिछड़े, अल्पसंख्यक और अधिकारविहीन विभिन्न अस्मिताओं की आवाजें समकालीन विमर्श आंदोलन में संगठित होने के लिए आज भी प्रयासरत है। अस्मितावादी या विमर्शवादी आंदोलन, सिर्फ आइडेंटिटी या केवल अपने वजूद की पहचान या एहसास कराने का आंदोलन नहीं है, बल्कि यह भागीदारी, अधिकार, न्याय, स्वतंत्रता और मैत्री का आंदोलन है।

आज भूमंडलीकरण का दौर है। भूमंडलीकरण के दौर में आधुनिक युगबोध व चेतना के साथ अस्मिता का विमर्श वंचित समुदायों के संघर्ष आंदोलन व चिंतन-दर्शन के तौर पर उभरा है। इसमें मुख्य रूप से दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी-विमर्श व अल्पसंख्यक-विमर्श हैं। यह सारे विमर्श मुख्य रूप से समाज में अपने जीवन-मूल्यों से वंचित समुदायों व वर्गों का विमर्श है, जिसकी आवाज़ विभिन्न देशकाल में विभिन्न महापुरुषों के द्वारा समय-समय पर उठाया जाता रहा है। वैश्विक परिदृश्य में विमर्श पर उत्तर आधुनिकतावादी, सबाल्टर्न और विखंडनवादी विचारधाराओं का व्यापक प्रभाव है। भारत में यह युगबोध और चेतना फुले-अम्बेडकरवादी चिंतन और दर्शन से निकल कर मुकम्मल स्वरूप धारणा करता है। यही कारण है कि भारत में अस्मिता-विमर्श की वैचारिकी और उसकी अवधारणा दोनों ही फुले- अम्बेडकर के चिंतन व दर्शन का प्रतिफलन है। अस्मिता-विमर्श की अवधारणा यहीं से शुरू होती है कि मैं कौन हूँ और समाज में मेरी क्या हैसियत है ? मेरा क्या वजूद है ? मेरा अस्तित्व क्या है ? मेरा अधिकार और कर्तव्य क्या है ? इन तमाम प्रश्नों के संदर्भों का अनुसंधान भारत में यहाँ की सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक जीवन-शैली में निहित है। इन सवालों ने अस्तित्वबोध की चेतना पैदा की और यहीं से विमर्श का निर्माण होता है। समाज में अस्तित्व का संकट सामूहिक अस्मिता को जन्म देता है।

21वीं शताब्दी के इस दौर में विमर्शों की एक लहर समाज से लेकर साहित्य तक फैली हुई है, जिसके कारण इस समाज में सदियों से बह रही हवाओं का रुख बदला है। साहित्यिक- विमर्शों ने हाशिये के समाज की अस्मिता के प्रश्न को आगेकर अपनी जमीन तैयार की है। आभिजात्य साहित्य में मोटे तौर पर दलित साहित्य के अपेक्षाकृत समाज का छोटा तबका ही स्थान पाता है, जबकि विमर्शवादी साहित्य में हाशिये के समाज का बृहत भाग आश्रय पाता है। आभिजात्य साहित्य यदि लोकमंगल की कामना करता है तो उसका दायरा सवर्ण समाज तक ही सिमटा होता है, लेकिन इस संदर्भ में विमर्शवादी साहित्य का दायरा काफी विस्तृत होता है। ये विशेषताएं हिंदी साहित्य में आरंभ से अब तक मौजूद हैं, लेकिन आलोचकों ने इनकी अनदेखी की। आभिजात्यवादी आलोचना- दृष्टि के कारण कबीर को एक भक्त कवि माना जाता रहा है, जबकि विमर्शवादी आलोचना- दृष्टि उन्हें एक बड़े समाज-सुधारक के रूप में स्थापित करती है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में आज के अस्मिताओं के विमर्शों के बिंदुओं को देखा जा सकता है।

'साहित्येतिहास' शब्द का अर्थ होता है- साहित्य की विकासमान परंपरा का उसके जन्म से लेकर अद्यतन स्थिति तक का क्रमबद्ध अध्यायन। साहित्य के इतिहास में हम मानव भावना के विकास की कहानी पाते हैं। लेकिन इसमें हाशिये की भावना सिर्फ फुटकल रूप में मिलता है। इतिहास में हाशिये की प्रगतिशील धारा को आत्मसातिकरण की प्रक्रिया से संघर्ष करना पड़ा है। यह प्रक्रिया काफी पहले से शोषकों के द्वारा शोषितों के पर

प्रयोग किया जाता रहा है। पहले मुख्यधारा के लोगों द्वारा हतोत्साहित करना फिर जब बात न बने तो फिर तोड़-मरोड़ कर और विकृत रूप में दुष्प्रचारित करना और अंततः आंदोलन की तेज धार को कुंद करके आत्मसात कर लेना। कट्टरवादियों का यह हथकंडा काफी पुराना है। प्राचीनकाल और मध्यकाल में यह हथकंडा ज्यादा अपनाया गया था। आज तुलसीदास का उपयोग उदार लोगों के अलावा वर्ण- व्यवस्था के समर्थक, कट्टरपंथी- प्रतिक्रियावादी ताकत भले ही कर ले, लेकिन प्रगतिशील लेखक सरहपा और गोरखनाथ जैसे विचारों का उपयोग उनके वश का नहीं। इन कवियों का विचार में परिणत होना समाज के शक्ति संतुलन को प्रभावित करता है जो कई लोगों के लिए असुविधाजनक हो सकता है। जब कोई मान्यता समुदाय विशेष के हितों के अनुकूल न हो और उससे भी बात न बने तो मान्यताओं को विकृत रूप में दुरुपयोग किया जा सकता है या उन मान्यताओं को अपने भीतर समाहित किया जा सकता है। इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं।

वर्तमान में सरहपा और गोरखनाथ को ब्राह्मणवादी रंग में रंगकर आत्मसात कर लेने की प्रक्रिया शुरू हो गई है, जो बहुत खतरनाक प्रक्रिया है। इससे सावधान रहने की सख़्त जरूरत है। यह वही हथकंडा है जिसका इस्तेमाल शंकराचार्य ने बुद्ध के क्रांतिकारी चिन्तन के विरुद्ध किया था। प्राचीन काल से भारतीय चिंतन- परंपरा और साधना में समाज के हर वर्ग में क्रांतिकारी व्यक्तित्व जन्म लेते रहे हैं। समाज के आभिजात वर्ग से ज्ञान-साधक, युग-प्रवर्तक आते रहे हैं, तो तथाकथित निम्न कही जाने वाली जातियों से भी ज्ञानमार्गी चिंतक और धर्म-साधक तथा प्रेम-भक्ति का प्रसार करने वाले जनचेतना के संवाहक-विचारक भी होते रहे हैं। उदाहरण के तौर पर आदिकालीन सिद्ध परम्परा को देख सकते हैं कि सिद्ध परम्परा में कंकालीपा शूद्र थे, मीनपा मछुआ थे, चमारिपा चमार थे, धोबीपा धोबी थे तथा शालिपा शूद्र जाति में जन्मे थे। नाथों की परंपरा में मत्स्येन्द्रनाथ मछली मारने वाली कैवर्त जाति में उत्पन्न हुए थे, तांतिपा तांती थे, कमारो लुहार थे। संतों की निर्गुण धारा में कबीर जुलाहा, रैदास चमार, धर्मदास बनिया, सेन नाई, दादू मोची या धुनिया थे। इसी प्रकार रामभक्ति शाखा में नाभाजी तथाकथित डोम कही जानेवाली शूद्र जाति में उत्पन्न हुए थे। कुछ लोगों ने भ्रम फैलाया कि वे क्षत्रिय जाति में जन्मे थे। आरम्भ से ही निम्न वर्णों के अनेक संतों और भक्तों ने भारत की संस्कृति को समृद्ध किया है, लेकिन ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पोषकों ने इस सत्य को नकार देना चाहा है। जब-जब निम्न जाति में किसी असाधारण प्रतिभा ने जन्म लिया है, तब-तब उनके साथ अनेक प्रकार की झूठी, मनगढ़ंत, अंधविश्वास से भरी कपोल-कल्पित अलौकिक घटनाओं को जोड़कर एक सोची-समझी गई साजिशों के तहत येन-केन-प्रकारेण इन्हें उच्च जाति का प्रमाणित किया गया। मिथक की बात करे तो 'महाभारत' के पात्र सूतपुत्र तेजस्वी कर्ण को सूर्यपुत्र बना दिया गया।त थाकथित मुख्यधारा के वर्गों में यह भ्रम है कि निम्न कही जाने वाली जातियों में साधक, भक्त या संत जन्म ले ही नहीं सकते। विचारक सिर्फ अतिविशिष्ट और प्रतिभा संपन्न मात्र उच्च जाति की ही बपौती है। इस तर्कहीन विचारधारा को पुष्ट करने में बड़े-बड़े आचार्यों का भी हाथ रहा है। संत परंपरा की निर्गुणधारा में रैदास तथाकथित चमार जाति में उत्पन्न बतलाए जाते हैं, पर उन्हें ब्राह्मण साबित करने के लिए विचित्र कल्पना की गई है कि वे पूर्वजन्म में ब्राह्मण थे। हिन्दी साहित्य को मजबूत व व्यापक बनाने वाले वह ये वो रचनाकार हैं ,जिनसे सुसंस्कृत लोग आँखें चुराते आए हैं। कबीर के रामनामी दुपट्टे में वैष्णववादी झालरें और गोटे लगाने की संभावना पाकर, बच्चों को पढ़ाई जाने वाली पाठ्य पुस्तकों में कंठी, माला, छापा, तिलक और मोर पंख से उनका चित्र गढ़कर इस ढंग से परोसा गया कि मुख्यधारा के अंतर्गत उसे व्याख्यायित किया जा सके। डॉ० राजेंद्र प्रसाद सिंह का मानना है कबीर और रैदास की जन्मकथा को स्मरण रखे तो कबीर जुलाहे थे मगर बताया गया है कि वे विधवा ब्राह्मण कन्या के गर्भ से पैदा हुए थे। रैदास चमार थे मगर बताया गया है कि वे पूर्वजन्म में ब्राह्मण थे। ऐसे ही सूरदास अहीर थे मगर बताया गया है कि वे पूर्वजन्म में अहीर थे और अगले जन्म में ब्राह्मण हुए। [2]

'फारवर्ड प्रेस' के अप्रैल, 2016 अंक में प्रकाशित आलेख 'साहित्यिक मिथकों के उस पार' में भी डॉ० राजेंद्र प्रसाद सिंह यही बात कहते हैं। वे प्रमाण और तथ्यों के साथ यह भी कहते हैं कि 'आईन-ए-अकबरी', 'मुंशियात-अबुल-फजल' और 'मुंतखिबुल-तवारीख' जैसे अकबरकालीन इतिहास ग्रंथों और मुंशी देवी प्रसाद की पुस्तक 'श्री सूरदास का जीवनचरित' में साफ लिखा है कि सूरदास के पिता का नाम रामदास ग्वाल था |[3] इसी क्रम में रसखान के जीवन के अंतिम दिनों में यह घोषणा कर दी गयी कि वे इस्लाम छोड़कर वैष्णव धर्मावलम्बी हो गए थे।

इतिहास में मुख्यधारा की एक चाल रही है- श्रमशील समाज की कला, संस्कृति और साहित्य पर कुलीनतावादी विचारों का आधिपत्य करना । कभी कोई संत, सिद्ध, निर्गुणमार्गी, नाथपंथी या कबीरपंथी ने अपनी उपस्थिति दर्ज करानी चाही भी तो उसे हर प्रकार से ओझल, विचारहीन और मूल्यहीन बनाने का प्रयास किया गया। यह अकारण नहीं है कि समृद्ध संत और सिद्ध साहित्य की उपस्थिति को रेखांकित करने में सदियों लगे। हिन्दी साहित्य में हीरा डोम की एकमात्र कविता के अलावा और कुछ नहीं दिखता। इस विभेदकारी नीति के कारण ही साहित्य की भाषा, मुहावरें और कथ्य पर कुलीनतावादियों का एकाधिकार रहा और दलितों तथा पिछड़ों की उपेक्षा हुई। साहित्येतिहास जब लिखा गया तो बंटवारे की यह मानसिकता प्रबल रूप में दिखाई दी। काल विभाजन के सिलसिले में सिद्ध, नाथ, जैन, संत, सूफी आदि नामों से साहित्य को लेखकों की धार्मिक और जातिगत आस्थाओं के अनुरूप काल विभाजन किया गया और भक्ति काव्य की मुख्यधारा से अलग हाशिये पर रखकर उनका मूल्यांकन किया गया।

निष्कर्ष:

आज इतिहास का पुनर्मुल्यांकन किया जा रहा है। नवजागरण के इतिहास पर नए तरीके से बहस शुरू हो चुकी है। नवजागरण के दौरान जो प्रश्न अछूते रह गए थे, आज फिर उनपर नयी दिशा में बहस की शुरुआत हुई है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अस्मितामूलक विमर्शों के योगदान की चर्चा भी चल पड़ी है। फिलहाल, विमर्श संबंधी सिद्धांत समकालीन समय में विकासमान है। समकालीन विमर्शों के सामने यह बड़ी चुनौती है कि विमर्शों को अल्पजीवी 'सामाजिक या साहित्यिक ट्रेंड' बनने के प्रलोभन और दिशाहीन भटकाव से बचाया जाए तथा उसके आन्दोलन को और पुरजोर किया जाए।

संदर्भ- सूची:

1. वर्मा, रामचंद्र, 'मानक हिंदी कोश', हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1966, पृष्ठ- 700
2. सिंह, डॉ० राजेंद्र प्रसाद, 'हिंदी साहित्य का सबाल्टर्न इतिहास (सिद्ध साहित्य से संत साहित्य तक)', गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 64
3. डॉ०, राजेंद्र प्रसाद, 'फारवर्ड प्रेस', अप्रैल, 2016 'साहित्यिक मिथकों के उस पार' (आलेख), 'फारवर्ड प्रेस', अप्रैल, 2016
4. साभार:https://www.forwardpress.in/2016/05/sahityik-mithakon-ke-us-par_rajendra-prasad-singh/

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

नासिरा शर्मा के 'अक्षयवट' उपन्यास में चित्रित स्त्री विमर्श

योजना रामकिशन नाकाडे

शोध-छात्र

शोध केंद्र - स्वामी रामानंद तीर्थ महाविद्यालय, अंबाजोगाई

पत्ता - मु.पो. घाटनांदूर, ता. अंबाजोगाई,

जिला- बीड (महाराष्ट्र), पिन-431519

भारतीय नारी को आदर्श माना गया है। पहले भी नारी अपने जीवन में संघर्ष करती थी और आज की नारीयाँ भी अपने जीवन में संघर्ष करती हुई पाई जाती है। स्त्रियों को उनके अधिकार प्राप्त करने के लिए आज भी जीवन में संघर्ष करना पड़ रहा हैं। आधुनिकता का दौर होने के बावजूद भी स्त्री अभी तक स्वतंत्र नहीं हैं। उसे परम्परागत रूढियों का सामना करना पड़ता हैं। साधारन स्त्रियों को घुटन भरा जीवन सहना पडता है। पिता की बेटी, किसी की पत्नी, किसी की माँ आदि नारी विविध रूपों में सामने आ जाती है। स्त्री को उसका स्वतन्त अस्तित्व ही प्राप्त नहीं ही सका है।

"स्त्री-जीवन है पंछी जैसा

तीन बार कट गये पर,

पिता पति बेटे के लिए

समर्पित हैं तीन अंक!"[1]

हालांकि नारी घर-परिवार को सँभालते हुये नजर आई पर फिर भी एक सीमित दायरे से बाहर निकलकर अपना अस्तित्व सिध्द करने की कोशिश भी आज की नारी कर रही है। विविध देशों में घूमने वाली नासिरा शर्माजी स्त्री-विमर्श को उनके उपन्यासों के माध्यम से सामने लाती हुई नजर आती है। उनके दृष्टि में स्त्री-विमर्श का अर्थ,

"नारी पर होने वाले अत्याचारों के विरूध्द स्वतन्त्रता के समर्थन में रूढ़िवादिता और जड़ता पर प्रहार करना है न कि इंसानों को औरत-मर्द के खानों में बँट कर किसी एक वर्ग का अंधा समर्थन करना है।"[2]

नासिरा शर्मा जी स्त्री और पुरूष के लेखन को अलग नहीं मानती हैं। वह तो नारी के ऊपर होनेवाले अत्याचारों के खिलाफ उनकी लेखनी के माध्यम से आवाज उठाना चाहती हैं। नासिरा शर्मा जी का जम्न 22 अगस्त 1948 में इलाहाबाद (उत्तर-प्रदेश) में हुआ है। उनके पिताजी प्रोफेसर जमिन अली इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उर्दू भाषा के प्राफेसर है। तथा माताजी का नाम नाझनीन बेगम है। उनका विवाह उन्नीस वर्ष की आयु में श्री. रामचंद्र शर्माजी के साथ हुआ है। शर्माजी जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में भूगोल के प्रोफेसर है। उन्होंने कहानी, उपन्यास, रिपोर्ताज, कविता, अनुवाद लेख आदि पर अपनी कलम चलाई है और लेखन कार्य किया है। भारतीय कामकाजी महिलाओं के जीवन एवं समस्याओं का चित्रण करनेवाले उपन्यास भी लिखे हैं। उनके उपन्यासों में संघर्ष करती हुई नारीयों को देखा गया है।

नासिरा जी के उपन्यासों में बहिश्ते-जहरा, शाल्मली, ठीकरे की मँगनी, जिन्दा मुहावरे, अक्षयवट, जीरा रोड, कुइयाँजान, पारिजात, अजनबी जज़ीरा तथा कागज की नाव आदि उपन्यासों में नारी के संघर्ष का चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों में से प्रमुखतः से 'अक्षयवट' इस उपन्यास के पात्र फिरोजजहाँ तथा सिपतुन के जीवन में आये हुये संघर्ष को बताया गया है। उपन्यास में शमीम अहमद और फिरोजजहाँ के दाम्पत्य जीवन का चित्रण है। खानदान में दुर्भाग्यवश मर्दों की मौत का सिलसिला चलता ही जा रहा हैं। फिरोजजहाँ पति के गुजर जाने के बाद अपने बेटे नसीम के साथ अकेलेही जिंदगी जी रही हैं। वह जमाने के साथ चलने में विश्वास रखनेवाली नारी है। वह संघर्ष करते हुए जीवन में आगे बढ़ रही है। फिरोजजहाँ घर चलाने के लिए स्कुल में इंग्लिश और हिस्ट्री पढाती हैं। टीचर की नौकरी करने के बावजूद भी वह संघर्ष को कम नहीं कर पा रही है। वह बहुत ही पढ़े-लिखे घर की बेटी हैं।

बेटे नसीम को पढ़ा-लिखाकर एक अच्छा इन्सान बनाना चाहती है। नसीम की शादी वह सिपतुन से करवाती है। फिरोजजहाँ सिपतुन से बातें करती हुई नज़र आती है। उसका मानना है कि सिपतुन कम बोलती है। सिपतुन उन्हें कहती है कि मैं आपसे क्या बात करूँ? फिरोजजहाँ उससे कहती है,

"दुनिया जहान की बातें है। तुम्हारी ददिया, सास से मेरी खूब पटती थी अक्सर रात-रात भर हम बातें करते थे। जब नसीम के डैडी नहीं रहे तो उन्होंने मुझे आगे पढ़ने के लिए उकसाया। उनके बढावे पर मैं बी.ए. कर पायी थी। मगर उनकी बीमारी ऐसी बढ़ी की एम.ए. का फार्म भर न पायी।"[3]

सास की बीमारी तथा घर की परिस्थिती के चलते फिरोजजहाँ को आगे पढ़ने का मौका तक नहीं मिला है। वह अपने जीवन में सिर्फ संघर्ष ही करती हुई दिखाई देती है। कुछ दिन गुजर जाने के बाद हिन्दु-मुसलमान दंगे में एक दोस्त को बचाते समय चाकू नसीम के सीने में लग जाता हैं। और फिरोजजहाँ को पता चल जाता है कि अब नसीम भी इस दुनिया में नहीं रहा। फिरोजजहाँ को लगता है मैं तो संघर्ष भरा जीवन जी रही हूँ लेकिन मैं मेरी बहू को अकेले में जीवन की ढोकरे खाने नहीं दूंगी। फिरोजजहाँ सिपतुन के सामने दूसरी शादी की बात करती है। फिरोजजहाँ कहती है,

"मैं सच्चे दिल से खुदा को गवाह करके कह रहीं हूँ। दुनिया से मत डरो! हर उठी उँगली को मैं तोडने का हौसला और जुर्रत रखती हूँ। तूम नही जानती बेटी, तन्हा जिन्दगी गुजारना बहुत मुश्किल काम है। इस घर की औरतों ने यही एक तजुर्बा बार-बार दोहराया है। मैं नहीं चाहती कि तुम उससे गुजरो। आखिर जमाना बदल गया है। उसके तकाजे और जरूरतें बढ़ गयी हैं। फिर दीन मजहब ने भी इसकी इजाजत दी है।"[4]

फिरोजजहाँ बहू सिपतुन को अकेली जिंदगी जीने नहीं देना चाहती है। उसे लगता है जीवन में संघर्ष को झेलना पड़ता है। और वह वही सिपतुन के लिए नहीं चाहती है। सिपतुन बेटे जहीर से प्यार करती है इसलिए वह दूसरी शारी करना नहीं चाहती है। वह जहीर को पढ़ा-लिखाकर अच्छा इन्सान बनाना चाहती हैं। सिपतुन को पता है कि, घर की हालत खराब है, इसलिए वह सास को न बताते हुये सिलाई का काम भी शुरू कर देती है। सिलाई के बारें में सास से कहने के लिए सिपतुन हिचकिचाती हुई नजर आती है। सिपतुन के बेटे जहीर को दुकान खोलने के लिए सिपतुन उसके हाथ के कंगन बेंच देती है। जहीर सिपतुन से कहता है, दुकान के लिए एक लाख की माँग कर रहें है। तभी सिपतुन उससे कहती है,

"आधा पैसा देकर बात पक्की कर लो, आधे का इनाजाम हो जाएगा।"[5]

सिपतुन हार मानने वालों में से नहीं है। परिस्थिती के चलते हालातों से लडती हुई दिखायी देती है। फिरोजजहाँ भी वैसी ही नारी है, जो बेटे के लिए हर हालातों से लडती हुई आगे बढ़ती ही गई। ठीक उसीतरह से सिपतुन भी अपने बेटे जहीर के लिए वो सब करना चाहती है, जो उसके लिए संभव हैं। सिपतुन हाथ के कंगनों को बेंचकर जहीर के लिए वो सब करना चाहती है, जो उसके लिए संभव हैं। सिपतुन हाथ के कंगनों को बेचकर जहीर को वो पैसे देती हुई कहती है, और आगे पैसों का भी इंतजाम हम कर लेंगे। हालात चाहे जैसे भी हो लेकिन उसमें से भी सिपतुन नई राह पर चलती हुई नज़र आती हैं। उसे पता है जीवन जीने के लिए संघर्ष तो करना ही है, लेकिन साथ में परिवार को खुश भी रखना जरूरी है।

सिपतुन उसके बेटे जहीर को खुश देखना चाहती हैं। सिपतुन ने सास के साथ रहते हुये जीवन जीने के लिए जो संघर्ष किया है, जिन हालातों से गुजरी है, वह नहीं चाहती की जहीर का जीवन भी संघर्षमय हो। फिरोजजहाँ एवम सिपतुन दोनों संघर्षशिल नारिया हैं। सिपतुन का बेटा जहीर जब 'मुस्कान' नामक संस्था का निर्माण करता है, तभी भी सिपतुन जहीर का सहारा बनकर सामने आ जाती हैं। संस्था को चलाने के लिए जहीर तथा सिपतुन को कई सारी परिस्थितियों का सामना करना पडता है। जीवन में कठीन संघर्षो का सामना करनेवाली सिपतुन दूसरों की मदत करने के लिए हमेशा आगे आती है।

निष्कर्षत : यह कहा जाता है कि, अक्षयवट उपन्यास की फिरोजजहाँ तथा सिपतुन ये दोनों नारीयाँ उपन्यास में संघर्षमय जीवन बीताती हैं। अन्य नारीयों के सामने एक आदर्श रुप में भी सामने आ जाती हैं। फिरोजजहाँ उसके बेटे नसीम को तथा सिपतुन उसके बेटे जहीर को पति की मृत्यु के बाद संघर्ष करते हुये अच्छी शिक्षा देने का प्रयास करती हुई भी दिखाई देती है।

सन्दर्भ ग्रथ सूची :

1. आधुनिकता : स्त्री-विमर्श, डॉ. ललिता एन. राठोड, पृ. 22
2. आधुनिकता : स्त्री-विमर्श, डॉ. ललिता एन. राठोड, पृ. 41
3. अक्षयवट, नासिरा शर्मा, पृ. 135
4. अक्षयवट, नासिरा शर्मा, पृ. 137, 138
5. अक्षयवट, नासिरा शर्मा, पृ. 215

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी कहानी में वृद्ध विमर्श

डा. संतोष रघुनाथराव रायबोले
(हिंदी विभागाध्यक्ष)
कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय फोंडाघाट
त. कणकवली, जि. सिंधुदुर्ग

शोध सार :-

बुजर्गों के प्रति संवेदना का अन्वेषण वृद्ध विमर्श की पहली शर्त है। वद्धों, के दु:ख दर्द और समस्याओं की बेनाक प्रस्तुति का आगाज और चिंतन इसकी मूल भूमिका में समाहित है। परिवार और समाज से प्रताडित, अपमानित और शोषित मनुष्य के करुण वेदना की गाथा वृद्ध विमर्श है। वृद्ध विमर्श वृद्धों की समष्याओं को मानवीयता में समझकर सार्थक इलाज की ओर पहल है। वृद्ध विमर्श वृद्धों की अस्मिता एवं सम्मान को सर्वोपरि वरियता प्रदान करता है। संयुक्त परिवारों कि टूटन स्वार्थान्धता और आधुनिकीकरण वृद्ध समस्या की जननी है। परिवार के लिए अपना जीवन दाँव पर लगाने वाले माता-पिता बोझ लगने लगे है। रद्दी बने माता-पिता को कबाडखाने की जगह वृद्धाश्रमों में दाखिला दिया जा रहा है। संयुक्त परिवार के मुखिया को एकल परिवार में घर-परिवार और संपत्ति से बेदखल गुमशुदा जिंदगी के हवाले किया जाता है। कर्तव्य और जिम्मेदारी से विमुख नई पिढी की बर्बरता वृद्ध विमर्श की जननी है। हिंदी कहानियों में अपने जडों को भूलने वाली दकियानुसी प्रवृत्ति के खिलाफ वृद्ध विमर्श धधकता दस्तावेज है।

बीज शब्द :-

विमर्श, अस्मिता, बोझ, वार्धक्य, उपभोक्तावाद, वृद्धाश्रम, अभिशप्त, फालतू, बैसाकी, बागबान, नकारा, दया, क्रियाक्रम, संपत्ति, मुक्ति, रद्दी, पेंशन, परिवार, हैसियत आदि.

प्राक्कथन :-

वार्धक्य धीरे-धीरे उपेक्षा, अकेलापन असुरक्षा और दया का पात्र बनने लगा है। 'बेकार की चीज' का पुनर्वास वृद्ध विमर्श का लक्ष्य है। हाशियाकृत वृद्ध माता-पिता के साथ सबंध केवल स्वार्थ की बुनियाद पर टिके है। जटिल बनते मानवीय रिस्तों ने परिवार विघटन के द्वारा वृद्धों की समष्याओं को जन्म दिया है। कर्तव्य और जिम्मेदारी विमुख बच्चे माँता-पिता को खुदकुशी करने पर मजबूर कर देते है। बूढापे में इनकों इनके हाल पर छोड दिया जाता है। जैसे मरकई गाय, भैस, बैल आदि पशुओं को छोडा जाता है।'युज एन्ड थ्रो' की उपभोक्तावादी वृत्ति का शिकार बुजर्ग बनते जा रहे है। संपत्ति के लिए एक दूसरे के दुश्मन बने भाई-बहन माता-पिता की खबर लेना तक वाजिब नही समझते। वृद्धाश्रमों की बढती संख्या जीवनमुल्यों पर सवाल उठाती है। कई वृद्ध गली, कुचे, मुहल्ले, नुक्कड, प्लायओहर के नीचे गुमशुदा जिंगदी बरस कर रहे है। रोगी और कमजोर शरीर लेकर वे भगवान से मौत की गुहार लगा रहे है। समकालीन हिंदी कहानियां वृद्धों की समष्याओं को संवेदनात्मकता और मुखरता प्रदान करती है।

मूल शोधालेख :-

वार्धक्य सांध्यबेला की त्रासदियों को हिंदी कहानियां नियति के रूप में प्रस्तुत करती है। जिंदगी भर दुसरों के लिए मरते-खपते क्रियाशील माता-पिता बुढापे में अभिशप्त जिंदगी जीते है। हिंदी में कई कहानियां वृद्ध उपेक्षा को बया करती है। उषा प्रियंवदा-वापसी, चन्द्रकिशोर जायसवाल-मानबोध बाबू, मनिषा कुलश्रेष्ठ-प्रेतकामना, कृष्णा अग्निहोत्री- यह क्या जगह है दोस्तो, सुर्यबाला –सांझवती, सुषम बेदी-झाड, नाते, राधेश्याम, पेंशन, निर्मल वर्मा-जाले, बीच बहस, मुर्शफ आलम जोकी-बाप और बेटा, आभासिंह-ऐसे आएगा काम आदि कहानियाँ सैन्यास और वानप्रस्थ आश्रम की सच्चाई का खाका पेश करती है। दीर्घजीवन कब इच्छामरन का भाजक बनता है पता ही नही चलता। माता-पिता की फालतू जिंदगी की शुरुआत जायदाद हडपने के पश्चात आरंभ होती है।

सुर्यबाला की कहानी 'निर्वासित' बेटे और बहु के नीरस व्यवहार पर कटाक्ष है। रिटायर होते ही बेटा राजन माँ-बाबूजी को शहर बुला लेता है। बहु पुस्तैनी मकान किराये पर चढा देती है। बच्चों को माता-पिता की रोक-टोक बर्दास्त नही होती पिता बेटे के पास आकर निरर्थक, असंमजस और बेगाना महसुस करते है। बेटे ओर बहु के तंज और उपहास माता-पिता के लिए असह्य है। अम्मा ने राजन को बहु से कहते हुए सुना, "प्रेम-शेम कुछ नही, अकेली बोर फील करती होंगी, तो बाबूजी के पास जाकर बैठ जाती होंगी।" बहु की चुगली भी एक दिन सामने आ जाती है, "पिताजी तो मॉजी को बिल्कुल मॉडर्न बनाने पर तुल गये है। आज उन्हें शिमला पैक्ट के फायदे नुकसान समझा रहे थे। नाऊ शी इस परफैक्टली ऑल राईट, लेकिन पिताजी को चैन कहाँ।"[1] माता-पिता चिडियाघर के समान बेटे के घर में बंदी बनाए गए है। उखाड फेंके पेड-पौधों के समान वे मुरझा गये है। 'बागबान' फिल्म की तर्ज पर दोनों भाई माता-पिता का बँटवारा करके आया का कार्य करने हेतु उनका बारी-बारी से तबादला करते रहते है।' प्राचिन काल के बुजुर्ग वर्तमान में हासिये के वासी बने है।

वृद्धों को बुढापे में परिवार की अधिक जरुरत होती है। थके-हारे शरीर का बच्चे आधार बने ऐसी उम्मीद होती है। पर ईश्वर का प्रतिरूप माता-पिता आधुनिकता में आया, नौकरानी अथवा खानसामा की भूमिका में प्रत्यावलोकित हो गये है। मध्यवर्गीय मन:स्थिति में वृद्धों के लिए स्थान नही है। माता-पिता के प्रति सेवाभाव लुप्त होता जा रहा है। 01 अक्टूबर 'वैश्विक बुजुर्ग दिवस' के रूपमें संपूर्ण दुनिया में संपन्न होता है। सन् 1881 से प्रति वर्ष संयुक्त राष्ट्र इस दिवस को वृद्धों की सुरक्षा, स्वास्थ और आत्मसम्मान को समर्पित हेतु मनाता है। सरकार ने भी इस और कुछ कानूनी प्रावधान किये है। फिरभी वृद्धों की दशा सर्वविदित है। माता जिसकी सारी संपत्ति है। बुढापे में घर के साथ-साथ नौकरनुमा माली भी उसकी अवमानना करने की कोई कोर-कसर नही छोडता। 'बास फल' कहानी इसी का उत्कृष्ट उदाहरण है। मालकिन होकर भी बास फल की तरह नकारा और सपाट जिंदगी जिती है। एक बार अपना आपा खोकर वह माली को खीरी-खोटी सुनाती है, "हमसे जबान ना लडाना, कह दिया हमने-किसी के भरोसे नही पडे है हम। जमीन-जायदाद सब है हमारी?"[2] कहानी बुढापे में स्त्री की दयनिय दुर्दशा और नौकरों द्वारा अपमानजनीत रवैये का बखान करती है। बुढी स्त्री को परिवार में सम्मान नहीं इसलिए मालि भी अपनी हसरत पूरी करता है। पर उसे फटकार कर बुढी औरत अपने गुस्से और स्वाभिमान का परिचय देती है।

'गेंद' कहानी में चित्रा मुदगल वृद्धों की समष्या और उनकी यथार्थ दशा का वर्णन करती है। उम्र की आखरी दहजील पर माता-पिता पारिवारिक दया पर जीने को विवश है। कईयों ने वृद्धाश्रमों का रास्ता अपनाया है। परिवार की बेरुखी से लबा-लब विष का प्याला वृद्ध हर समय गटक लेते है। सिद्धेश्वरी बहन अपनी सारी संपत्ति स्वार्थी बेटों में बाँटकर वृद्धाश्रम चजी जाती है। एक मात्र मकान बेटों के नाम चढाकर वृद्धाश्रम में ही मर जाती है।

उसी शहर में बसा बेटा माँ की अंतिम क्रियाक्रम तक में नही आता। चंदीगड के वृद्धाश्रम में मृत चॅटर्जी के मृत्यु की खबर बेटे को दी जाने पर उसी शहर में रहने वाले बेटे ने वृद्धाश्रमवालों को कहा "अंतिम संस्कार तो वृद्धाश्रम में ही होगा। मैं पहुंच जाऊंगा।"... "मरु तो दाहसंस्कार चाहे जिससे करवा देना, नालायक बेटे को खबर न करना।"[3] पर माँ अतिंम समय में बेटे की शक्ल देखने के लिए तरसती हुई प्राण त्याग देती है। मृत्यु शरीर का थंडा पड जाना नही बल्कि वृद्धावस्था की अनुपयोगिता है। कहानी में अवकाश प्राप्त नवोदय विद्यालय के प्रधानाचार्य सचदेवजी का इकलौता बेटा विनय इंग्लड में रहता है और पिता यहां वृद्धाश्रम में।

वृद्धावस्था में व्यक्ति कमजोरी, चिंता, उदासी, निराशा आदि से ग्रसीत होता है। दो पीढ़ियों के बीच का फासला न पाटे जाना इस समस्या का मूल कारण है। अर्थतंत्र के हस्तान्तरण में वृद्धों की दशा दो कौडी की हो जाती है। घर से निकाले गये वृद्ध आश्रम में मजबूरी से रहते है। उनके झुर्रियों से लैस चेहरे और माथे पर उभरी लकीरें दर्द और निकम्मेपन को दर्शाती है। सूर्यनाथ सिंह की कहानी 'मंडन मिसिर की खुरपी' वृद्ध विमर्श की सशक्त पैरवी है। मंडन मिसिर ने अपनी तीनों बेटियों का विवाह उँचे खानदान से जमीन बेच-बेचकर किया। बेटा बेंगलोर में इंजीनिअरिंग करके वही नौकरी करने लगा। उसका विवाह भी रईस परिवार की शिक्षित-नौकरपेशा लडकी से हो गया। बहू ने शहर में महान खरीदने के लिए गाँव की जमीन बेच दी। बेटा इस के खिलाफ था पर उसकी एक न चली। बची-खुची जमीन के सहारे पिता अपनी खुरपी के सहारे जमीन में मेहनत करते जो कुछ मिलता खाते। पर बेटे के पास जाना पसंद नही करते। माँ की मृत्यु तो बेटे के विवाह के पूर्व ही हो गई थी। अब मंडन मिसिर मोह-माया को त्यागकर अयोध्या ईश्वर दर्शन के लिए चल देते है। बहु तो सारी जमीन बचने की साजिश रचती है, "भगवान न करें, बीच में कुछ हो-हवा गया तो घर बैंक का। बच्चे सडक पर दिन गुजारेंगे। इसलिए मैं कहती हूँ, जो करना है, एक मुश्त करो। बाद की झंझट क्यों रखनी"[4] गाँव की बेइज्जती से बचता बुढा मंडन मिसिर दाढी बढाये, त्रिपुंड लगाये अयोध्या के मन्दिर में मुक्ति की आस लगाये हुए है।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के बहाने लेखिका ने वृद्धावस्था के अकेलेपन को वाणी दी है। गजाधर बाबू 35 वर्ष रेल की नौकरी करने के पश्चात वापस आकर अपने परिजनों के साथ बाकी बची-खुची जिंदगी खुशी से गुजारना चाहते है। परिवार की निर्ममता और उपेक्षित व्यवहार के चलते वे दु:खी है। रेल की नौकरी करते समय हमेशा घर की आस रहती थी। गजाधर बाबू को अब घर ने ही पीडा, तनाव और विवशता बक्शी है। पारिवारिक खुशी के लिए मरते-खपते गजाघर की परिवार में केवल पैसे कमाने वाली मशीन की हैसियत है। दो-पिढीयों के बीच का संघर्ष और जीवन के प्रति अपने-अपने दृष्टिकोन से दु:खी होकर वे फिरसे घर से वापर नौकरी पर चले जाते है, "मुझे सेठ रामजी मल की चीनी मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएँ, वही अच्छा है। कुछ रुक कर, जैसे बुझी हुई आग में चिनगारी चमक उठे, उन्होंने धीमे स्वर में कहा, मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद अवकाश पाकर परिवार के साथ रकूँगा। खैर...।"[5] अपना खर्च निकालने के लिए गजाधर बानू को रियारमेंट के पश्चात फिरसे नौकरी करनी पडती है।

अपने सपनों की कुर्बानी देकर बुजुर्ग बच्चों का निर्माण करते है। स्वार्थी और बेइमान परिवार उन्हें ही दर-दर की ठाकरें खाने पर मजबूर कर देता है। 'बोया पेड बबूल का' कहानी में तुलसी देवी ने दकियानुसी बेटे और बहु के व्यवहार का वर्णन किया है। कहानी की नायिका मॉ निकिता ने पति मृत्यु के पश्चात बडे बेटे के नाम पति की सारी जमा पूंजी चढा दी मजबूरी में। अवकाश प्राप्ति के पश्चात मिले रूपयों से जो मकान खरीदा गया था। अब उस मकान से माँ और उसके छोटे बेटे प्रकाश का हकालने की कवायतें शुरु हो गई है। माँ ने छोटे-बेटे प्रकाश का हक मारकर बडे बेटे को सब कुछ मजबूरी में दिया था। पेंशन भी बडे-बेटे के द्वारा हडप ली जाती है। एक दिन बहु

घोषणा कर देती है, "निकिता की बहु ने आज निकिता को साफ साफ कह दिया देखिए, या तो आप दोनों गाँव चले जाइये या फिर वृद्धाश्रम चले जाइये, अब हमारे बच्चे बडे हो रहे है और दो कमरों का यह...।"[6] बहु की भविष्यवाणी ने निकिता के कानों में उबलता सीसा डाला हों ऐसा निकिता को लगा। निकिता अब स्वयं को थका-हारा शाखा तुटे ठूठ वृक्ष के समान समझने लगी।

'गृहप्रवेश' कहानी में शालिनी सिंह ने अवकाश प्राप्त इंजीनियर पिता के वृद्धाश्रम की पीडा और अकेलेपन को मुखरता दी है। दोनों बेटे अपने परिवार के साथ युरोप यात्रा पर निकलते है। दो माह तक माता-पिता को वृद्धाश्रम में रखते है। पिता को वृद्धाश्रम जेल सा लगता है। उन्हें यह आशंका होती है कि कही हमेशा के लिए ही यहां न रहना पडे। वृद्धाश्रम में पत्नी के साथ होते हुए भी पिता गहन सन्नाटा और पर कटे पंक्षी के समान महसूस करते है। 'सदर दरवाजा' कहानी की नायिका ए.ई.सी.एल के अधिकारी की पत्नी है। बेटियां अपने पतियों के साथ अमरिका वासी बनी है। बेटा बडा मालिक बनने के कारण व्यस्त है। बहरहाल माँ को वृद्धाश्रम का सहारा लेना पडता है। माँ अपनी वेदना रागिरी समाज सेवी मीरा वशिष्ट से कहती है, "तुम्हारे अंकल जब तक रहे, हम दोनों साथ-साथ रहे, 5 वर्ष हो गया उन्हें साथ छोडें जीवन का यह रंग देखे बिना यह जिंदगी अधुरी रहती इसलिए ईश्वर ने यह दिन दिखाया है। अब अकेले रहना मुस्किल हो गया है। घर बेच पैसा जमा कर दिया जो ब्याज मिलेगा खर्च करुंगी और जो मुलधन है बाद में आश्रम के काम आएगा कम से कम यहां अपने जैसों के बीच में तो रहुंगी।"[7] वृद्धा की वेदना सबकी आंखे नम करती है।

संक्षेप में :-

वृद्ध विमर्श में वृद्धों की मनोदशा के प्रति संवेदना महत्वपूर्ण है। वृद्धो को बोझ समझने वाली प्रवृत्ति पर यहां व्यंग्य है। वृद्धों की जमीनी समस्या क्या है उसके निष्कासन का प्रयास इस विमर्श का उद्देश है। वृद्ध अपने बच्चों और बहुओं के चालाकी और साजिशों को समझकर अपनी संपत्ति का बटवारा न करें। वृद्ध इच्छामरण की अपेक्षा उत्साह और उर्जा से अपना जीवन बसर करें यह इस विमर्श का लक्ष्य है। वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या मानवता, सामाजिक मूल्यों पर सवालियाँ निशान लगाता है। परिवार के बहकावे में आकर अपनी जमा-पूंजी लटाना मुर्खता है। अंतिम सांस तक घर का मालिक और मुखिया बनकर रहनेवाले बुजुर्ग क्या वृद्धाश्रम का रास्ता चुनेंगे? सरकार ने वृद्धों की बेहतरी के लिए कदम उठाना चाहिए। जो बच्चे अपने माता-पिता को बेघर करते है उन्हें समझाना चाहिए अथवा कानूनी खाका दिखाना अनिवार्य है।

संदर्भ :-

1. डॉ. सिंह अनिल (संपा) कथा संचयन लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2019, पृ. 105, 109
2. डॉ. उज्जन कदम, विद्यावार्ता (आंतर विद्याशाखीय बहुभाषिक शोध पत्रिका) हर्षवर्धन पब्लिकेशन प्रा.लि. लिंबगणेश, 2023, पृ. 156
3. चित्रा मुदगल, गेंद (लपेटें)
4. https://www.degloorcollege.in पृ.112
5. hindisamay.com
6. hindi.pratilipi.com
7) पूर्ववत, विद्यावार्ता, पृ. 157

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

असंभव कहानी संग्रह : नारी के अंतर्मन की व्यथा

प्रोफ़ेसर डॉ.अर्चना दिनेश परदेशी

नवगण शिक्षण संस्था कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय परली वैजनाथ, जिला बीड

सारांश

'असंभव ' कहानी संग्रह की तीन कहानियां - निशा , नीलू और जीवन एक संघर्ष अत्यंत सरल और प्रभावशाली कहानियां है। इन कहानियों में व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष , विद्रोह तथा समर्पण भी दिखाई देता है । चारित्रिक शुचिता केवल स्त्री की नापी जाती है पुरुष की नहीं ऐसा क्यों ? इस प्रकार इन तीनों कहानियों में स्त्री सशक्तिकरण की अभिव्यक्ति मिलती है । इन तीनों कहानियों में नारी शोषण सुक्ष्म रूप से उजागर हुआ है। स्त्री को अपनी यथा स्थिति से उभरना जरूरी है , तभी उसका अस्तित्व और अस्मिता बच पाएंगी । वह अपनी स्थिति से बाहर तब आएंगी , जब उसमें आत्मविश्वास , साहस , अटूट धैर्य तथा भीतरी आत्म निष्ठ हो ।

कुशल साहित्यकार की विशेषता ही है कि वह समाज में घटित घटना का विश्लेषण कर लेखन के मध्यम से अपने विचारों को अंकित करें। पितृसंतात्मक समाज व्यवस्था ने हमेशा नारी को उनके अधिकारों से वंचित रखा है परिणामतः नारी का स्थान समाज में दुय्यम होता चला गया। मानव सभ्यता के प्रारंभिक दौर में परिवार का केंद्र स्त्री थी वह अपने परिवार की मुखिया थी।

भारत में नारी जीवन या नारी चेतना का इतिहास काफी उतार-चढ़ावों से युक्त था। प्राचीन काल में स्त्री पुरुष की स्थिति काफी हद तक समान थी । स्त्रियों के पास अपने विकास का पूर्ण अवसर था । स्त्री शिक्षा का प्रसार था। वैदिक काल में स्त्री की सामाजिक स्थिति पर श्री पी एन चोपड़ा लिखते हैं -"वैदिक समाज में स्त्रियों को मुख्य धारा से दूर रखा जाता था इसका कोई प्रमाण नहीं है वे वेदों के अध्ययन करती थी और पुरुषों के साथ शास्त्रार्थ भी करती थी। "१ वैदिक युग की तुलना में मध्यकाल में नारी की स्थिति में काफी गिरावट आई थी। मध्यकाल के प्रारंभ में भारत पर यूनानियों और शकों का आक्रमण हुआ। इसके इस समय तक जौहर प्रथा , सती प्रथा , शैशव विवाह, विधवा विवाह निषेध आदि कुरीतियों समाज में प्रचलित हो चुकी थी , जो स्त्री जीवन को बदतर बना रही थी।

जैसे-जैसे युग बदलता गया वैसे-वैसे साहित्य और अधिक विस्तृत एवं व्यापक होता गया। अनेक नवीन संकल्पनाओं का समावेश साहित्य में होने लगा जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श , आदिवासी विमर्श आदि इन सभी धाराओं ने पीढ़ियों से चली आ रही गलत रुढ़ी और परंपराओं का विरोध किया । स्त्री वादी साहित्य पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि यहां पर लेखिकाएं नारी की व्यथाओं का खुलकर चित्रण कर रही है । साथ ही सदियों से चली आ रही गलत रुढ़ी और परंपराओं का विरोध कर रही है।

लेखिका ने अपने साहित्य में नारी को केंद्र में रखकर उनकी समस्याओं का प्रभावी रूप से चित्रण किया है तथा साथ ही वह अपने साहित्य में संघर्ष करती हुई नारी को प्रस्तुत करती है ।इन स्त्रियों का सामाजिक, भावनिक और आर्थिक संघर्ष लेखिका ने अपने कहानी संग्रह "असंभव " में प्रस्तुत किया है।

बात उन दिनों की है जब हम सभी महिलाएं लेडिस हॉस्टल में या कार्यक्रम समाप्ति के बाद आपस में मिलती थी और कभी कोई टॉपिक निकल पड़ता था तो फिर महिलाओं की व्यथा पर बातचीत होती थी। यह व्यथा

इतनी मर्म स्पर्शी होती थी कि हृदय पर अंकित हो जाती थी । उन चरित्रों को नाम बदलकर कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

कहानी संग्रह की प्रथम कहानी 'निशा' है। कहानी का नाम ही नायिका के नाम पर रखा है। कहानी में निशा एक साधारण स्त्री है। घर में पति के अलावा एक बेटा और सास है । निशा की ऊपरी चमक दमक से वह एक साधारण स्त्री लगती है। लेकिन उसके संघर्ष एवं मानसिक व्यथा को देखकर उसकी दशा का अंदाजा लगाया जा सकता है ।कहानी में पुरुषीय अहंकार हर जगह पर साफ-साफ झलकता है। इस अहंकार के चलते उसका बेटा भी उस पर व्यंग करता है निशा का बेटा कहता है ," देखो मम्मी, वह आंटी कितने नोट कमाती है , तुम कमा सकती हो क्या ?" बेटे द्वारा किए गए ऐसे व्यंग्य से निशा छटपटा कर रह जाती है क्योंकि वह तो अशिक्षित है। आज समाज में अनेक कुप्रथाओं का प्रचलन दिखाई देता है। इन कुप्रथाओं में सबसे भयावह प्रथा है अशिक्षा एवं दहेज प्रथा। कहानी में लेखिका ने इन कुप्रथाओं को अत्यंत कम शब्दों में उजागर किया है। निशा की सास कहती है ,"तो यह बात है वह अनपढ़ है खूबसूरत नहीं , साथ में लक्ष्मी नहीं लाई , अब भी नहीं ला रही ।" निशा के इस शोषण में उसके पति द्वारा भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है , उसकी उपेक्षा वह लगातार करता रहता है , वह विद्रोह भी नहीं कर सकती वह कहती है," यह तो उसके पिछले जन्म के पापों का फल है ,जो इन पत्थर दिलों के बीच वह आ पड़ी । ऐसा कह कर वह चुपचाप इस उत्पीड़न को सहती रहती है। वास्तव में , उसने अपनी परिस्थितियों को ईश्वर के भरोसे छोड़ दिया क्योंकि वह जानती है कि वह अकेली है।

नीलू कहानी की नायिका स्वयं नीलू एक गोल्ड मेडलिस्ट छात्रा रही है। किंतु विवाह के पश्चात वह ऐसे परिवार में आ गई है जहां उसके आत्म सम्मान को बार-बार ठेस लगती है। यदि वह किसी से हंस कर बात कर लेती है तो उसका पति उसे पर संदेह करता है। उस पर बदचलनी का आरोप करता है ।स्थिति इतनी बिगड़ जाती है कि वह अपने हाथ से कच्ची पक्की रोटी खुद बनाता है और खाता है। जिस दिन खाना नहीं बनाता उस दिन फल फ्रूट खा लेता है। नीलू कहती है,"अब ऐसा लगने लगा है कि अपने आदर्शों को तोड़ना होगा तब शायद इस मानसिक घुटन से छुटकारा मिलेगा, लेकिन ऐसा बनने के लिए मन धिक्कारता है वीना।"। वास्तव में , घर परिवार तभी होता है जब परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे के प्रति समर्पित रहे , एक दूसरे की भावनाओं को समझ कर व्यवहार करें , तो निसंदेह घर में खुशियों का वातावरण होगा।

वास्तव में , स्त्री पुरुष संबंधों की महत्वपूर्ण कड़ी पति-पत्नी का पवित्र रिश्ता है जो विश्व व्यापक , कानूनी और सामाजिक तौर पर स्वीकृत है । आधुनिक काल में नारी की प्रगति एक कदम आगे और दो कदम पीछे हो रही है। शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय परिवारों में नारी की स्थिति अलग रहती है वहां नारी को शिक्षा दीक्षा दी जाती है । इन परिवारों की लड़कियां अपनी इच्छाओं को अपने विरोध को प्रकट कर सकती है ,

परंतु निम्न मध्य वर्ग की स्थिति बद से बद्तर हो रही है। नारी आधुनिक होकर भी कठपुतली है । "जीवन एक संघर्ष" कहानी में अमीषा एक ऐसी किरदार है, जो नितिन के बार-बार संदेह करने पर अंदर से टूट गई है। नितिन छोटी-छोटी बातों को लेकर अमीषा पर संदेह किया करता था और उससे झगड़ता था , उसे तड़पाता था वह अत्यंत विक्षिप्त हो गई थी। उससे वह हमेशा कड़वी बातें करता रहता था। इससे अमीषा अंदर ही अंदर घुटती रहती थी। उसके व्यंग के कारण अमीषा ने अपने पड़ोसियों से भी नाता तोड़ दिया । वह कभी-कभी सो नहीं पाती थी , हर बार आतंकित रहती थी कि कहीं उस पर कोई गंदी तोहमत ना लगाई जाए वह सभी से कट कर रहती थी।

यह तो सर्व विदित है कि पति से ज्यादा बुद्धिमान स्त्री को पति बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह पुरुष प्रधान संस्कृति का प्रतीक होने के कारण वह चाहता है कि उसकी पत्नी उसके कंधे से कंधा मिलाकर चले, बल्कि दो कदम पीछे ही चले , इसी विरोध की वजह से झगड़ा होते हैं। मन ही मन अमीषा के सभी गुणों पर उसे नाज है लेकिन वह उन्हें अपने तक ही सीमित रखना चाहता है। पूरे समर्पण के बावजूद इस प्रकार संदेह किए जाने से अमीषा अंदर ही अंदर टूट जाती है । अमीषा के दिल में दोहरा संघर्ष चलता है क्योंकि यह बातें ना तो वह सह पाती है ना किसी को बता सकती है।

निष्कर्ष : कहा जा सकता है कि हर हालात में स्त्री को ही परिस्थितियों के आगे झुकना पड़ता है । इस बात को इन कहानियों में दर्शाया गया है। सुशिक्षित होने के बावजूद भी पति के अधीनस्थ होने वाली स्त्री को दर्शाया गया है। हर हालत में अपना प्रभुत्व जमाने की वृत्ति के कारण कभी-कभी पत्नी की उपेक्षा हो जाती है यह बात पुरुष भूल ही जाते हैं। अपनी पत्नी हमेशा पति के हां में हां मिलाए और पूरी तरह उस पर निर्भर हो , यह चाहने वाला पुरुष जब यह देखता है कि नारी एक अलग व्यक्तित्व बना रही है तो उसे नीचा दिखाने के लिए उसका किसी भी तरह से वह अपमान करता है। हद तो तब पार हो जाती है जब वह स्वयं को चरित्रवान दिखाने के लिए पत्नी को ही चरित्रहीन बता देता है ताकि लोगों का ध्यान उसकी ओर से हटकर पत्नी की ओर हो जाए।

संदर्भ:

1. इदनमम - मैत्रेई पुष्पा
2. "असंभव " कहानी संग्रह : पृष्ठ क्रमांक 2
3. "असंभव" कहानी संग्रह पृष्ठ क्रमांक 2
4. "असंभव" कहानी संग्रह:पृष्ठ क्रमांक -2
5. "असंभव "कहानी संग्रह पृष्ठ क्रमांक 11

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी आदिवासी साहित्य में अस्तित्व और अस्मिता का स्वर

डॉ. प्रकाश बन्सीधर खुळे

वसंत महाविद्यालय, केज, जि. बीड

आदिवासी जीवन पर केंद्रीत हिंदी उपन्यास अपनी विकास-यात्रा के क्रम में आदिवासी जीवन को रेखांकित करते हुये सार्थक साहित्य के रूप में उभरकर हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। 'सूरज किरण की छॉव' से गायब होता देश तक देखें तो तमाम उपन्यास हैं, जिनमें आदिवासी समाज की संस्कृती और उनके लोक-जीवन की खूबियों को प्रत्येक स्तर पर समेटने की चे हुई हैं। आदिवासी समाज, जिसे हम चैथी दुनिया में प्रायः एक जैसा ही है। अंतः भले ही हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा ने काफी दूरी तय की है, उसके बरअक्स आदिवासी हिंदी उपन्यास का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। इसे गंभीरता से तो काफी बाद में लिया जाने लगा यह हिंदी उपन्यास का भविश्य गढ़ता है।

भारत की कुल आबादी का मात्र ४ प्रतिषत ही आदिवासी हैं। आज के उपन्यास आदिवासी जीवन-चर्या को ईमानदारी से प्रस्तुत करने की चेश्टा कर रहे हैं। वे आदिवासी जीवन का जीवंत दस्तावेज पेष कर रहे हैं। आज के रचनाकार आदिवासी समाज के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक शण के कुचक्रों को समकालीन हिंदी उपन्यासों में मात्र उठा ही नही रहे बल्कि वे उनके अस्तित्व के प्रश को भी जोरदार आवाज दे रहे हैं। कहना न होगा कि इससे उनही त्रासदियों को मुखरता से प्रस्तुत करने का वे उपक्रम कर रहे हैं। इतना ही नहीं कुछ गैर-आदिवासी समाज के लोग जब आदिवासी समाज के रीति-रिवाजों, धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक जीवन में अवांछित हस्तक्षेप करते हैं तो उनके प्रति इन उपन्यासों का रवैया भी आलोचनात्मक बना रहता है। फिर चाहे वह 'अल्मा कबूतरी' हो, चाहे वह 'पठार पर कोहरा या कोई अन्य उपन्यास, ये सभी उपन्यास इतना सजीव चित्रण प्रस्तुत करते है। दूसरी ओर जहॉ तक प्रेम की बात हैं वह योगेंद्रनाथ सिन्हा के 'वन के मन में' उपन्यास में रेखांकित होता हुआ नजर आता है। कुछ ऐसा ही हम 'छैला संदु' उपन्यास में भी हम देख पाते हैं।

आदिवासी जीवन पर केंद्रित कुछ उपन्यास इतिहास में हुई राजनीतिक घटनाओं की बानगी भी प्रस्तुत करते हैं, जिनमें विनोद कुमार के 'समर शेष है' उपन्यास का नाम लिया जा सकता है। यह उपन्यास झारखण्ड राज्य में आदिवासी समाज पर हो रहे महाजनी शोषण के विरूद्ध िशबू के द्वारा चलाए गए जन आंदोलन को केंद्र में रखकर लिखा गया है, जो क्रांतिकारी स्वर को बुलंद करता हैं।

आदिवासी जीवन से संबंधित हिंदी उपन्यासों की विकास यात्रा में हम यह पाते हैं कि आदिवासी समाज का जो स्वर हम समकालीन में हिंदी उपन्यासों में दिखाई देता है, वह आदिवासी जीवन केंद्रित षुरूआती उपन्यासों में इतना मुखर नहीं हैं। समकालीन हिंदी उपन्यास में आदिवासी अस्मिता का संदर्भ बहुत ही वनज के साथ मौजूद है। इन उपन्यासों में न सिर्फ समाज की मुख्यधारा से बेदखल आदिवासियों के जीवन और उनकी संस्कृति पर हो रहे हमले के सवाल मौजूद है, बल्कि उनके अतीत, इतिहास और प्रतिरोध के पक्ष को भी भाशा की संरचनात्मक अभिव्यक्तिपरक जमीन दी गई है।

विकास और रोजगार देने के नाम पर फैक्टरी खोलना, आदिवासियों को उनके जल-जंगल-जमीन से वंचित कर देता है। ज बवे अपने संसाधनों और अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्श करते हैं, तो उन्हें जेल में ठूंस दिया जाता है। उदाहरण के लिए संजीव के 'धार' उपन्यास कि मैंना की नियति को देख सकते हैं। कहना न होगा

कि क्यों आदिवासी साहित्य को जरूरत का साहित्य भी कहा जा सकता है। इसमें अस्मिता, अधिकार और आत्मसम्मान का संघर्श विद्यमान है। समकालीन हिंदी उपन्यासकार आदिवासियों की जरूरतों को पहचानता है और उनके संघर्श की लड़ाई में शामिल होकर उन्हें जागरूक भी बनाता है। इसी जागरूकता तथा सामूहिकता से कामयाबी की रौशनी निकलकर आती हैं और भविश्य के प्रति एक उम्मीद जगती है। उदाहरणार्थ, आदिवासी अस्मिता के अंग जल, जंगल, जमीन के सवाल को 'आमचों बस्तर' उपन्यास में बेहद रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है, साथ ही हलबा जनजाति कर लोककथा भी यहॉ उसी द्वत से पेश किया गया है।

रणेंद्र के 'ग्लोबल गॉव के देवता' उपन्यास में अंतरराश्ट्रीय कम्पनियों/मल्टीनेषनल के अत्याचार व षोशण को दिखाया गया है। इन कम्पनियों के त्याज्य पदार्थों से उपजी घातक बीमारियों को आदिवासी अंधविष्वास के कारण कर मूड़ीकटवा से सिर कटवा लेता है। असुर समाज की सांस्कृतिक एवं भौतिक सम्पदा को ताकतवर लोगों के द्वारा लूटे जाने पर एक पूरा का पूरा देष ही गायब होता जा रहा है। गौरतलब है कि आदिवासी समाज में भी एक पूंजीपति या संसाधनों से संपन्न वर्ग है, जो अन्य आदिवासी समाज के अधिकारों का समझौंता करता है, उपन्यासकार उन्हें धन लोलुप आदिवासी मानते है। यह सब घटनाएं सिर्फ पूर्वी आदिवासी जनजातियों के साथ ही नहीं पष्चिम की आदिवासी जनजातियों के साथ भी घटित हुई है। मसलन, राजस्थान के आदिवासी समाज के विद्रोह पर केंद्रित उपन्यास 'धूणी तपे तीर' उपन्यास जो हिरराम मीणा ने लिखा है, उह उपन्यास अपने स्वरूप् में उपनिवेषी दौर के सामंती एवं अंग्रेजी षाशकों की मिली-भगत का ऐतिहासिक दस्तावेज पेष तो करता ही है, साथ ही साथ अैपनिवेषिककाल से पूर्व की आदिवासी स्वतंत्रता को भी रेखांकित करता हैं। इसके अलावा यह उपन्यास जलियनवाला बाग हत्याकांड का भी एक प्रसंग रचता है, जिसमें आदिवासीयों को ढेर होते दिखाया गया है। यह दुखद है कि इतनी बड़ी कुर्बानी देने के बावजूद इतिहास से आदिवासी समाज का यह त्याग गायब कर दिया गया। इससे पता चलता है कि जो इतिहास आजादी का हमसे रूबरू कराया गया वह कहीं न कहीं या तो पूर्वाग्रह से ग्रस्त है या अधूरा है। उसका 6सआल्टर्न' पक्ष अब भी अपने आलोकित होने की राह देख रहा है। कुल मिलाकर यह कहना उचित प्रतीत होता है कि आदिवासीयों की अस्मिता जीवन को टुच्चे तौर पर सुखी-समृद्ध बनाने में नहीं है, बल्कि उनका तो ये मानना है कि जरूरत जितनी ज्यादा होगी, उतने ज्यादा भौतिक संसाधनों से हम घिरे हुये रहेंगे और उतना ही हम अपने पर्यावरण से विष्वासघात करेंगे।

आदिवासी समाज को समकालीन हिंदी उपन्यासों में बड़ी ही संजीदगी से समझने की कोषिष की गई हैं। ये उपन्यास न केवल आदिवासी समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक पक्ष को ही मुद्दों के रूप में उठाते हैं, बल्कि उसके आर्थिक षोशण को भी अपना विशय बनाते हैं। इसके साथ ही उनकी मान्यताओं पर विमर्ष के लिए नई जमीन भी तैयार करते हैं। इसलिए एक बात तो तय है कि आदिवासी समाज की त्रासदी को दुनिया के सामने समकालीन हिंदी उपन्यास प्रस्तुत ही नहीं वरन् बहुत बारीक से उन कारणों का विवेचन भी करते हैं, जो इस त्रासदी का कारक हैं। इन उपन्यासों में आदिवासीयों की कुटुम्ब व्यवस्था, आध्यात्मिक नीति, रीति-रिवाज, विवाह पद्धती, रहन-सहन, अंधविष्वास एवं भाशा-बोली आदि का सम्यक चित्रांकन भी है। मसलन, घोटुल की परंपरा जहां दी जाने वाली यौन-षिक्षा, कहानी, नाच-गाने के माध्यमसे लड़के-लड़कियों में घर-गृहस्थी एवं जीवन की सम्पूर्ण अन्तःषक्तियों का विकास किया जाता है।

अततः हम यह कह सकते हैं कि समकालीन हिंदी उपन्यास समाज का ऐतिहासिक या भौगोलिक आख्यान भर नहीं हैं, बल्कि आदिवासी अतीत और वर्तमान का जीवंत दस्तावेज भी है। वह उनके सहज जीवन जीने तथा प्रकृति प्रेम को आधुनिकता के नाम पर पिछड़नेपन का नाम देने की मुखालफत करता हैं। भले ह षिश्ट समाज ने

विकास की अपनी अवधारणा में उन्हें जंगली घोशित कर दिया हैं, परंतु जंगल अपनी प्रकृति में आदिम होता है, धूर्त बिलकुल नहीं। वह किसी का हक छीनता नहीं। संतुलित तरीके अपने हिस्से को ग्रहण करता हैं। कम से कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि आदिवासी समाज प्रकृति से अपने सामंजस्य का सूत्र गढ़ता है। वह उसके साथ एकरस हो जाता है। अपना अस्तित्व वह प्रकृति से जोड़कर सार्थक होते देखता हैं।

भूमंडलीकरण के बाद आदिवासियों का आर्थिक जीवन काफी प्रभावित हुआ है और इसका कारण भी सीधा सा है कि उनके जीवन का आर्थिक आधार बहुत हद तक जंगलों पर ही टिका हुआ है। इसलिये इनके यहाँ आर्थिक व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का ही विस्तार हैं। इस व्यवस्था के विस्तार में षिक्षा, जनसंचार, तकनीक सरकार तथा संविधान आदि की सक्रिय भूमिका है, जिसका जिक्र समकालीन हिंदी उपन्यासों में मिलता है। इसकें साथ-साथ इन उपन्यासों में हम खेती, खदानों के जीवन, कर्ज, नौकरी, पैरोहित्य, वनोपज इत्यादि क्रिया व्यापारों को भी इनके आर्थिक जीवन में हम देख पाते हैं। ये वक चीज़ें हैं, जिनसे उनका भरण-पोशण होता है। कई बार अर्थाभव में आदिवासी स्त्रियों को वेश्यावृष्ति जैसे कुकर्म भी करने पड़ते है। मतलब, संजीव के उपन्यास 'धार' एवं विनोद कुमार के उपन्यास 'समर षेश है' में इस पहलू पर प्रकाष डाला गया हैं।

दूसरी ओर आदिवासी समाज की धार्मिक मान्यताओं के स्वरूप का चित्रण भी समकालीन हिंदी उपन्यास में बखूबी हुआ है। धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र भारत के संविधान की खूबसुरती है। लेकिन प्रलोभर देकर धर्म परिवर्तन करना धार्मिक कठमुल्लेपन की निषानी है। प्रयः गरीबों को लालच देकर उनकी 'घर वापसी' करवायी जाती है, जो कहीं न कहीं आदिवासी अस्मिता को चोटिल कर उन्हें विस्थापन के लिए मजबूर ही करता हैं। ये जीचें उनकी पहचान को नश्ट करने का जरिया हैं। आदिवासी समाज प्रकृति पूजा में ही विष्वास करता हैं तथ वह उपासन एवं आराधना भी पहाड़ों नदियों, वृक्षों एवं सूर्य की ही करते हैं। ये चीजें ही इनके लिए धर्म हैं। मूलतः आदिवासी सरना धर्म के मानते हैं, जो प्रकृति एवं उनके पूर्वजों से मिलकर बनता है। इसलिए ही रणेंद्र के उपन्यास 'ग्लाबल गॉव के देवता' में आदिवासियों को अपने पितर पूर्वज को याद करते दियाया गया है। इन सब बातों के बीच कभी-कभी दैवीय प्रकोप से बचने के लिए आदिवासी समाजों में जादूटोना जैसी चीजें भी देखने को मिलती हैं, जो सिर्फ अषिक्षा और अंधविष्वास का परिणाम न होकर ताकतवरों के द्वारा भूमि हड़प नीति को भी सामने लाता है। मसलन 'धार' उपन्यास का वह ओझाा जो पैसा न देने पर गॉव से निकलवाने की बात करता है। इसके अलावा हम मामलें में हम बलि-प्रथा को भी खूब फलता-फूलता देख सकते हैं। इसका उदाहरण हम रणेंद्र के 'ग्लोबल गांव के देवता' में हम देख पाते हैं, जहाँ यह आदिवासियों द्वारा यह माना जाता हैं कि धान को आदमी के खून से सानकर बिछड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है। इसके अलावा मुड़ीकटवा प्रसंग भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। कुछ इसी तरह आमच्यो बस्तर में भी बलि प्रथा का उल्लेख मिलता है।

विवाह से लेकर सरहुल उत्सव तक लोकगीत का गायन होता है। यहाँ तक कि छोटे-छोटे पर्व जैसे धान की रोपाई, कटाई अथवा खेत में काम करने के दौरान भी। इसके अलावा इनके यहाँ एक रिवाज और भी है, जिसे गोदना कहतें हैं। आदिवासी इसे अपना आभूशण स्वीकार करते हैं। ऐसा भी प्रायः माना जाता है कि गोदना से षरिर की कमजोरी दूरी होती है और यह गोदना से ही नारी की परीक्षा होती है। दरअसल षुरू से अंत तक आदिवासी समाज की जीवन षैली बिल्कुल भिन्न नजर आती है। यह तथाकथित सभ्य समाज का वाम पक्ष है। इस समाज में विविध प्रजातियों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर बहुत सारी समानताएं होने के बावजूद भी कुछ भिन्नताए भी देखने को मिलती हैं। यथा, इनके यहाँ कहीं मातृ-सत्तात्मक समाज हैं, तो कहीं पितृ-सत्तात्मक समाज हैं।

प्रकृति से अनुकूलित होते होते कभी कभी ताकतवरों के प्रभाव के कारण आदिवासियों को धर्म परिवर्तन करने की नौबत भी तक आ जाती है। बहुत बार वे इस स्थिती से बचने के लिए विस्थापन का रास्ता चुनते हैं। इतने संघर्शों के बावजूद आदिवासी समाज अपने संस्कारों एवं संस्कृतियों की पहचान बनाए रखने के लिए कटिबद्ध है। परंतु पूंजीवादी लोकतंत्र की इस व्यवस्था में आदिवासियों का जीवन जीना दूभर हो गया है।

आज आदिवासीयों के जब उनके जल, जंगल, जमीन से वंचित किया जा रहा हैं तो उनमें एक असंतोश का भाव पैदा हो रहा हैं, जो कई बार आंदोलन या विद्रोह में परिणित हो जाता है। जब ये लोग विद्रोह या आंदोलन करते है, तो उन्हें नक्सली कहकर उन पर गोलिया तक चलवाती हैै। ऐसे में आदिवासी विद्रोह के नायकों की महती भूमिका को नजर अंदाज करना उचित नहीं है। इनमें से बहुत से नायक तो आदिवासी समाजों से उठकर ही आते हैं, तो कुछ गैर-आदिवासी भी है जो इनके अधिकारों के लिए लड़े हैं। आज मुख्यधारा की राजनिती में आदिवासी प्रतिनिधियों की संख्या में काफी इजाफा हुआ है, लेकीन स्वार्थ सिद्धि वाली राजनीति के कारण आदिवासी अधिकारों के लिए ना तो वे रुचि लेते हैं और नहीं संसद या विधानसभाओं में उनकी वकालत करते हुए दिखाई देते हैं। समकालीन राजनीति ने उन्हें हर स्तर पर मायूस ही किया हैं।

आदिवासी जीवन पर केंद्रित समकालीन हिंदी उपन्यासों में जो एक बात स्पश्ट हैं, वह यह है कि आदिवासीयों की आबादी का बड़ा हिस्सा षोशित एवं प्रताड़ित हैं। ये उपन्यास आदिवासी समाज के पर्यावरण से एकाकार होने को तो दिखाते ही हैं, हमारे देष के सामासिक एवं समावेषी संस्कृति का भी मुहावरा गढ़ते हैं, जो आदिवासी समाज का अपना वैषिश्ट्य है। इन उपन्यासों ने आदिवासी प्रतिरोध के स्वर और उस स्वर की भवितव्यता का समीकरण सही तरह से चिन्हित किया हैं। समकालीन हिंदी उपन्यास का आदिवासी पक्ष आदिवासी जीवन तथा संस्कृति के संरक्षण के बहाने हमारी प्रकृति-पर्यावरण और हमारे मनुश्य होने के संवेदनात्मक ज्ञान की सजग पहरेदारी करता हैं। इस निश्ठावान चेश्टा से भविश्य के ऐसे भारत की कल्पना करना अनुचित न होगा, जहॉ एक भारत में एक ही भारत होगा और जिसकी बुनियाद समानता और न्यायप्रियता पर टिकी होगी।

संदर्भः

1. समर शेष है - विनोद कुार - प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2005
2. आमचो बस्तर - राजीव रंजन प्रसाद - यश पब्लिकेषन, दिल्ली, 2013
3. धूणी तपे तीर - हरिराम मीणा - साहित्य उपक्रम, राजस्थान, 2014
4. छैला संदु - मंगल सिंह मुण्डा - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2004
5. ग्लोबल गॉव के देवता - रणेन्द्र - भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2014
6. धार - संजीव - राधाकृश्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
7. जंगल के फुल - राजेंन्द्र अवस्थी - राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1996
8. खुले गगन के लाल सितारे - मधु काॅकरिया - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
9. जंगल के आसपास - राकेश वत्स - राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, 2006
10. पिंजरे में पन्ना - मणि मधुकर - राधाकृश्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में मजदूर तथा कृषक जीवन

श्री. तांबुरे जयचंद अनंतराव
मु. कोळपिंपरी पो. अंजनडोह, ता. धारूर जि. बीड 431124

जब से इस धरती पर जीवन की उत्पत्ति हुई है तबसे किसान खेती करके धान्य उत्पादित करते है। मतलब किसान ही सारी दुनिया के लिए भोजन के लिए खाद्यान्न, फल, सब्जियाँ और चारे का उत्पादन करते आ रहें हैं। इन धरतीपुत्र किसानों को अन्नदाता भी कहा जाता हैं। आज हमारे देष में सबसे ज्यादा दुर्दषा किसानरों की ही है हमारा भारत देष एक कृषिप्रधान और गावों का देष है। यहाँ पर लगभग प्रतिषत आबादी कृषि कार्य पर निर्भर है।

समकालीन परिदृष्य को समझने के लिए जब तक हम प्रेमचंद के समय के किसान आन्दोलन को नहीं समझेंगे तब तक हम समकालीन साहित्य में किसान विमर्ष को नहीं समझेंगे। किसान हमेषा से अभावग्रस्त और समस्याओं से जुझता रहा है। इसके बावजूद भी वह अपने कर्तव्य के प्रति इमानदार रहा है। किसानों की समस्या को लेकर अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में अपने अपने विचार प्रस्तुत किए है-

समकालीन कथाकारों में शिवमुर्ति का उपन्यास आखिरी छलांग में सीमांत किसान को आर्थिक उदारीकरन की नितियों पे किस प्रकार बरबाद किया उसका चित्रण मिलता है। संजीव का फांस इस उपन्यास में खेती के लिए किसान कर्जा लेता है और कर्ज के कारण आत्महत्या करता है। राजू शर्मा का उपन्यास हलकनामा में किसान आत्महत्या के साथ साथ जलसंकट की भी समस्या का चित्रण है। मिथिलेश्वर का उपन्यास तेरा संगी कोई नहीं में किसान की त्रासदी, खेतों से किसान की जुडी हुई भावना और नई पीढ़ी का पलायन प्रस्तुत किया है।

मिथिलेश्वर जी का 'तेरा कोई संगी नहीं'कृशक समाज और कृशि की समस्याओं को जमीनी पड़ताल करनेवाला उपन्यास है। इसको लिखते हुए मिथिलेश्वर जी ने कृषि जीवन में इस्तेमाल होनेवाली आम बोली के कई शब्दों का इस्तेमाल किया है जिससे एक जुड़ाव सा महसुस होता है। कृषक जीवन की बुनियाद संरचना के तहत कृषि के निरंतर उपेक्षित, अभावग्रस्त और परेषानीपूर्ण बनते जाने के कारणों को उजागर करता यह उपन्यास कृषक जीवन, कृषक समाज और कृशि समस्या का जीवंत विष्लेशण प्रस्तुत करता है। खेत मजदुरों को ही किसान मानकर उनपर आधारित रचनाओं से पृथक एक मध्यमवर्गीय किसान की त्रासद कथा के माध्यम से इस उपन्यास ने सही अर्थो में प्रतिनिधि कृषक चरित्र तथा कृषि जीवन से सम्बघित वास्तविक समस्याओं को न सिर्फ चिन्हित किया है, बल्कि उन्हे जानने समझने और एक सही अंजाम तक पहुंचाने के लिए सार्थक जमीन भी मुहैया करायी है। तेरा संगी कोई नहीं कृषक जीवन, कृषक समाज और कृषि से सम्बन्धित समस्याओं की सुक्ष्मता, बेबाकी और जमीनी सार पर पडताल करने वाला विलक्षण उपवास है।

मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में किसान एक जगह एकत्रित होकर खाद और पानी की समस्या से निबटने के लिए योजना बना रहें हैं। बलहारी गांव में पानी की समस्या के कारण किसानों की फ़सलें सूख रही है। दूसरी तरफ बाजार में यूरिया बेचने वाले भी किसानों के साथ छल कर रहे हैं। किसानों के लिए सरकार ने जो मूल्य तय कर रखे हैं, दुकान वाले उस मूल्य पर उन्हें नहीं देते। वे आपस में ही दूसरे दुकानों को पही यूरिया अधिक रेट पर देकर मुनाफा कमाते हैं। किसानों को यअ कह देते है कि यूरिया खत्म हो गई है। किंतु किसान उनकी यह चालाकी समझते हैं। इसलिए वे इसके खिलाफ आन्दोलन की योजना बनाते हैं- 'हमारे चुपचाप बैठे रहने से कुछ होने वाला नहीं। पिछले वर्श हमारे आन्दोलन पर ही नहर का रुका हुआ पानी आया था और सरकारी

दुकानों पर चलकर ताला जड़ देना हैं। जब निर्धारित रेट पर वह हमें मिलना ही नहीं तब उन वितरण केन्द्रों को क्यों खुले रहना। इसके बाद हमें ब्लाक ऑफिस का भी घेराव करना है। जैसा कि हम सभी जानते हैं, हम किसानों के लिए सरकारी राहत की जो भी योजनाएं बनती हैं, उसका क्रियान्वयन ब्लाक से ही होता है, इसलिए निर्धारित दर पर यूरिया का वितरण न होने का भागीदारी ब्लाक ऑफिस ही हैं।'

इसी तरह से गांव के किसानों को उनके फसल का मूल्य समय पर नहीं मिल पाता है। जिसके कारण उन्हें बीज एवं खाद खरीदने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सरकार के नए नियम के तहत सरकारी रेट पर किसानों के धान खरीदने के निए क्रय केंद्र बनाए गए हैं। इन क्रय केन्द्रो की स्थापना इस उद्देश से की गई थी कि किसानों की फसल का उन्हें उचित मूल्य प्राप्त हो सके, किंतु इन क्रय केन्द्रों का लाभ बिचैलिए एवं आढ़तिये ही प्राप्त करते हैं। क्रय केन्द्रों पर किसानों को तमाम तरह की समस्याएं झेलनी पड़ती हैं। उनकी फसलों में कई तरह की कती बताकर वे उसे खरीदने से इन्कार कर देते हैं। तमाम तरह की समस्याओं को झेलने के पष्चात यदि वे अपने अनाज को किसी तरह से बेच पाते हैं, तो समय पर उन्हें उनका भुगतान नहीं प्राप्त हो पाता। सब किसान मिलकर अपने फसल की बकाया राषि को प्राप्त करने के लिए प्रदर्षन करने की योजना बनाते हैं। उनके गांव की गन्ने की फसल का भुगतान अभी तक उन्हें नहीं प्राप्त हुआ हैं। गन्ने की मिल के बंद हो जाने से उनकी समस्या और बढ़ गई हैं। इसलिए गांव के किसान गन्ने की बकाया राशि को पाने का भी प्रयास करते हैं। जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गॉववालों' उपन्यास में ज़कीर के लाख प्रयत्न करने बावजूद उसकी फसल से उसे मुनाफा नहीं प्राप्त हुआ। उस पर कर्ज का बोझ निरंतर बढ़ता जा रहा था। कभी मिल के बंद होने सं गन्ने की फसल की बुआई बंद करनी पड़ती है, तो कभी फसल संरक्षण की व्यवस्था न होने से उसकी फसल सड़ जाती है, कभी प्राकृतिक आपदा के कारण उसकी फसल बर्बाद हो जाती है। अंत में वह कर्ज के बोझ से इतना दब जाता है कि आत्महत्या कर लेता है। भैरव और सल्तनत गॉव के किसानों से एवं किसान सभा से विचार विमर्ष करके किसानों के हक के लिए आमरण अनषन पर बैठते हैं-'नहर का मुख्यालय, जहॉ उसका संचालन कार्यालय और मुख्य संयंत्र अवस्थित था, पर एक छोटा शामियाना लगाया गया और उनके नहर के जीर्णोद्धार से संबंधित मांगो के अनेक पोस्टर और बैनर टांके गए। नीचे एक दरी बिछाई गई जिस पर बैठकर सल्तनत ने आमरण अनषन षुरू कर दिया।' सल्तनत किसानों के हक के लिए अनषन पर तो बैठ जाती है, किन्तु तत्कालीन सरकार के उपर कोई फर्क नहीं पड़ता है। उनके लिए तो वह एक साधारण सी लड़की है जिसके मरने से उन पर कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। हमारी सरकार किसानों के प्रति जो उपेक्षापूर्ण रवैया है, उसी से किसानों की स्थिति दिन-प्रतिदिन औऱ बिगड़ती जा रहीं है। वह अपने सामने कोई विकल्प न पाकर आत्महत्या करने को मजबूर हो जाता है।

एम.एम. चंद्रा के 'यह गॉव बिकाऊ है' उपन्यास में किसानों के सामने पानी की समस्या, फसल का मूल्य समय पर न मिलना, सरकारी नीतीयों का कारगर न हो पाना आदि के कारण किसान त्रस्त है। अघोघ और उसके दोस्त मिलकर किसान सभा का गठन करते हैं। जिसमें वे किसानों की समस्याओं पर बातचीत करते हैं एवं उनका हल ढूंढने का भी प्रयास करते हैं-'हमारे गॉव के बारे में किसानों के बारे में जब कोई नेजा नहीं सोच रहा है, तब हम जैसे किसानों के बच्चों को ही आगे आना होगा। यह खेती किसानी का संकट हमारा है, इसलिए इसके समाधन के लिए भी हमें ही लड़ना पड़ेगा।' उपन्यास में सविता के माध्यम से महिलाओं की आन्दोलन में भागीदारी को भी दर्षाया गया है। यदि महिलाएं कृषि कार्य में हाथ बंटाती है तो आन्दोलन का भी हिस्सा बन सकती हैं-'किसान परिवार का छोटे से छोटा बच्चा भी खेती किसानी के काम में हाथ बंटाता है। यदि महिलायें खेती किसानी कर सकती हैं तो वे किसान आन्दोलन का भी हिस्सा बन सकती हैं। यदि आप लोग चाहें तो हम महिलायें भी आप लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लडें।'

गॉव के किसान आन्दोलन में एक बार अपनी किडनी बेचने तथा दूसरी बार अपने गॉव तक को दांव पर लगा देते हैं। किंतु प्रशासन की तरफ से उन्हें कोई आश्वासन नहीं मिला न ही उनकी कोई सहायता की गयी। कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपख्यान' उपन्यास में किसानों की ज़मीन पर कंम्पनी लगाने के लिए उनकी ज़मीन पर कब्जा किया जा रहा हैं। उपन्यास में सिर्फ आदिग्राम के हर पहरं, अपितु राजस्थान और गुडगॉव के भूमि अधिग्रहण के विरोध में किसानों के आन्दोलन को भी दिखाया गया है। किसान एक तरफ अपनी जमीन को बचाने के लिए आन्दोलन करते हैं तो दूसरी तरफ अकाल के समय कर न चुकाने के लिए वे आन्दोलन करते हैं-'जमीन उसी की जो उस पर खेती करे। किसानों के नारे बुलंद होने लगे, 'जान देंगे, धान नहीं देंगे। महेन्द्र और संघमित्रा के आव्हान पर हर घर से एक भाई, एक रुपया, एक लाठी की मांग हुई और देखते देखते किसानों की एक बड़ी फौज बन गयी। आदमी और अनाज के बीच का युगों पुराना सम्बन्ध मात्र रह गया, बीच की तमाम बाधाओं, ज़मींदार, पुलिस, दरोगा, पटवारी, साहूकार, महाजन को एक धक्का और दो फसल तैयार होने पर दल के दल लोग एकजुट होकर खेतों में उतरे। लाल झंडा गाड़कर धान की कटाई हुई.....। जमींदारों को किसानों के खलिहान से अनाज निकलवाने के लिए बंदूकधारी पुलिस का सहारा लेना पड़ा।'

किसान अपने कंधे पर हल रखे अपने बैलों को साथ लेकर आन्दोलन में हिस्सा ले रहे हैं। किसानों की समस्याओं के अतिरिक्त समकालीन साहित्य में कुछ ऐसे उपन्यासों की रचना भी हुई, जिनमें किसानों को जागरूक करने का प्रयास किया गया। सूर्यनाथ सिंह के 'चलती चाकी' उपन्यास में श्वेतानंद गॉव के किसानों को कृषि करने के तरीकों के बारे में बताते हैं। वे किसानों को सिंचाई करने के तौर-तरीकों के बारे में बताते हैं। आज किसानों के सामने सिंचाई की समस्या इसलिए उत्पन्न हो रही है, क्योंकि हमारे पारंपारिक स्त्रोत जैसे कुएं, तालाब आदि सूख गए हैं तथा उनको पाट दिया गया है। वे गॉव के बालकों औऱ किसानों को एकत्रित कर तालाबों की फिर से खुदाई करवाते हैं। उनको बूद सिंचाई के माध्यम से सिंचाई करने को प्रेरित करते हैं, ताकि पानी की बचत की जा सके। किस मिट्टी के लिए कौन सी फसल उपयोगी सिद्ध होगी इसके बारे में भी किसानों को बताते हैं।

इसी तरह से जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गॉव वालो' उपन्यास में भैरव और सल्तनत गॉव के युवा जो पढ़े लिखे होने के बावजूद बेरोजगार हैं। उनके लिए खेती को ही उक रोजगार की तरह बनाने की तरकीब खोज रहे हैं। वे गॉव की बंजर जमीन को समतल बनाकर उसमें से झाड़ काटों को साफकर उसे कृषि योग्य बनाते है। जिससे यह बेरोजगार युवाओं के लिए आमदनी का एक जरिया बन सके-'सदस्यों की संख्या है और जमीन का कुल रकबा तकरीबन डेढ़ सौ बीघा होगा.... मतलब एक आदमी पर लगभग चार बीघा की मेहनत। ज्यादा नहीं हैं.... शहर में अगर इतने ही क्षेत्रफल में कोई कारखाना खुल जाता है तो उससे हजारों आदमी की आजीविका चलने लगती। यहॉ भी हम इसे कारखाना की तरह ही चलाएंगे और साबित करेंगे कि कृषि को भी उद्योग की तरह लाभप्रद और कारगर बनाया जा सकता हैं।' वे गॉव के युवाओं को एकत्रित कर सामूहिक रूप् से खेती करवाते हैं।

निश्कर्शतः कहा जा सकता है कि समकालीन साहित्य के हिंदी उपन्यासों में किसान जीवन की अनेक समस्याएं देखने को मिलती हैं। जिनमें से एक तो सरकार की कृषि नीतियां हैं, जिनसे कृषि समाज लाभान्वित होने की बजाय संघर्श कर रहा हैं। आज भी किसान सिंचाई के लिए प्रकृति पर ह निर्भर हैं, सरकार की तरफ से अनेक फसलों को पानी उपलब्ध कराने का कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा रहा हैं।

खाद, बीज, पानी उनकी समस्याओं के केंद्र बिंदु हैं। मंडी एवं बैंक में बिचैलिये की वजह से उन्हें समस्याएं झेलनी पड़ती हैं। इन सब समस्याओं के बीच किसान संघर्श कर रहा हैं।

संदर्भः

1. मिथिलेश्वर - तेरा संगी कोई नहींः लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001- संस्करणः 2018 पृ.68
2. जयनंदन - सल्तनत को सुनो गॉव वालो : वाणी प्रकाशण 4695, 21ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 2012 पृ. 68
3. वही. पृ.154
4. चन्द्रा एम.एम. - यह गॉव बिकाउ हैं - डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि. एक्स 30, ओखला इंडस्टीयल एरिया, नयी दिल्ली - 110020 संस्करण 2019 पृ. 87
5. तेरा कोई संगी नहीं - मिथिलेश्वर - पृ. 95, 98, 15, 17, 50, 51, 52, 78
6. हलफनामा - राजू शर्मा - पृ. 8, 15, 17, 38, 45, 48, 61, 62, 64, 70, 71, 75
7. फॉस - संजीव शर्मा

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

किन्नर की अस्मिता (खलीक बुआ के विशेष संदर्भ में)

डॉ. बायजा महादेव कोटुळे (साकुंके)

हिंदी विभाग प्रमुख, वसुंधरा महाविद्यालय, घाटनांदुर, त. अंबाजोगाई जि .बीड

शोध सारांश:-

किन्नर समाज अपने ही समाज से वंचित रहा है। किन्नर शब्द सुनते ही हमारे दिमाग में समाज से बहिष्कृत लोगों की प्रतिमा बनती है। ये लोग शादी, बच्चे के जन्मदिन, बस, ट्रेन, सडक, पार्क, सिग्नल पर पैसे मागते दिख जाते है। लेकिन हमने कभी ये नहीं सोचा की ये लोग पैसे मागणे के लिये मजबूर क्यों है? क्योंकि मनुष्य के रूप में जन्म लेने के बावजूद भी किन्नर समुदाय जीवन जीने के लिए मजबूर है। इनके साथ होने वाले सामाजिक भेदभाव से उनका मनोबल टूटता है। यह वर्ग लगातार आपने और अपने समुदाय की अस्मिता और अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कभी स्वयं से, कभी समाज से तो कभी कानून से दो- दो हात करता है ।उनका आगमन हमारे घरों में शुभ माना जाता है मगर समाज उन्हें अशुभ की तरह उपेक्षित अपमानित जीवन जीने के लिए छोड देता है ।आज हिंदी साहित्य समय- समय पर समाज से जुडे ऐसे कई बिंदूओं पर लिखता रहा है। आज किन्नर की अस्मिता को भी हिंदी साहित्य आपने गर्भ मे बेखुबी आश्रय प्रधान कर रहा है। इस विषय पर कई चर्चित लेखकों द्वारा कहानियां लिखी जा रही हैं ।

बीज शब्द:_प्रेम आकर्षण वफादारी मानवीयता संवेदना।

प्रस्तावना:-

समाज की निर्मिती पुरुष और स्त्री से होती है। परंतु इन दोंनो के बीच ऐसा वर्ग भी है जो न तो पूर्ण पुरुष हे और ना ही पूर्ण स्त्री। अत: पूर्ण न होने के कारण समाज का यह वर्ग अन्य लोगों के बीच स्वयं की उपस्थिती तथा स्वयं के अस्तित्व के लिए हर समय संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। यह वर्ग है उभयलिंगी समुदाय का जिसे हमारे समाज में हिजडा, छक्का, खोजा, किन्नर, थर्ड जेंडर,अरावली आदि नामों से जाना जाता है। हिंदी साहित्य समय-समय पर समाज से जुडे ऐसे कई बिंदू पर लिखता रहा है। आज किन्नर की अस्मिता को भी हिंदी साहित्य आपने गर्भ से बेखुदी आश्रय प्रदान कर रहा है। कुछ साहित्यकार किन्नर समाज को लेकर सजग हुए है और इसे आगे बढाने में निरंतर अपना योगदान दे रहे है। समकालीन साहित्यकारों ने किन्नरों के जीवन की ओर गंभीरता से ध्यान दिया है । उन्हें मुख्य विषय बनाकर कई कहानियां लिखी। काहनियों के माध्यम से किन्नरों को मुख्यधारा में जोडणे का अर्थ प्रयास किया गया है। किन्नर पर कई चर्चित लेखकों द्वारा कहानियां लिखी जा रही है। इन में प्रमुख हैं शिवप्रसाद सिंह की बिंदा महाराज, किरण सिंह की सांजा, राही मासूम रजा की खलीक अहमद बुआ ,डॉ. पद्मा शर्मा की इज्जत के रहबर, महेंद्र की त्रासदी, विजेंद्र प्रताप सिंह की संकल्प,आदि कहानियां महत्वपूर्ण है।

विषय विवेचन :-

राही मासूम रजा द्वारा लिखित खलिक अहमद बुआ को लेकर लिखी गई महत्वपूर्ण कहानी है। यह एक चरित्र प्रधान कहानी है। इस कहानी के माध्यम से किन्नर समुदाय की अस्मिता एवं मानवीय संवेदना को उजागर करने का प्रयास रचनाकार ने किया है । कहानी के मूल मे प्रेम है, जो कि किन्नरों के जीवन में महत्वपूर्ण

होता है। यहाँ कहानी का मुख्य पात्र खलीक अहमद बुआ अपने प्रेम पर अपना सब कुछ न्योंछावर कर प्रेम के लिए हद से गुजर जाता है। वह रुस्तम से प्यार करते है किंतु जब रुस्तम खांॅ उसका विश्वास तोडता है तो वह उसका खून भी कर देते है ।

खलीक अहमद बुआ की सज- धज अलग थी ।जब वह साडी बांधकर बाहर निकलते थे तो सब लोग घबराते थे,क्या पता किसे क्या कह दे," खलीक अहमद बुआ बडे मजे की चीज थे, साडी बांॅधे, नोकदार अधिया पहने, जुडे में फुल टिकाए,पायल बजाते निकलते तो राह चलते इधर उधर देखने लगते, क्योंकि उनसे सभी घबराते थे। क्या पता कब किसे क्या कह दे ।रुस्तम खांॅ की बेवफाई के खयाल और मौत के सिवा किसी से नहीं डरते थे ।"1उन्हें चिढाने के लिए बच्चे चिल्लाकर कहते, खलीक अहमद बुआ मर गई तो वे गालियाँ देना सुरू कर देते,"अरे मरे तै। मेरे होते सोते.... रँडी के जने की जबाने देखत जाव लोग...."२ उनकी आवाज बडी पाटदार थी। जब वह घर से निकलती तब पुरे मोहल्ले में पता चल जाता था । बच्चे उनकी आने की आहट सुनते ही गली में इधर -उधर खडे होकर देखते थे ।पर गर्मियों की दोपहर में बच्चों की माँय उन्हें अंधेरे कमरों में बंद कर देती थी ।ऐसे में वह सडकों को विरान देखकर बड बढाना शुरू करते-" आज कोनों हरामजादे की आवाज ना आ रही। मर बिला गये सब...."३ सामान्य लोगों की तरह उनके दिल में बच्चों के लिए सहज प्रेम था। अर्थात जब बच्चे उनको चिडाते थे तब वह नाराज होने के बजाये इससे अपने अकेलेपण को दूर करते है।

दोपर के समय में सुनसान गली में वो अपने जीवन और हृदय की छवी देखने से घबरा उठते है। इससे कलिक अहमद बुआ के जीवन में अकेलेपण के अंधकार को महसूस किया जा सकता है । कहानीकार खलीक अहमद बुआ के दिल में मौत का यह डर क्यों था। यह तो मुझे नहीं मालूम, संभव है कि वह मौत से नही तन्हाई से डरते रहे हो। क्योंकि उनके आगे पीछे तो कोई था नहीं । रुस्तम खाँ ने उसे कही से भाग लाये थे ।बनारस का तिकीट लिया था पर रुस्तम खाँ की जिद पर गांजीपुर की लाट साहब की कब्र दिखाने लाये थे, पर फिर वही के होकर रहने लगे। वह हाजी बदरूलहक साहब के यहाँ खाना पकाने वाले नौकर हो गए ।वही उन्हें रहने के लिए एक कोठरी मिल गयी और वही रुस्तम खाँ के साथ रहने लगी।

रुस्तम खाँ के साथ आई खलीख अहमद बुआ गाजीपुर में लोगों के आकर्षण का केंद्र बनी। सभी से हाँस कर बात करना उनका स्वभाव था। वहाँ की महिलाएँ उनसे पर्दा नहीं करती थी। औरते मजाक करते हुए कहती -"फरक करो कि रुस्तम खाँ अटक गये किसी से तो ? तो का? खलीक अहमद बुआ कहती 'मर्दुए की जान ले लुंगी और अपनी जान दे दूंगी ।"5 प्रेम से वंचित अहमद बूआ का रुस्तम खाँ के प्रति पूर्ण समर्पण तथा वफादारी थी। रुस्तम खाँ से उनकी मोहब्बत धर्म की सीमाओं को पार कर गई थी । उनके सामने एक से बढकर एक नवजवान आते पर क्या मजाल की उनके दिल में रुस्तम खाँ से बेवफाई का खयाल भी आ जाए। रचनाकार कहते है," मुसलमान थे। पाँचों वक्त की नमाज पडते थे ।तीसों रोजे रखते थे। पर अपने सुहाग के लिये चौथ का व्रत रखना कभी न भूलते!"६ खलीक अहमद बुआ जनाना होकर भी खूप मर्दानी गालियाँ देते थे। वह अपने पति के लिये खाना पकाते। उन्हें अपने हाथ से खिलाते और फिर गई रात को पाँव दबाते रहते थे। औरते अपने पति के लिए जो जो काम करती है वो सब काम बुवा रुस्तम खाँ के लिये करते है।

खलीक अहमद बूआ को पता चला की रुस्तम खाँ ने पुखराज बाई के कोठे पर आना-जाना शुरू कर दिया है तो उनका दिल पुरी तरह से टूट जाता है। एक पत्नी की तरह दुखी होते है । दोनों में झगडा होता है और वह घर छोडकर जाता है। पूरे शहर में यह खबर फैल जाती है कि बूआ का बसा -बसाया घर उजड गया। किसी लडके ने नारा लगाते हुए कहा," खलीक अहमद बुआ मर गई।"7 यह सूनकर उसने बच्चों को गाली नहीं

दी। बल्कि कहा, "हाँ बेटा खलीक अहमद बुआ मर गई।"8 स्पष्ट है कि वह अपने पती से इतना प्रेम करती थी कि उसे किसी दुसरी औरत के साथ का संबंध रखना उसे मंजूर नही था। वह बहुत मायूस हुए थे। उसे छेडनेवाले लोग उसे कहते थे की रुस्तम खाँ तो पुकराज के हो गये है। कुछ लोगों को उनसे एक तरह की हमदर्दी हो गई थी । किसी ने तो यहाँ तक कहा कि ," अब यहाँ क्यों पडी हो बुआ। उनकी याद सताती रहेगी काही और चली जाओ।"9 वह समज गई की अब मैं इन गाव वालों को भी मुझ से कुछ लेना देना नहीं है । इसीलिए उसने तय किया यहाँ से जाना है। वह यहाँ से जाने की तैयारी करने लगी। उन्हीं तैयारियों में एक दिन उन्होंने रुस्तम खाँ को पिछले दरवाजे से पुकराज के घर में जाते देख लिया और वही पुकारज कोठे पर साबीत हो गया कि, "सुहाग- सुहाग होता है चाहे वह किसी हिजडे का ही क्यों ना हो।"१० खलीक अहमद बुआ रुस्तम पर टूट पडे । चाकू वाला हात उपर नीचे चलने लगा । बुवा को बहुत गुस्सा आया था इस गुस्से में रुस्तम को कहने लगी," हम का अपनी जवानी तोरे पीछे यह मारे गँवाया है की तू हमार कमाई का पईसा ई किराये की बच्चेदानी के गुल्लक में फेको...?"११ इस तरह दोंनो के झगडे में खलीक अहमद बुआ ने रुस्तम को मार डाला ।और खून के इलजाम में बुआ को अंत में फाँसी की सजा हो गई।

शोध की सीमा:-

प्रस्तुत शोध पत्र में किन्नर की अस्मिता के साथ प्रेम, आकर्षण वफादारी को कहानी के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । उनके प्रति संवेदना, प्रेम, मानवीयता ,अस्मिता के माध्यम से मुख्याधारा में लाने का कार्य किया जा सकता है । प्रस्तुत शोधा आलेख की सीमा सिर्फ लिंग भेद में उलझा हुआ हमारा समाज भूल जाता है कि इन लोगों की भी सत्ता है जो सहज मानवीय संवेदनाओं से भरे होते है।

साहित्य की समीक्षा:-

आज अस्मितामूलक के रूप में किन्नर साहित्य को देखा जाता है। किन्नर साहित्य की आलोचना कई स्तरों पर की जा रही है। जिसके माध्यम से उनके प्रश्न, समस्या, भाषा, साहित्यिक परिवेश, संस्कृती जैसे मुद्दे पर बात हो रही है। इससे उनके समस्याओं पर कुछ हद तक हल निकालने की कोशिश हिंदी कथाकारों ने की है। अंत: किन्नर समाज की संवेदनशीलता को ध्यान में लिया जा रहा है । यह साहित्यिक समीक्षा की बडी उपलब्धी मान सकते है।

शोध का उद्देश:-

१. किन्नर को समाज में महत्वपूर्ण स्थान देना।

२. उनकी अस्मिता को समाज के सामने प्रस्तुत करना।

३. किन्नरो पर होने वाले हमलों को रोकना।

४. उनके साहित्य को एक बडा मंच देने के लिए मदत करना ।

शोध प्रश्न:-

१. किन्नर समाज को मुख्यधारा में लाना ।

२. किन्नर समाज को सुविधाओं से परिचित कराना।

३. किन्नरों के साथ मानवता के समान व्यवहार करना।

निष्कर्ष:-

अंत में हम कह सकते है कि, हमारा समाज लिंग के आधार पर इस समुदाय के लोगों को घर से समाज से बहिष्कृत कर देता है । लेकिन इन लोगों में भी प्रेम, आकर्षण, वफादारी जैसे मानवीय गुण होते है। बुआ में हमें स्त्री के गुण दिखाई देते है इसलिये तो उनका रुस्तम खाँ से सहज ही पत्नी तुल्य प्रेम तथा आकर्षण है। सिर्फ लिंग भेद में उलजा हुआ हमारा समाज भूल जाता है कि इन लोगों की भी सत्ता है जो सहज मानवीय संवेदनाओं से भरे होते है। इसी कारण तो बुआ के एकनिष्ठ और समर्पित प्रेम ने ही रुस्तम खाँ की जान लेने के लिए मजबूर किया होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिजडों में मानवीय संवेदनाएंॅ होती है । वे यदी हँसी मजाक कर सबको आनंदित कर सकते है, अपना मजाक उडवा सकते है, तो प्रेम में धोका खाने पर प्रतिशोद भी ले सकते है। इस कहानी के माध्यम से यही स्पष्ट होता है ।

संदर्भ संकेत:-

१. सं. डॉ. विमल सूर्यवंशी, -थर्ड जेंडर चर्चित कहानियाँ, रोशनी पब्लिकेशन, कानपूर-206012 पृष्ठ-१८

२. वही पृष्ठ -१८

३. वही पृष्ठ-१८

४. वही पृष्ठ- १९

५. वही पृष्ठ-१९

६ .वही पृष्ठ- २०

७. वही पृष्ठ -२१

८. वही पृष्ठ -२१

९. वही पृष्ठ -२१

१०. वही पृष्ठ-२१

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य : किन्नर संघर्ष

प्रा.डॉ.शिवाजी वडचकर

कै.रमेश वरपुडकर महाविद्यालय सोनपेठ

प्रस्तावना :

हजारों वर्षों सेरुढ सामाजिक मान्यताओं के कारण हाशिये पर धकेल दी गई जाति ने आज अपने मन की बात को कहने का साहस अर्जित किया है। दरअसल,आधुनिक समय में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रतिआस्था बढ़ाने के कारण सामुदायिक विमर्शों के लिए स्थान निर्मित हुआ है इसका नतीजा यह हुआ कि दलित,स्त्री, किसान, मजदूर, आदिवासी , पर्यावरण, वृद्ध विमर्श के साथ किन्नर विमर्श को साहित्य और समाज के केंद्र में रखकर चर्चा हो रही है। यह सच है की थर्ड जेंडर के लोग अपनी शारीरिक विकलांगता के कारण ता उम्र अपमानित उपेक्षित और कष्टपूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य है। आज तमाम औद्योगिक प्रगति के बावजूद हमारे समाज में मानवीय प्रगति अनुपस्थित है। अगर ऐसा नहीं होता तो निसंदेह इस वर्ग के प्रति हमारे मन में बराबरी करुणा और मनुष्यता का भाव होता। एक लंबे संघर्ष और अस्मिता के लिए बेचैन इस वर्ग के लोगों के प्रयासों का ही नतीजा है कि आज सरकार कानून और सामाजिक संगठनों ने उन्हें अपमानजनक उपमानों से मुक्त कर थर्ड जेंडर या तीसरा लिंग जैसा थोड़ा काम अपमानजनक संबोधन दिया है।

विमर्श का अर्थ नालंदा विशाल शब्द सागर में इस प्रकार दिया गया है," किसी बात का विचार या विवेचन आलोचना समीक्षा रखने का काम परामर्श सलाह अधीरता असंतोष।"१ मतलब विमर्श में किसी एक विषय को लेकर बहुत बारीकी से सोच विचार किया जाता है। किन्नर विमर्श वर्तमान साहित्य में बहुत ही चर्चित है ।क्योंकि हमारे समाज में दो जातियां पुरुष और स्त्री की है, पर यह जो किन्नर समाज है। उसजातिको सदियों से दुर्लक्षित किया गया है। इस किन्नर जाति के बारे में कभी कोई साहित्य नहीं लिखा गया जिससे यह समाज साहित्य से भी डर रहा है।

महत्व :-

21वीं सदीके आरंभ से ही अन्य भाषाओं की तरह हिंदी भाषा में भी अन्य विमर्शों के समान किन्नर विमर्श ने जोर पकडाहै।'किन्नर' या'हिजड़ा' अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहे हैं।किन्नर विमर्श स्वप्न, संघर्ष या चिंतन भी है और विषमता विभेद, विकृतियों के खिलाफ विद्रोह कदम भीहै।स्वाभिमान से जीने की जिजीविषा संघर्ष कर रही है। यह संघर्ष या विद्रोह शब्दों तक ही सीमित ना रह कर एक सामूहिक स्वर बनकर समाज में उभरा।साहित्य के द्वारा समाज में जोकिन्नरों के प्रति घृणा की भावना है, वह नष्ट हो जाएगी।साहित्य के माध्यम से किन्नर लोगों की व्यथा का एहसास समाज को हो जाएगा। समाज का हिस्सा होकर भी एक कटे हुए हिस्से कीअलग रहकर किन्नर समुदाय की जो हालात बन चुकी है, वह समाज के सामने आएगी घृणा की जगह मदद की भावना समाज में निर्माण होगी।किन्नर समाज को वह दर्द नहीं झेलना पड़ेगा जो सदियों से सहतेआ रहे हैं।

उद्दिष्ट:- 'किन्नर विमर्श' ऊपर साहित्य की निर्मित होने से किन्नर जीवन के बारे में जो सच है, वह समाज के सामने आएगा ।किन्नर समाज की पारिवारिक समस्या ,आर्थिक समस्या, शैक्षणिक समस्या, लैंगिक समस्या, मानसिक समस्या के अध्ययन से समाज का किन्नर समाज के जीवन का स्पष्ट रूप से पता चल जाएगा।किन्नर समाज का दु:ख-दर्द का अध्ययन होने से समाज को उनकी पीड़ा तथा संघर्ष का एहसास होगा।किन्नर समाज के प्रति हमारे समाज सोच बदल जाएगी और किन्नर समाज अपना जीवन खुशी से जी पाएगा ।

किन्नर का अर्थ एवं परिभाषा :- संसार के प्रत्येक देश में सामाजिक स्तर पर स्त्री और पुरुष लिंग के अतिरिक्त एक अन्य लिंग का मानव समुदाय निवास करता है। जिसकी शारीरिक संरचना पुरुष एवं स्त्री से पृथक स्वरूप में होती है। जिसे तृतीय लिंगी कहा जाता है ।इस समुदाय के अन्य नाम है छक्का, किन्नर,मौसी,खोज,मामू ,उभयलिंगी, हिजड़ा,नपुंसक ,ट्रांसजेंडर ,थर्ड जेंडर असोव्य,सुगंधी,क्लीन, नामर्द,ईर्षक,कुंभिक,कायर तथा डरपोक आदि नाम है।

नालंदा विशाल शब्द सागर में किन्नर का अर्थ इस प्रकार दिया है1) अ) "किन्नर एक प्रकार के देवता जिनके मुख घोड़े के समान बताया जाता है।ब)"गाने बजाने का पैसा करने वाली एक जाति"२2)" नपुंसक वैद्यक मता अनुसार वह मानव जिसमें कामेच्छा बिल्कुल ना हो और किसी उपाय विशेष से जागृत हो।"

नपुंसक पांच प्रकार के बतलाए गए हैं "1) आसेव्य2) सुगंधी 3)कुंभिक4)ईर्षक5) षंड।नपुंसक को हिजड़ा,नामर्द तथा डरपोक भी कहा जाता है।"३ किन्नर एक ऐसी मानव प्रजाति से संबंधित है जो ना तो पूर्णत पुरुष होते हैं और नहीं पूर्णता महिला होते हैं ।भारतीय समाज में इस प्रजाति के लोगों को तीसरे लींग या अन्य की श्रेणी में समावेशित किया जाता है। इस श्रेणी के लोगों को अपमानजनक नाम दिया जाता है। देश के कुछ भूभाग पर इस श्रेणी के लोगों को जनखा, जानना तथा मेहरा नाम से भी संबोधित किया जाता है।हिजडा शब्द मूल रूप से उर्दू या फारसी भाषा का है। जिसकी व्युत्पत्ति और अरबीभाषा के ' हिज ' शब्द से हुई है।'हिज' शब्द का अर्थ अरबी भाषा में अपनी जमात कबीला को त्यागकर घर-बार ,परिवार तथा समाज से विमुक्त होना होता है। किन्नर शब्द को भारत वर्ष में बोली जाने वाली भाषाओं में पृथक-पृथक नाम से संबोधित किया जाता है ।यथा मराठी में छक्का कन्नड़ में जोगप्पा, गुजराती में पवैया, पंजाबी में खसरा,उर्दू में नामर्द, तेलुगु में नपुंसकुड,कोज्जा अथवा मारा, तमिल में थीर,नगई,ओम्बुडूअथवाअरावती तथा अंग्रेजी भाषा में युवक ट्रांसजेंडर या थर्ड जेंडर आदि कहा जाता है।

किन्नर विमर्श की परंपरा में हिंदी साहित्य में अपनी विशेष उपस्थिति दर्ज कराई है। महेंद्र भीष्म, प्रदीप सौरभ, चित्रा मुद्गल, अनुसया त्यागी, निर्मलभुराडिया और विशेष रूप में उपन्यासकार नीरजा माधव का नाम किन्नर विमर्श की दृष्टि से लिया जाता है। नीरज माधव ने अपने उपन्यासों में किन्नरकी पीड़ा आक्रोश और संघर्ष की कथा समाज के सामने 'यमदिप' इस उपन्यास के द्वारा चित्रित की है। यह उपन्यास सामायिक प्रकाशन दिल्ली द्वारा सन 2002 में प्रकाशित होने वाला पहला उपन्यास माना जाता है। लेखिका ने भारतीय समाज जीवन के परिप्रेक्ष्य से किन्नरका चित्रण यथार्थ रूप में किया है। इस उपन्यास में दो मुख्य पात्र है, नाज बेबी और मानवी। उपन्यास का कथानक किन्नर नाज बीवी के इर्द-गिर्द घूमता नजर आता है। जब से नाज बीवी का जन्म हुआ है तब से उसके घर वाले परेशान है। क्योंकि उसका जन्म एक सामान्य बच्चों की तरह न होकर हिजडा के रूप में होता है। मां उससे बहुत प्यार करती है। उसकी पढ़ाई में गहरी रुचि है ।यही वजह है कि वह पढ़ाई में तेज भीथी। दुर्भाग्य वश वह आठवीं कक्षा के आगे पढ नहीं पाती।कुदरत का कहर उस पर ऐसा बरसता है , मानो उसका जीवन तहस-नहस हो जाता है। जब नाज आठवीं कक्षा में रहती है। तो स्त्रियांचित शरीर अंग के साथ दाढ़ी और मूंछ भी आ जाते हैं। इस घटना के बाद से पूरा समाज उसे मानसिक रूप से प्रताड़ित करने लगता है ।नाज ने अंदाज लगाया कि एक दिन वह परिवार वालों को बोझ बन जाएगी ।परिवार लोगपवादकी अपमानित स्थिति से छुटकारा पाने के लिए नाज सबको छोड़कर हिजड़ों की बस्ती में चली जाती है। वहां वह और उसके साथी मिलकर एक पगली को मदद करती है। ऐसे में वह पगली प्रसवपीड़ा से तड़प रही थी।तब समाज से तिरस्कृतस्त्री आगे बढ़ाकर उस स्त्री की मदद करती है।किन्नरका समूह पगली की प्रस्तुति करवाता है ।प्रस्तुति के बाद पगली मर जाती है,तब उसके बच्चे को पालने के लिए समाज तैयार नहीं होता तो एक हिजड़ा कहता है "अरे हम हिजड़े हैं,हिजड़े इंसान है, क्या हम मुंह फेर ले।४"

दरअसल हम एक संवेदन शून्य समाज में जी रहे हैं।जहां लोग सिर्फ और सिर्फ अपने फायदे के लिए काम करते हैं।उन्हें संबंधों से भी फायदे की उम्मीद रहती है। बिना किसी फायदे पर खून के रिश्तों को भी नहीं निभातेहै। ऐसे में एक पगली के बच्चे को पालने का सवाल ही बेमानी है।एक दिन जब नाज बीवी उसे बच्चों को स्कूल में भर्ती करने जाती है। तो उन्हें देखकर अध्यापिकाएं और छात्र कभी खुशी करने लगते हैं ।यह एक यथार्थ है कि आज भी सड़कों पर हम किन्नरको देखते हैं, तो उन्हें देखकर हम अपने साथ के व्यक्ति के साथ कानफुसी करने लगते हैं ।इस घटना को देखकर नाज बीवी उनसे विनती करती है । जब हम धंधे पर नहीं होते बहन जी तो इस तरह का मजाक हमारे सीने में गोली की तरह लगता है। हम आसमान से तो नहीं टपकते हैंना? आपही की तरह किसी मां की कोख से जन्मे है।हाड मांस का शरिर लिए।हमे तो अपने आप दुख होता है इस जीवन पर।आप लोग भी दुखी कर देते है।"५नीरजा माधव के इस कथन के द्वारा हमें लगता है ।हमने लाखप्रगति के बाद भी मनुष्य बनने की कोशिश से लाखों दूर रहने की कोशिश की है संभवत ऐसे लोगों की वजह से समाज में कीनन या उनके जैसों को तिरस्कार अपमान और प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है ।समान ना कोशिश से लाखों दूर रहने की कोशिश की है संभवत ऐसे लोगों की वजह से ही समझ में कीनन या उनके जैसे को तिरस्कार अपमान और प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है । 'किन्नर 'जीवन की मार्मिक गाथा को नीरजा माधव ने ' यमदिप' उपन्यास की पात्र किन्नर गुरु महताब से चित्रित किया है , वह अपने चेलों के लिए बहुत चिंतित है।क्योंकि वहअप्राकृपतिक रूप से पैसे कमाने लगे हैं।नाजबीबी और सब किन्नर को माता जीवन के विषय में समझता है।तब नाजबिबी उनकी बात को स्वीकार करती है लेकिन कुछ के मन में सवाल है की शासन उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता और घर वाले तो पैदा होते ही बाहर छोड़ देते हैं।वह भी मनुष्य है उनकी भी आवश्यकता है। चमेली के संवादों में यही वेदना अच्छा लगती है ।"तन को भगवान ने आधा टुकड़ा बनाया है ,कि किसी लायक नहीं रहे और पेट,पेट तो नहीं बंद करके भेजा वह तो खुल ही हैरोजभरोरोज खाली। मंजू ने कहा हमारे पेट की सुध किसे?नसरकारकोनजजमानसे।"६समाजमेउनके लिए जगह होनी चाहिए अपेक्षित करने के बजाय समझने की जरूरत है किन्नरके मन में भी स्नेह, ममता ,करुणा, प्यारी दया है। जितनी लोगों के पास है, वह लोग समाज के पास है समाज को समझने की कोशिश करें यह समाज को जागरूक होने की आवश्यकता है। परिवार के लोगों को लैंगिक विकलांग बालकोंको परिवार से निष्कासित ना करके अच्छी शिक्षा देने की आवश्यकता है। कीन्नर को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए निश्चित तौर पर किन्नर विमर्श की भूमिका महत्वपूर्ण रहेगी। साहित्यकारों एवं समीक्षकों ने थर्ड जेंडर जैसे अबूझ और विशिष्ट विमर्श पर बात करने की हिम्मत की है ।तथा इस विमर्श को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने का कार्य प्रशंसनीय रहेगा।

"है तन अधूरा मैन अधूरा, ना कुछ मुझे पूरा।

काली गली लगती, फिर भी जलते इससे चूल्हा।।"७

संदर्भ सूची:

1) श्री.नवलजी, नालंदाविशालशब्दसागरपृ.1276
2) वहीपृ.235
3) वहीपृ.669
4) माधवनीरजा, यमदिप,प्रथमसंस्करण 2009पृ.12
5) वहीपृ.50
6) वहीपृ.113
7) उध्दतसं.सुमनभाटीसमाजऔरकिन्नर, साहित्यसंचयनदिल्लीपृ.16

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'अब और नहीं' काव्य संग्रह में अभिव्यक्त दलित अस्मिता

प्रोफे. डॉ. संजय जाधव
हिन्दी विभाग
श्री शिवाजी महाविद्यालय, परभणी - महाराष्ट्र

शोध सारांश –

दलित अस्मिता एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील विषय है, जो दलित समाज की गरिमा, स्वाभिमान, और आत्मसम्मान को समझाता है। इसका मतलब है कि दलितों को उनकी विशेषता, उनके अनुभव, और उनकी अहमियत को स्वीकार करना। दलित अस्मिता का मूल अर्थ है कि दलितों को समाज में अपनी पहचान, अधिकार, और समानता की शक्ति का अनुभव होना चाहिए। दलित अस्मिता का महत्व उन्हें उनके वास्तविक और सामाजिक अधिकारों की पहचान करने में है। यह उन्हें उनके इतिहास, सांस्कृतिक धरोहर, और साहित्यिक योगदान के लिए सम्मानित करता है। विमर्शवादी साहित्य समय की उपज है। सदियों से दबे-कुचले समूदायों की संवेदनाएँ विमर्शवादी साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त हुई हैं। दलित विमर्श इस समय का सर्वाधिक सशक्त एवं चर्चित विमर्श रहा है। प्रतिभासंपन्न दलित रचनाकारों ने अपने स्वानुभूति को रचनाओं के माध्यम से प्रकट किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि को दलित संवेदना एवं दलित अस्मिता का सर्वाधिक मुखर स्वर माना जाता है। उनकी प्रत्येक रचना में दलित अस्मिता की हूंकार दिखाई देती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'अब और नहीं' काव्य संग्रह में अभिव्यक्त दलित अस्मिता का संतुलित वैचारिक परिपक्व रूप देखाई देता है।

बीज शब्द - दलित अस्मिता, समकालीन साहित्यिक विमर्श, दलित विमर्श, दलित अस्मिता, ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं।

प्रास्ताविक -

भारतीय साहित्य का इतिहास अत्यंत प्राचीन है, जिसमें अनगिनत युगों, कलाओं और साहित्यिक परंपराओं का संगम है। यह इतिहास भारतीय साहित्य के विकास के साथ साथ उसकी समाज, संस्कृति और धार्मिक परंपराओं के परिणामों का भी परिचय देता है। आधुनिक युग में भारतीय साहित्य में नई विचारधाराएँ, परिप्रेक्ष्य, और समसामयिक मुद्दे शामिल हुए। भारतीय साहित्य का इतिहास उसके विविधता और साहित्यिक योगदानों के लिए महत्वपूर्ण है। यह इतिहास हमें भारतीय समाज, संस्कृति, और मानवता के साथ उसकी साहित्यिक प्रगति की समझ प्रदान करता है।यदि हम भारतीय साहित्य की बात करें तब यह विशेष रूप में देखा जा सकता है कि अन्य भाषाओं के समान ही हिन्दी भाषा का साहित्यिक परिदृश्य समय और परिस्थिति सापेक्ष्य रहा है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का समकालीन साहित्यिक परिदृश्य विभिन्न विमर्शों का एक व्यापक कैनवास है। जिसमें विभिन्न विचारधारा के लेखकों की रचनाओंका एक स्वतंत्र अस्तित्व है। विद्वानों ने इस सदी को विमर्शों की सदी कहा है । आज की सदि में समाज के उपेक्षित, वंचित तथा हाशिए के बाहर के समूह की किसी भी समस्या पर चर्चा–परिचर्चा, संवाद, तर्क–वितर्क की अभिव्यक्ति विमर्श है । अर्थात किसी समाज जीवन के किसी विषय पर चिन्तन अथचा चर्चा–परिचर्चा की जाए तो उसे विमर्श कहा जाता है। समकालीन साहित्य विमर्श साहित्यिक रचनाओं को एक गहरी समझ और मूल्यांकन की ओर ले जाता है, और साहित्य के समाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य से उसका मूल्यांकन करता है। यह साहित्यिक चरित्र के विकास और समाज में उसके प्रभाव

को समझने में मदद करता है। दलित विमर्श की प्रेरणा भारतीय समाज में सामाजिक न्याय और समानता के लिए संघर्ष करने के लिए उत्प्रेरित होती है। यह विमर्श दलित समुदाय के अधिकारों, समाजिक स्थिति, और उनके अनुभवों को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। दलित विमर्श का एक मुख्य उद्देश्य जातिवाद के खिलाफ संघर्ष करना है। यह सामाजिक हिंसा, असमानता, और अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है और उन्हें खत्म करने के लिए संघर्ष करता है। दलित समुदाय की अनुभवों, भावनाओं, और आत्म-प्रकटीकरण को समझने में मदद करता है। यह उनकी आत्म-सम्मान और समानता की मांग को समर्थन करता है। दलित विमर्श दलित समाज को समाज में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है। यह समाज में समानता, न्याय, और विकास के लिए लोगों को समर्थ बनाता है। दलित विमर्श विभिन्न साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन करता है जो दलित समाज के अनुभवों, भावनाओं, और समस्याओं को साझा करते हैं। यह उनके विचारों को सामाजिक सार्वजनिकता में लाता है। इस प्रकार, दलित विमर्श समाज में सामाजिक न्याय और समानता के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है और दलित समुदाय के अधिकारों को समर्थन करता है। यह समाज में समानता, न्याय, और अधिकारों की मांग को बढ़ावा देता है।

दलित अस्मिता

दलित अस्मिता एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील विषय है, जो दलित समाज की गरिमा, स्वाभिमान, और आत्मसम्मान को समझाता है। इसका मतलब है कि दलितों को उनकी विशेषता, उनके अनुभव, और उनकी अहमियत को स्वीकार करना। दलित अस्मिता का मूल अर्थ है कि दलितों को समाज में अपनी पहचान, अधिकार, और समानता की शक्ति का अनुभव होना चाहिए। दलित अस्मिता का महत्व उन्हें उनके वास्तविक और सामाजिक अधिकारों की पहचान करने में है। यह उन्हें उनके इतिहास, सांस्कृतिक धरोहर, और साहित्यिक योगदान के लिए सम्मानित करता है। दलित अस्मिता दलित समाज को उनकी स्थिति से उठाने और समाज में समानता की मांग करने में प्रेरित करती है। दलित अस्मिता की एक महत्वपूर्ण चुनौती उन्हें समाज में स्थान, सम्मान, और अधिकारों के लिए लड़ना है। इसका अर्थ है कि वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हैं, उनकी आवाज़ को सुनी जाए, और उन्हें समाज के समान भागीदार के रूप में स्वीकार किया जाए। दलित अस्मिता उन्हें स्वतंत्रता, समानता, और न्याय की प्राप्ति के लिए उत्तेजित करती है।

भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था एक प्राचीन सामाजिक प्रणाली है जो भारतीय समाज को चार वर्णों में विभाजित करती है: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। यह व्यवस्था वेदों और पुराणों द्वारा स्थापित की गई है। "जाति व्यवस्था ऊँच-नीच की भावना पर आधारित रही है। अतः यह एक समतामूलक समाज की स्थापना के मार्ग में व्यवधान उत्पन्न करती है।"1 जाति प्रधानभारतीय समाज में प्रत्येक वर्ण का अपने काम और कर्तव्य का स्पष्ट विभाजन होता है। ब्राह्मण (पुरोहित/पंडित) इस वर्ण का मुख्य कार्य धर्मशास्त्रों का अध्ययन और धार्मिक कार्य होता है। वे यज्ञ, पूजा, और अन्य धार्मिक कार्यों का निर्देशन करते हैं। क्षत्रिय (राजा/शासक) इस वर्ण का प्रमुख कार्य समाज की रक्षा करना और न्याय सुनिश्चित करना होता है। वे युद्ध, राजनीति, और प्रशासन का कार्य करते हैं। वैश्य,व्यापारी इस वर्ण का मुख्य कार्य व्यापार और वाणिज्यिक कार्य होता है। वे वस्तुओं की व्यापारिक गतिविधियों में लगे होते हैं। शूद्र, कामगार/श्रमिक वर्ण का मुख्य कार्य अन्य वर्णों की सेवा करना होता है। वे कृषि, अध्ययन, और सेवा क्षेत्रों में काम करते हैं। भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के अलावा, दलित और आदिवासी समुदायों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अनुसूचित जनजाति) के रूप में गिना जाता है। इन समुदायों को पहले छूट नहीं थी, लेकिन समकालीन समाज में समाजिक विशेषाधिकार, उत्पीड़न, और अन्याय के

खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं। भारतीय समाज में समाजिक अन्याय और असमानता के खिलाफ संघर्ष के रूप में विभिन्न समाजिक आंदोलन और विचारकों के समूह दलित, आदिवासी, और अन्य वंचित समुदायों की पहचान और उनके अधिकारों की समर्थन कर रहे हैं।

दरअसल दलित अस्मिता दलित समाज की गरिमा और सम्मान को संवेदनशीलता से देखने और महसूस करने का एक माध्यम है। यह उन्हें समाज में अपनी स्थिति को स्वीकार करने और समाज में समानता और न्याय की मांग करने के लिए प्रेरित करती है। दलित अस्मिता को प्रज्वलित करने का महान कार्य भारतीय संविधान के निर्माता बाबासाहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी ने किया। उन्होंने दलितों को उनके अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा दी और उन्हें समाज में समान भागीदार के रूप में स्वीकार करने की प्रेरणा दी। उनके विचारों और कार्यकलापों ने दलित समुदाय को सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने दलितों को उनके अधिकारों के लिए लड़ने की शक्ति और साहस दिया, जिससे उन्होंने समाज में उनकी गरिमा और सम्मान को पुनः स्थापित किया।

दलित अस्मिता और डॉ.आंबेडकर

डॉ. भीमराव अम्बेडकर दलित अस्मिता के एक महान संघर्षक और नेता थे। उन्होंने अपने जीवन के दौरान दलितों के अधिकारों, समाजिक समानता, और न्याय के लिए संघर्ष किया। उन्हें भारतीय संविधान का निर्माण किया और उसमें समाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक समानता के लिए महत्वपूर्ण उपायों को शामिल किया। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के अधिकारों की लड़ाई में अपने जीवन का बहुत बड़ा समय और ऊर्जा लगाया। उन्होंने दलितों को शिक्षा, सामाजिक एवं राजनीतिक उत्थान, और समाज में समानता के लिए संघर्ष किया। भीमराव रामजी अंबेडकर एक भारतीय न्यायविद्, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक थे जिन्होंने दलित बौद्ध आंदोलन को प्रेरित किया और अछूतों (दलितों) के प्रति सामाजिक भेदभाव के खिलाफ अभियान चलाया। दलित शब्द को अम्बेडकर द्वारा लोकप्रिय बनाया गया, जिन्होंने दलितों की परिभाषा में उनकी जाति पर विचार किए बिना सभी दलित लोगों को शामिल किया। "दलित अस्मिता" एक महत्वपूर्ण और गहन विषय है, जो दलित समुदाय की आत्म-सम्मान और समाज में उनकी स्थिति के पुनर्स्थापन को संदर्भित करता है। इसका मतलब है दलितों की अपनी स्वाभिमानपूर्ण और स्वायत्त व्यक्तित्व की मान्यता करना, जो उन्हें उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करने और समाज में समानता की मांग करने के लिए प्रेरित करता है। "बीसवीं सदी में हर क्षेत्र-राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक में दलित जागरण के स्वर सुनाई देते हैं। सामाजिक स्तर पर दक्षिण भारत में ई.वी. रामास्वामी नायकर (पेरियार), पश्चिम में ज्योतिबा फुले व डॉ. अम्बेडकर। राजनीति के क्षेत्र में अखिल भारतीय स्तर पर डॉ. अम्बेडकर दलित जागरण व दलित अस्मिता का प्रतीक बनकर उभरते हैं। सांस्कृतिक क्षेत्र में दलितों का बौद्ध धर्मान्तरण व साहित्य क्षेत्र में दलित साहित्य की सशक्त प्रवृत्ति का उदय ऐसे कदम हैं, जिनसे बीसवीं सदी का दलित जागरण बड़ी मंजिलें तय करता है।"2 आज हम देखते हैं कि दलित अस्मिता की प्राप्ति में साहित्य, कला, फिल्म, सामाजिक आंदोलन, और राजनीतिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इन सभी क्षेत्रों में दलितों की अनुभूतियों, भावनाओं, और समस्याओं को समाज के सामाजिक सार्वजनिकता में प्रस्तुत किया जाता है और उनके समान अधिकारों की मांग की जाती है। दलित अस्मिता दलित समुदाय के सदस्यों के बीच सामाजिक समानता, न्याय, और स्वतंत्रता की अनुभूति को बढ़ावा देता है और उन्हें उनके अधिकारों की रक्षा करने के लिए प्रेरित करता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'अब और नहीं' काव्य संग्रह में अभिव्यक्त दलित अस्मिता

हिंदी साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम अत्यंत आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। दलित अस्मिता को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने वाले श्रेष्ठ रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, सन् 1950 ई. को उत्तर प्रदेश के जिला मुजफ्फरनगर, गाँव बरला में एक दलित जाति में हुआ था। अत्यंत प्रतिकूल परिस्थिति में उन्होंने अपनी पढाई पूरी की। छात्रावस्था से ही उन्हें जाति-भेद का दंश झेलना पडा। भारतीय समाज में गुणों की अपेक्षा हमेशा जाति और वर्ण को ही देखा जाता है। विकृत जाति व्यवस्था का परिचय ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को छात्रावस्थासे ही होना शुरू हो गया था, "मेरी कक्षा में एक धोबी का लड़का था। मैंने उससे कहा । उसने शाम को घर आने के लिए कहा। शाम को वर्दी लेकर मैं उसके घर गया। मुझे देखते ही उसका बाप चिल्लाया, "अबे, चूहड़े के किंघे घुसा आ रहा है?" उसका बेटा उसके पास खड़ा था। मैंने कहा, "वर्दी पर इस्तरी करानी है।" "हम चूहड़े-चमारों के कपड़े नहीं धोते, न ही इस्तरी करते हैं। जो तेरे कपड़े पे इस्तरी कर देंगे तो तगा हमसे कपड़े न धुलवाएँगे, म्हारी तो रोजी-रोट्टी चली जा गी..." उसने साफ-साफ जवाब दे दिया था। उसके इस उत्तर ने मुझे हताश कर दिया था। बिना कुछ कहे, मैं उलटे पाँव लौट आया था। मन भारी हो गया था। ईश्वर से भरोसा उठ गया था। गरीबी और अभाव से किसी तरह निबटा जा सकता है, जाति से पार पाना उतना ही कठिन है।"3 परंतु शिक्षा के प्रति उनके मन में लगाव के कारण अनेक बाधाओं के बावजून वे पढते रहे। अपनी पढाई का पैसा जुटाने के लिए उन्हें अनेक प्रकार के काम करने पडे। इसी बीच उन्हें ऑर्डिनेस फैक्टरी, देहरादून में एप्रेंटिस का काम मिला। पढाई अधूरी छोड कर आजीविका के लिए उन्होंने यहीं पर नौकरी की। ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं "पढ़ाई से रोटी का सवाल मेरे लिए सर्वोपरि था। पढ़ाई अधूरी छोड़कर ऑर्डनेस फैक्टरी प्रशिक्षण संस्थान, जबलपुर और फिर अम्बरनाथ, बंबई से तकनीकी शिक्षा हासिल की जो आज भी मेरे जीविका के साधन है।"4 भारत सरकार के शस्त्र निर्माण विभाग में वे कार्यरत रहे। नौकरी के दौरन अनेक जगहों पर स्थानांतरण हुआ अंबरनाथ, मंबुई, चंद्रपर तथा देहरादून से वे सेवानिवृत्त हो गये। अपने सेवाकाल के दौरना वे महाराष्ट्र में रहे। यहीं पर उन्हें दलित आन्दोलन की उर्जा मिली थी और यहीं पर वे 'दलित पैंथर' से जुड़े। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं "चंद्रपुर में रहते हुए ही मैंने दलित आन्दोलन की उर्जा अपने भीतर संजोई थी। दलित आन्दोलन की अद्भुत तेजस्विता के दर्शन मैंने इसी क्षेत्र में किए थे। अपने-आपको इस आन्दोलन के साथ जोड़ने में मुझे जो आत्मसंतुष्टि मिली, वह एक अनोखा अनुभव था।"5 महाराष्ट्र में रहते ओमप्रकाश वाल्मीकि जी आंबेडकरवादी आंदोलनों से जुड गए। परिवर्तनवादी सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सहभाग लेते लेते उनकी वैचारिकी सुदृढ होती गयी।

'अब और नहीं...' ओमप्रकाश वाल्मीकि का तीसरा कविता-संग्रह है। इस संग्रह का प्रकाशन सन् 2009 ई. में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने प्रस्तुत कविता-संग्रह अपने अम्मा और बाबा को समर्पित किया है। 'अब और नहीं...' कविता-संग्रह का शीर्षक बेहद सांकेतिक है। सदियों से गुलामी और जिल्लत की जिंदगी जीनेवाला दलित समाज और अन्याय नहीं सहन कर सकता। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी प्रस्तुत काव्य संग्रह की भूमिका में लिखते हैं -"अब और नहीं... संग्रह की कविताओं में ऐतिहासिक संदर्भों को वर्तमान से जोड़कर मिथकों को नए अर्थों में प्रस्तुत किया हैं।"6 अब और नहीं...वाल्मीकि ओमप्रकाश, भूमिका प्रस्तुत काव्य संग्रह में कुल इक्कावन कविताएँ समाविष्ट हैं।

'अब और नहीं..' काव्य संग्रह की प्रत्येक कविता अपने-आपमें दलित अस्मिता का ज्वलंत दस्तावेज है। प्रस्तुत कविता संग्रह को ओमप्रकाश वाल्मीकिजी के विवेकसंपन्न चिंतन का निचोड कहा जा सकता है। एक

स्थापित कवि के रूप में सुविख्यात होने के बाद जिम्मेदारियाँ बढ जाती है। लेखन में एक धार आ जाती है। यही सब कुछ हम 'अब और नहीं..' काव्य संग्रह में देख सकत हैं। लेखा-जोखा कविता में दलित अस्मिता का अत्यंत तेजस्वी रूप हमारे सम्मुख आता है -

"तपती दुपहर में / रजवाहे की नालियों में
बहते गंगाजल से / बुझायी प्यास अनेक बार
बिना हिसाब किये-/ कितनी रेत समायी पेट में
कितना पानी बदला लहू में / फिर भी,
न गंगा ही अपनी हो सकी / न रजबाहे की रेत ही
शिवालय के दरवाज़े से दूर / खड़े होकर माँगी मन्नतें
सही दुत्कार बामन की / यह सोचकर-
कभी तो खुलेगा दरवाज़ा / अपने लिए भी "7

आगे कवि लिखते हैं, न दरवाजा ही खुला कभी/ न देवता ही अपना हो सका"

" इसलिए तय कर लिया मैंने
नहीं नहाऊँगा ऐसी किसी गंगा में
जहाँ पंडे की गिद्ध-नज़रें गड़ी हों
अस्थियों के बीच रखे सिक्कों
और दक्षिणा के रुपयों पर
विसर्जन से पहले ही
झपट्टा मारने के लिए बाज़ की तरह ! "8

कवि का यह तय करना कि 'नहीं नहाऊँगा ऐसी किसी गंगा में' दलित अस्मिता का बेबाक एवं मार्मिक उदारण है।ओमप्रकाश वाल्मीकि अत्यंत संयत शब्दों में अपना विद्रोह और नकार यहां प्रकट करते हैं। दलित अस्मिता की प्रमुख पहचान अमानवीय एवं विकृत सांस्कृतिक परंपराओं का भंजन करना रही है।जो प्रथा-परंपराएँ मानव को मानव के रूप में नहीं देखती, उनमें भेद करती हैं तथा मुख्य रूप से जो अवैज्ञानिक हैं, ऐसे परंपरओं को तोडने का साहस दलित कविता में दिखाई देता है।

दलित साहित्य की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि यह साहित्य नितांत वैचारिक तथा सत्यनिष्ठ रहा है। दलित साहित्य में बाबा वाक्य को प्रमाण नहीं माना जाता बल्कि विवेक को ही प्रमाण माना जाता है। इसलिए पुराणों तथा अन्य कल्पित ग्रंथों में लिखी गयी कहानियों की पुनर्व्याख्या करना, सत्य को विवेक की कसौटी पर

कसते हुए प्रस्तुत करना दलित साहित्यकारों की विशेषता रही है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 'किष्किंधा' कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। बालि और सुग्रीव की इस कथा का अंतर्निहीत सत्य वे हमारे सामने लाते हैं।

"किष्किन्धा रोई थी उस रोज़

जार-जार

अंधेरे में मुँह छिपाकर

जूझना पड़ा था बालि को

बाहर आने के लिए

हटाना पड़ा था पत्थर

जो अवरोधक था उजाले का।"9

राम ने सुग्रीव को बाली को कुश्ती में चुनौती देने का निर्देश दिया, लेकिन चूंकि दोनों भाई एक जैसे दिखते थे, इसलिए राम भ्रमित हो गए कि अपने तीर का निशाना किस पर लगाएं। इसलिए, राम ने सुग्रीव को विजय का प्रतीक एक माला पहनने के लिए कहा। फिर युद्ध फिर से शुरू हुआ और जल्द ही बाली राम के तीर से मरकर गिर गया। राम ने सुग्रीव को किष्किंधा का राज्य पुनः प्राप्त करने में सहायता की। बाली के पुत्र अंगद ने रावण के विरुद्ध युद्ध में सहायता की थी। घायल बाली ने राम से उसे मारने का कारण पूछा जबकि वह उसका शत्रु नहीं था। यहां ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने बालि और सुग्रीव की लड़ाई को एक नये परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया है। शंबूक, एकलव्य, बालि, सुग्रिव, कर्ण, सीता ये सब के सब मिथक वर्ण-जाति वर्चस्व के पक्षधर कवियों ने रचे हैं। परंतु यही मिथक दलितों की प्रगाढ जीवन निष्ठा और विद्रोह का प्रतीक बन गये हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से पौराणिक धर्म ग्रंथों की भेद जनित भ्रामकता का खंडन किया है।

दलित अस्मिता का प्रमुख आधार व्यक्ति की स्वंत्रता है। दलित अस्मिता दलित समाज को उनकी स्थिति से उठाने और समाज में समानता की मांग करने में प्रेरित करती है। दलित अस्मिता की एक महत्वपूर्ण चुनौती उन्हें समाज में स्थान, सम्मान, और अधिकारों के लिए लड़ना है। दलित संवेदना का कवि व्यक्ति का मूल्य जाति और धर्म के नाम पर निर्धारित नहीं करता बल्कि मानव के रूप में जन्मजात अधिकारों के आधार पर करता है। लोकतांतिक व्यवस्था में व्यक्ति का मूल्य समाज होता है। परंतु आजादी के बाद दलित-उपेक्षित व्यक्ति राशन कार्ड पर चढा हुआ एक यूनिक है अथवा मतपेटी में डाला जानेवाला एक काग़ज का टुकडा या बटन है। ओमप्रकाशजी लिखते हैं -

"रौशनी के उस पार / जहाँ आदमी मात्र एक यूनिट है

राशन कार्ड पर चढ़ा हुआ/ या फिर काग़ज़ का एक टुकड़ा

जिसे मतपेटी में डालते ही / हो जाता है वह अपाहिज़

और दुबक रहने के लिए अभिशप्त भी"10

डॉ.अम्बेडकर के मुक्ति-आन्दोलन ने यहां के दलितों में एक नई चेतना पैदा की। इस चेतना के फलस्वरूप दलित साहित्य की रचनात्मकता का अविर्भाव हुआ। दलित साहित्य मानवीय संवेदनाओं की तथा हाशिए के बाहर के समाज की सशक्त अभिव्यक्ति बना। दलितों की आवाज जो हजारों साल से दबाई गयी थी। दलित समाज सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक दृष्टि से कमजोर तथा अभावग्रस्त था। उनका जीवन पूरी तरह से नारकीय बन कर रह गया था। ऐसे दलित शिक्षा पाकर मुखर हो उठे, स्वाभिमान और अस्मिता की लड़ाई लड़ने के लिए डटकर खड़े हो गये। यही दलित चेतना जब साहित्य क्षेत्र में गरज उठी तो एक नया तेजस्वी साहित्य निर्माण हुआ। "दलित साहित्य केवल दलितों के अधिकार और उनके जीवन-मूल्यों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक सन्दर्भों के साथ जुड़कर समूचे समाज की अस्मिता और मूल्यों की पहचान बना है। इसी तरह दलितों की वेदना का स्वर दलित साहित्य की अन्तर्धारा का पर्याय है। यह वेदना हजारों वर्षों की है। यह वेदना सिर्फ 'मैं' की नहीं, समूचे समाज की वेदना है। इसीलिए सामाजिक यथार्थ दलित साहित्य का प्रमुख स्वर है।"11 दलित अस्मिता में स्वाभिमान (Self-respect) का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यहाँ पर दलित समुदाय के सदस्य अपने व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को समझते हुए अपने अधिकारों की मांग करते हैं। दलित अस्मिता में स्वतंत्रता का महत्व भी होता है। यहाँ पर स्वतंत्रता का मतलब है दलित समुदाय के सदस्यों की स्वतंत्रता से अपने जीवन और कर्मक्षेत्र को निर्धारित करने की क्षमता। समानता (Equality) दलित अस्मिता में समानता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यहाँ पर समानता का मतलब है समाज में सभी वर्गों के सदस्यों के बीच समानता और न्याय की मांग करना परंतु सामाजिक सच्चाई कुछ और ही बयां करती है। आज भी समाज में विभेद और विद्वेष का बाजार गर्म है।

"तुमने बना लिया जिस नफ़रत को अपना कवच

विध्वंस बनकर खड़ी होगी रू-ब-रू एक दिन

तब नहीं बचेंगी शेष / आले में सहेजकर रखी बासी रोटियाँ

पूजाघरों में अगरबत्तियाँ, धूप और नैवेद्य / नहीं सुन पाओगे

बच्चों का खिलखिलाना / चिड़ियों का चहचहाना"12

धर्म के नाम पर समाज में नफरत फैलाने का काम कट्टरपंथियों द्वारा किया जा रहा है। यह नफरत की आग में न जाने क्या-क्या राख हो जाएगा इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी युगदृष्टा कवि थे। उनके द्वारा लिखित 'विध्वंस बनकर खड़ी होगी नफरत' इस कविता में जो लिखते हैं वह आज सच होता नजर आ रहा है।

ओमप्रकाश वाल्मीकिजी मानव मूल्य चेतना के महाकवि के रूप में विख्यात हैं। दलित कविता की पहचान को स्पष्ट करते हुए डॉ.कँवल भारती कहते हैं - "दलित कविता उस तरह की कविता नहीं है, जिसे आमतौर पर कोई प्रेम या विरह में पागल होकर गुनगुनाने लगता है। यह वह कविता भी नहीं है, जो पेड़-पौधों, फूलों और नदियों, झरनों और पर्वतमालाओं की चित्रकारी में लिखी जाती है। यह किसी का शोक गीत और प्रशस्तिगान भी नहीं है। दरअसल यह वह कविता है, जिसे शोषित, पीड़ित, दलित अपने दर्द की अभिव्यक्ति करने के लिये लिखता है। यह वह कविता है, जिसमें दलित कवि अपने जीवन के संघर्ष को उतारता है। यह दमन, अत्याचार, अपमान और शोषण के खिलाफ युद्धगान है। यह स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व-भाव की स्थापना और लोकतंत्र की प्रतिष्ठा

करती है, इसीलिए इसमें समतामूलक और समाजवादी समाज की परिकल्पना है। संक्षेप में, दलित कविता जाति और वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करने वाली दलितों द्वारा लिखी गयी क्रांतिकारी कविता है।"13 इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'बस बहुत हुआ..' संग्रह की कविताओं की कविताओं में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने परम्परागत धारणाओं को खारिज करते हुए नयी चेतना तथा नयी अस्मिता का शिल्पविधान गढा है। समाज व्यवस्था में व्याप्त जाति और वर्ण से संबंधित प्रश्नों को तथा समस्याओं को वाणी प्रदान करने का काम ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने किया है। यह कविताएँ दलितों की अस्मिता को जाग्रत करते हैं। वैचारिक प्रेरणास्त्रोतों के प्रति नितांत निष्ठा रखकर लिखी गयी यह कविताएँ दलितों में आत्मसम्मान जगाने का काम करती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकी की कविताएँ आंदोलन का क्रांतिगीत बन गयी हैं।

निष्कर्ष -

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविता हिंदी दलित साहित्य की अमूल्य निधि है। हम देखते हैं कि ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविता पारम्परिक हिंदी कविता से संवेदना तथा भाव की दृष्टि से अत्यंत भिन्न है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता के माध्यम से सदियों से शोषित और दमित जनों के मौन को तोडते हैं। वर्ण वर्चस्वादी मनुवादी संस्कृति की असलीयत को उजागर करने वाली यह कविताएँ वास्तव में विद्रोह और निर्माण का अद्भुत समन्वय लेकर चलती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता एक आंदोलन का हिस्सा है। जिन दलितों की कोई पहचान और अस्मिता नहीं थी ऐसे समूदाय को चेहरा प्रदान करनेवाल यह कविताएँ है। ओमप्रकाश वाल्मीकि संविधाननिष्ठ लोकतंत्र पर अडीग निष्ठा रखने वाले विचारक तथा लेखक हैं। लोकतांत्रिक समाज निर्माण का संकल्प लेकर ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने लेखकीय उत्तरदायित्व निर्ववहन करते दिखाई देते हैं। दलित अस्मिता एवं मानव-मूल्य को केंद्र में रखकर लिखी गयी 'अब और नहीं...' की समस्त कविताएँ वास्तव में मानवीय वेदना और संवेदना को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करती है।

संदर्भ संकेत -

1. भारत में राजनीतिक प्रक्रिया, डॉ.जोहरी तथा अन्य, पृष्ठ 104
2. दलित साहित्य: एक मूल्यांकन, लाल चमन, पृष्ठ 61
3. जूठन, वाल्मीकि ओमप्रकाश, पृष्ठ 28
4. –वही-,पृष्ठ 95
5. –वहीं- ,पृष्ठ 121
6. अब और नहीं...,वाल्मीकि ओमप्रकाश, भूमिका
7. अब और नहीं, वाल्मीकि ओमप्रकाश, पृष्ठ 09
8. -वही-पृष्ठ 12
9. -पृष्ठ- 22-23
10. -पृष्ठ- 86
11. दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ,ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ 98
12. अब और नहीं, वाल्मीकि ओमप्रकाश,पृष्ठ 90
13. दलित कविता का संघर्ष, भारती कँवल, पृष्ठ 13

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी कहानियों में किन्नरों की अस्मिता

प्रा. डॉ. वीरश्री व्ही. आर्य
हिन्दी विभागाध्यक्षा
वैधनाथ कॉलेज परळी वैजनाथ

आज चांदी के तुकड़ों के बदले, इमान खरीदे जाते हैं।
एक रोटी देकर अबला के, अरमान खरीदे जाते हैं।
शौतानों की इस दुनियां में, इन्सान खरीदे जाते हैं।
हैवानों की इस दुनियां में, भगवान खरीदे जाते हैं ।

आज किन्नरों को साधारण जन मानस एक और भगवान स्वरूप मानकर उनसे आशिर्वाद लेने के लिए रूपये, रूपी कागज के टुकडे उनपर बहाल करते हैं और दूसरी ओर उन्हें समाज का हिस्सा ही नहीं मानते। स्त्रियां किन्नर दिखते ही अपने बच्चों को पीछे छिपा लेती हैं और पुरुष वर्ग उनका मजाक उड़ाते उन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करते दिखाई देते हैं।

21 वीं सदी की वर्ष 2011 की जनगनना नुसार 'देश के ट्रांसजेण्डरों की संख्या 4.88 लाख है। फिर भी वे समाज में हीन दर्जे के ही माने जाते हैं। जिस इरावन की एक रात की पत्नी कृष्ण' बने थे और दूसरे दिन उसकी बली महाभारत युद्ध विजय हेतु चढ़ा दी गयी थी और स्वयं कृष्ण उस समय मोहिनी रूप में रोये व विलाप किया था। उसी मोहिनी के पती और अर्जुन पुत्र इरावन को किन्नर देवता' मानते हैं। आज भी तमिलनाडु में विल्लुपुरम स्थित' 'इरावन मंदिर' में सारे किंनर लाखों की संख्या में आकर एक दिन की इरावन की पत्नी बन रातभर जश्न मनाते और सुबह उसकी मृत्यु की पीड़ा से छाती पिट-पिट कर विलाप करते हैं।.

'चौकाने वाली बात है कि थर्ड जेंडरों की पहचान वाली कुल जनसंख्या का 66 प्रतिशत आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है। डॉ. विमल ग्यानोबाराय सूर्यवंशी ने ऐसे ही ग्राम किन्नरों पर संशोधन कर ग्यारह लेखकों की किन्नरों पर आधारित कहानियों को अपनी पुस्तक 'थंर्ड जेण्डर चर्चित कहानियों' में संपादित किया है। जिसमें किन्नरों में निहित प्रेम, दया, करुणा, कोध पीडा, संवेदना उनका उत्पीडन और सामाजिक उत्पीड़न के साथ अपनी अस्मिता के लिए लड़ते संघर्षरत किन्नरों की गाथाओं का वर्णन है।

शिवप्रसाद सिंह की चर्चित कहानी 'बिन्दा महाराज' ऐसे किन्नर की कहानी है जो घूरविनवा नामक लड़के की वासना का शिकार बनते-बनते बच जाता है पर उसकी नजर बिन्दा महाराज को एक टक निहारने लगती है। जिसे देख बिन्दा महाराज बिगड़ा, "इस तरह क्या देखता है बे , हम क्या कोई रंडी-मुंडी हैं एँ ! कुचकुचवा जैसी आँख फाड़कर मत देखा कर।" 1

जब देर तक घूरविनवा वैसे ही उसे ताकता रहा और बिन्दा महाराज के पास घिसक आया तो वह घबरा गया उसने कहा - "बिन्दो रानी!" हम तुमसे परेम करते हैं। बिन्दा को क्या खयाल आया कि वह तमककर उठा और घूरविनवा का हाथ पकड़कर झोकते हुए चिल्लाया, "भाग बे हरामजादा| इसका दीदा न देखो | दुनियाभर का रोंघट पोतकर देह में सटा आता है: चमार सियार की जात हूँ, कैसा जमाना आ गया है, बड़े-छोटे का कोई विचार नहीं ।" 2 "विन्दा की फटकार से वह घूरविनवा उससे दूर तो हटा पर उसके शब्दों से वह बिन्दा महाराज की

निजी पहचान पर चोट कर गया। "हम क्या दीपू मिसिर से खराब हैं, बिन्दो रानी।" और बिन्दा हाथ में बड़ा-सा ढेला उठाए कोध के मारे काँपने लगा था।

अस्मिता अपनी निजी पहचान के साथ साथ उस क्षेत्र और समाज की पहचान भी है जो हमारे संदर्भ तय करती है। बिन्दा महाराज के साथ उसके चचेरे भाई का दस-बारह साल का लड़का करीमा ढोलक लेकर चलता, एक दिन पैसे बटोरने में दोनों की हथेलियाँ टकराई और करिमा, बाप के कहे शब्दों को दोहराने लगा "हिजड़ा! मैं तेरे साथ शोहदा नहीं बनूँया।''3 बिन्दा महाराज आहत अभिमान का बोझा उठाये खड़ा था। उसकी अपलक आँखें जड़ित शीशे की तरह गतिहीन धूमिल और उसने चटाक से एक थप्पड करीमा के गाल पर जड़ दिया और "मैं तुसे शोहदा बनाता हूँ बे, हरामी'' बोल खुद ही रोने लगा। परिणामस्वरूप उसी दिन लड़ झगडकर उसके चचेरे भाई ने उसे घर से निकाल दिया।

आत्मसम्मान केवल स्त्री और पुरुष का ही नहीं होता किन्नरों का भी होता है। व्यक्ति तब तक नहीं मरता जब तक वह स्वयं खुद को न मार दे। राही मासूम रजा की 'खलीफ अहमद बुआ' कहानी इसी बात को दर्शाती है। रुस्तुम खाँ और खलिफ अहमद बुआ जहाँ रहते थे, उनका दाम्पत्य भी वहीं सुखी था। लोग जितनी बार चिल्लाते, नारे लगाते। 'खलीफ अहमद बुआ मर गई' उतनी बार वह लड पडती गालियाँ देती। पर एक दिन जब यह नारा लगा तो उसने पलटकर एक शब्द भी न कहा, क्योंकि सच ही वह मर गयी थी। क्योंकि उसका रुस्तम खाँ अब पुखराज के कोठी' पर जाने लगा था। एक रात जब खलीफ अहमद खां ने देखा की रुस्तुम पिछले दरवाजे से पुखराज के घर जा रहा है, तो वह सामनेवाली सीढी से ऊपर चढ़ गए।

पुखराज रुस्तुम खाँ के मुँह में पान का बीडा रखने ही वाली थी कि खलीफ अहमद बुआ को देखकर उसका हाथ रुक गया।-

''रूक क्यों गई मालजादी ?" वह कोई ढाई-तीन मिनट तक बोलते रहे.....।

''छिनाल । लौंडा रखनी .....''

" क्या बकती हो? " पुखराज ने घुडका।

" हम बकना रहे।" खलीफ चमके "हम तो डेढ बीत काई लिआए हैं.....।'' उनके हाथ में एक चाकू कहाँसे आगया उसका जवाब पुखराज बाद में पुलिस को भी न दे पायी... खलीफ अहमद बुआ रूस्तम पर टूट पड़े, ''हम का अपनी जवानी तोरे पीछे यह मारे गँवाया है कि हमार कमाई का पईसा ई किराए की बच्चेदानी के गुल्लक में फेंको.....?''4 खलीफ अहमद बुआ ने रूस्तम को मार डाला ! और उस रात पुखराज के कोठेपर यह साबित हो गया कि, सुहाग, सुहाग होता है, फिर चाहे वह किसी हीजड़े का ही क्यों न हो !

किरण सिंह द्वारा लिखित 'संझा' रहेमान खेडा जैसे बंजरपुर, मुरसीमान और गुलरपुर चौगांव के वैद्य की बेटी संझा की कहानी है, जो जन्म सेही सतमाई थी। जिसे वैदजी ने बचपन से ही दवाईयों का ज्ञान कराया पर् वह थी तो हिजड़ा इसलिए ललिता महाराज के गोद लिए बेटे' कनाई 'से संझा का विवाह हो गया। चौगांव के मंदिर के पुजारी तीन दिन महावारी होते थे, ये बात संझा समझ गयी थी। संझा अपना आत्मसम्मान और गौरव बढ़ाने के लिए चाहती थी कि उसका कुल आगे बढे इसलिए उसने अपनी शारीरिक अक्षमता को पहचान बासुकि' को पति संग छोड़ चारों ओर पहरा देती और पति को भी ताकत की बुटी खिलाती। बासुकि गर्भवति हुई तो उसके चचेरे भाई ने पुरे गांव को इकट्ठा किया और कनाई तथा संझा के खिलाफ खड़ा कर दिया। लोगों की भीड ने कनाई से सच

बुलवाया की वह नपुंसक है और संझा हिजडा है। चौगांव के लोग आक्रोश में चिल्लाए :-" वह तीस साल से सबको धोखा देकर हमारे बीच रह रही है।"

''उसने चौगाँव की माटी को, बन को, नदी को, मैला किया है।" इसको नग्न करके इसका बाल मुंड दो। मुँह पर कलिखा पोतकर पुरी चौगाँव में मारते हुए घुमाओ । इसके बाद लोगों को खबर कर दो इसे आकर ले जाएं।"5

चौगाँव के लोगों में संझा को नंगा करने की होड़ मची थी। उसकी माँ की सफेद धोती हवा में छोटे-छोटे टुकडों में उछल रही थी । चौगाँव के जवान, मर्द उत्तेजना में चिल्ला रहे थे कि देखे हिजडे का कैसा होता है?

वह चिल्लाई जिस सच्चाई को छिपाने के लिए तीस साल संझा और उसके पिता ने डरते-डरते व्यतीत किये थे उस सच्चाई के खुलने का ही डर था, खुल गई तो अब डर कैसा?

चौगाँव के एक एक आदमी की कुंडली संझा के पास थी अपने गौरव को लुटने पिटते देखा तो उसकी भी अमिता जाग गई और वह दहाड़ी-न '' सुनो चौगाँव के बासिंदो!'' हवा को काटती संझा की भिगी आवाज ऐसी लग रही थी जैसे बहुत सारे जल पंछि, फड़फड़ा कर उडे हो-

"एक पर सौ, तुम सब मर्द हो?"

''ये ललिता महाराज आदमी है, जो माह में तीन दिन खुन रिझाता रहता है और मै हिजडा?'' मैं गर्भपात की औषधि लेकर रोज रात को न बैठू तो, तुम मर्दों के मारे चौबासे की लड़कियों को नदी में कूदने के सिवाय क्या रास्ता है? तुम सबकी मर्दानगी जनानगी के किस्से नाम लेकर सुनाऊँ क्या?.....।''

''न मै तुम्हारे जैसी मर्द हूँ। न मै तुम्हारे जैसी औरत हूँ। मैं वो हूँ जिसमें पुरुष का पौरूष है और औरत का औरत पना।''6 अन्त में संझा को अपने पिता की गददी प्राप्त हो जाती है।

चाहे स्त्री हो या पुरुष अपनी 'मैं' की प्रतिमा को बनाये रखना चाहते हैं पर किन्नरों के मैं हूँ की सच्चाई बरदास्त नहीं कर पाते तथा मौका पाते ही किन्नरों की बेज्जती करते दिखाई देते हैं। ऐसे ही रामलली के परिवार में बधाई देने आये हिजड़ों की जब बेज्जती हुयी तो उन्होंने क्या किया उस को डॉ. लवलेश अपनी कहानी 'बहुआ' में दर्शाते है। हिजड़ोंने रामलली के परिवार से हुयी बेज्जती को अपनी अस्मिता से जोड़ लिया और घर से जाते-जाते उन्हीं में से एक काला हिजडा वहीं घर के द्वार पर खड़ा-खड़ा कोसता हुआ उस घर के लिए बदूआ देता है - "आए...हाय... अल्ला से डरो बाबू....हम हिजड़ों को बेइज्जत करके घर से निकाला है... जा मेरी बद्दुआ है कि तेरे घर हिजड़ा पैदा हो... हिजडा।"7 और सच ही रामलली का बेटा मुरली जनानी हरकते करता हुआ कब हिजड़े में परिवर्तित हो जाता है यह रामलली भी जान नहीं पाती और उसके बेटे को एक दिन हिजडे पकड़कर अपने साथ ले जाते हैं तब किसी भी मुहल्लेवाले ने या सिफाहियों ने उसकी कोई मदत नहीं की।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, वाल्मिकी रामायण के उत्तराखण्ड मे उधृत किन्नर स्त्री-पुरुष की कहानी वो पूरा कथ्य नहीं बताती' जो वैज्ञानिक युग के सत्य की कहानी है। विज्ञान स्पष्ट रूप से दर्शाता है क किन्नरों की उत्पत्ति भी स्त्री-पुरुष' के संयोग से ही होती है। किन्तु गर्भ धारणा के तीन महिने के अन्तराल' तक अगर माता (कसी ऐसी दवाई। जो शरीर में गर्मी पैदा करती हो का सेवन अधिक प्रमाण में या किसी 'बिमारी वश भी कर लेती है, तो उसका भ्रूण पर विपरित परिणाम होकर उसकी वृद्धि में वह रुकावट पैदा करती है। और जन्म लेने वाली संतान स्त्री-पुरुष दोंनो के लिंग के साथ उत्पन्न होती है। या फिर केवल लिंग के नाम पर 'छेद' के साथ। लेकिन

मुश्किल तो तब होती है, जब पूर्ण पुरुष रूप में पैदा हुआ बालक, युवावस्था में पहुँचता है तो स्त्री गुणयुक्त हो जाता है। और स्त्री मुंछोंवाली मर्दानी नजर आने लगती है। ऐसे बच्चों की परेशानी तो तब बढ़ती है,जब वे 12 से 15 वर्ष की उम्र के पड़ाव में होते हैं और अचानक स्कूलों में, कॉलेजो में, पारिवारों में, समाज में उनकी ओर देखने का तथा व्यवहार का रवैय्या एकदम परिवर्तित हो जाता है। ऐसे ही बच्चे अपनी अस्मिता खो बैठते हैं और अपने गौरव तथा आत्मसम्मान को पाने की जीवन भर या फिर कहें की मृत्युपर्यंत कोशिश करते रहते हैं।

वर्ग-भेद, वर्ण-भेद, जाति-भेद, रंग-भेद ये सब तो व्यक्ति सहज स्वीकार कर लेता है और सहन भी कर लेता है परंतु जो शरीर का भेद ईश्वर ने इन थर्ड जेण्डर के रूप में मनुष्य के साथ किया है। उसे तो केवल और केवल हिजडा ही सहन कर सकता है बड़े-बड़े प्रवचन, उपदेश, भाषण देनेवाले व्यक्ति भी उनकी पीड़ा को क्या ही सहेगे और समझेंगें, जो व्यवहार आज उनसे होता है वैसा तो कोई दुश्मन के साथ या फिर जेलों में भी नहीं होता है। पर फिर भी सहर्ष भाव से अपनी पीड़ा को सहता हिजड़ा सहजता, सहनशीलता और संवेदना के भावों को अपने में समाहित रखे हुए है तभी तो उनकी अस्मिता को पहचान दिलाने हेतु 19 जुलाई 2016 की केन्द्रिय कैबिनेट में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता मे ट्रांसजेण्डर पर्सन्स (प्रोटक्शन ऑफ राइट) बिल को मंजूरी दी गयी और किन्नरों को पहचान पत्र देने से लेकर उनकी पढ़ाई-लिखाई, स्कॉलरशिप घर, नोकरी, स्वास्थ्य जैसी सभी बुनियादी सुविधाएं उन्हें मुहैय्या हो रही हैं। तभी तो वर्ष 2017 में 23 ट्रांसजेंडरों को बतौर कर्मचारी कोच्चि मेट्रो में भरती की गई और अप्रैल में पहली ट्रांसजेंडर पुलिस अधिकारी बनी तमिलनाडू की पृथिका यशिनी (सब इंस्पेक्टर) जुलाई 2017 में कोलकता में जन्मी 'नोजा मंडल पहली ट्रांसजेंडर जज बनी जो आज पश्चिम बंगाल के इस्लामपुर की लोक अदालत में जज हैं। गुगल बताता है की कृष्णानगर मोहला कॉलेज में भारत की पहली प्रिंसिपल बनी - मानवी बंदोपाध्याय, पहली ट्रांसजेंडर वकील-सत्यश्री शर्मिला, चुनाव लडनेवाली पहली ट्रांसजेंडर-मुमताज (पंजाब BSP की प्रत्याक्षी, भारत की पहली ट्रांसजेंडर विधायक-शबनम मौसी (MP के शहडोल जिले के सोहागपुर से चुनाव जिता। विशाखापटनम नौसेना में शामिल प्रथम ट्रांसजेंडर सैनिक-शब्बी इन जैसे किन्नरों को देख समाज, देश का मान बढ़ता है। फिर क्यों इन्हें अपनी अस्मिता के लिए लढ़ना पड़ता है। मेरे विचार से "जिस दिन किन्नर पढ लिख कर अज्ञानता को मिटायेंगे और कोच्चि जैसे स्कूल, कॉलेज हर राज्य, जिले, गावों मे चलेंगे तभी वे भी स्वाभिमान से सीर ऊँचा और तना सीना लेकर अमरिका के किन्नरों की तरह भारत जी पाएंगे।

एक हो ! चिर प्रेम की गंगा बहाने के लिए ।
जाग उठो ! इन्सानियत के मूल्य लाने के लिए ।
उठो बढो ! हैवानीयत 'के महल ढ़ाने के लिए ।
सांसद में चल पडो अधिकार पाने के लिए ।
उठ खड़े हों ! अस्मिता अपनी बचाने के लिए ।
बढ़े चलो! फिर किन्नरों, क्रांति लाने के लिए।।

संदर्भ सूची

1. थर्ड जेण्डर चर्चित कहानियाँ - संपा. डॉ. विमल ग्यानोबाराव सूर्यवेशी प्र.10
2. वही. पृष्ठ. 11
3. वही- पृष्ठ: 14
4. वही. पृष्ठ, 21-22 .
5. वही, पृष्ठ.43
6. वही. पृष्ठ - 44-45
7. वही पृष्ठ,83

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

सत्तरोत्तर कवयित्रियों की कविता में नारी विमर्श

प्रा. डॉ. सिंधू हाळदे

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, दगडोजीराव देशमुख कला महाविद्यालय
वालूज (छत्रपति संभाजीनगर)

शोधनिबंध का सारांश :

वर्तमान काल में किसी भी देश का श्रेष्ठत्व और उसकी सभ्यता को आंकने के दो दृष्टिकोण अनिवार्य से हो गये है। एक तो उस देश में नारी का स्थान और दशा क्या है? दूसरी ओर उस देश की औद्योगिक उन्नति कहाँ तक पहुँची है?

वैसे नारी की दो विशेषताएँ ही उसकी कमजोरियाँ है। एक वह अत्यन्त संवेदनशील है और दूसरी रुप वृत्ति | उसमें अत्यन्त सहनशीलता, प्रेम और उदारता आदि प्रवृत्तियों ने उसे कमजोर बना दिया गया है परन्तु वर्तमानकालीन विपरीत परिस्थितीयों के बीच नारी को अपनी कमजोरियों से मुक्ति तथा अपना सही अधिकार प्राप्त करना है।

आज व्यक्ति, परिवार, समुह, वर्ग, समस्त समाज की केवल भौतिक उन्नति हुई है। मनुष्य समृद्ध हुआ है परन्तु उपरी तौर पर वह रुढ़ियो का विरोध करने का दिखावा करता है परन्तु अपने अंतर से वह उन्हीं से बंधा है। (रमनीका गुप्ता, पृ.क्र.16) नारी के प्रति उसकी दृष्टि अभी भी बदली हुई नहीं है। वही अहम, वही पशुता, भोगपरक तथा अधिकारी वृत्ति परन्तु यह सब वह बहुत ही सुन्दर अंदाज से करता है। बालिकाओं की हत्या करना, बेटीको बेटे की अपेक्षा कम प्यार, दुलार, स्नेह देना उसे शिक्षा से दूर रखाना। हर दिशा हर वर्ग में नारी का शोषण हो रहा है। उसका शोषण अधिक क्यों होता है यह मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा में कमी, समाजिक, आर्थिक दायरे में सीमित नारी और उत्थान में बाधक परम्पराएँ। आज के नये जमाने में नारी की आत्मनिर्भरता तथा आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों स्वाधिनता में परिवर्तन होना आवश्यक है।

नारी हर बार नयी मुसीबतों का सामना झेलते आयी है। (निशा निशांत, पृ. 60) कभी वह गर्भ में ही मारी जाती है तो कभी भीडभरी सडक पर उसे जिंदा जलाया जाता है। जो कुछ हम फिल्मों और विभिन्न टीवी चैनलों पर देखते हैं, वह आज प्रत्यक्ष और परोक्ष में हमारे सामने आ रहा है। समाज में बढ़ती संवादहीनता, उँच-नीच और अमीरी-गरीबी की खाई इतना विभत्स रुप ले लेगी यह सोचकर रुह काँप जाती हैं। यह काई विश्व की पहली घटना नहीं है। दर्जनों बार इस तरह की घटनाएं इस देश में घटती है।

इन घटनाओं से जब वह बच जाती है, तो नरक सा जीवन उसके नसीब आ जाता है। कभी शरीर, मन का शोषण होता रहता है। हर तरह से उसके नसीब में अन्याय अपमान ही है। धार्मिक बंधन, दर्शन, समाज व्यवस्थाओं, नैतिक नियमों तथा केवल स्त्री शरीर के कारण तरह-तरह के अन्याय से वह पीडित होती ही रही है। इस बात के लिए उसे ही जिम्मेदार ठहराया जाता है परन्तु समाज व्यवस्थाएँ इसके लिए कितनी कारणमय बनी है। इस पर कोई सोचता नहीं। निश्चय ही नारी की मुक्ति होनी चाहिए। स्त्री को सबला बनना ही आज की आवश्यकता है। (डॉ. पद्मा पाटील, कादम्बिनी, पृ. क्र. 41-42) नारीवादी आन्दोलन की जरुरत बन गयी है। घर-घर में घुटती स्त्रियों,

लड़कियों को अनेक उपेक्षित, शोषित महिलाओं को जागरुक होना चाहिए। इन्हें सम्पूर्ण दृष्टिकोन से सबला एवं क्रांतिकारी बनाने के लिए आज अनेक संस्थाएँ कार्यरत है। 'आर्य कन्या संस्कार प्रतिष्ठान ' ऐसी ही एक संस्था है।

महिलाओं पर होनवाले अत्याचारो में हुई वृद्धि को मद्देनजर रख कर उनकी आत्मरक्षण की आवश्यकता तथा उसका प्रशिक्षण आज अनिवार्य ही हुआ है। इसीलिए आर्य कन्या प्रतिष्ठान की स्थापना की गई है। इसके अन्तर्गत अनेक कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है। आज तक जो लडकियाँ, महिलाएँ घर में बैठकर केवला खाना बनाना, परोसना, सिलाई-कठाई, बुनाई का काम करती रही है। वे इस संस्था के कारण पुरुष से कन्धा से कन्धा मिलाकर चल रही है। हर क्षेत्र में महिलाओं का योगदान है। चाहे वह अध्यापन का क्षेत्र हो, चाहे सशस्त्र सेना या पुलिस विभाग। यहां तक कि राजनीति एवं पत्रकारिता व लेखन के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। आजकल महिलाएँ कम्प्युटर, पर्यटन, हवाई उडान, खेल आदि कार्य भी करने लगी है। शनैशने महिला अपने दायित्व ओर अपने अधिकारों के प्रति क्रियाशील व जागरुक हो रही है।

समाज के अत्याचारों को सहने की जगह नारी डटकर प्रतिशोध ओर मुकाबला कर रही है। इस कारण नारी शिक्षा का प्रमाण बढ़ गया है। आज विश्वविद्यालय तक जिसमें नारी का अधिक योगदान है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी व शिक्षित नारी अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा चाहती है। जिंदगी के महत्वपूर्ण निर्णय उसके अपने होते है। अपनी व्यक्तिगत आजादी को वह महत्व देती है। वही वैवाहिक जीवन के अंतसूत्र की लय को वह बनाये भी रखना चाहती है। अब उसे समाज और परिवार में सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा है। व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में उसके अपने निर्णय है। परम्परागत मूल्यों से संघर्ष करके अपने व्यक्तित्व की खोज की प्रक्रिया में वह लगी है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बन गयी है इसलिए वह आत्मविश्वासी दिखाई देती है। वह शिक्षित हो रही है। परिवेश के प्रति सतर्क है।

शोधकार्य के पश्चात यह स्पष्ट होता है कि कवयित्रियों की कविता में नारी सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टिकोण तथा नवीन चेतना अभिव्यंजित हुई है। युग-युग से पीडित शोषित नारियों का जीवन सुधारने की सबल इच्छा विकसित एवं जाग्रत करने का कार्य उनकी कविता में दृष्टिगोचर होता है। निश्चित ही कवयित्रियों की कविता नारी की स्थिति में उन्नती, प्रगति करने की आकांक्षा लिए अग्रसर हुआ है। अब निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि भावी सदी नारी के विकास की सदी नहीं, नारी के वर्चस्व की सदी होगी।

भूमिका :

सृजनशीलता का नाम स्त्री है। संस्कृती, परम्पराओं की सुरक्षा, कलाओं की वृध्दी उसी की सुजनशीलता का परिणाम है। समाज की सभ्यता का स्तर उस समाज में होनेवाले स्त्री के स्थान पर निर्भर करता है। प्रकृति की दी हुई दुर्बलता को झटककर अपनी स्वतंत्र तथा सम्मानित पहचान बनाने में स्त्री निरन्तर प्रयत्नशील है। प्राचीन काल से ही परिवशे, पर्यावरण, अग्निसंरक्षण, कृपितंत्र का अवलम्बन, वंशसातत्य के साथ अनुशासन तथा पारिवारिक दायित्वों का वहन सहयोग की क्रिया में अपने एक अहम् स्थान का निर्माण करने में स्त्री आदिकाल से लेकर आज तक सतर्क रही है। उद्वेलित भावनाओं की अभिव्यक्ति उसने कविता के माध्यम से की है। सृजनशीलता की अभिव्यक्ति स्त्री के आत्मनिर्णायक कविता में होती है।

हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता में कथा लेखिका का क्षेत्र सीमित रहा है। वह काव्य या साहित्य की दृष्टि अत्यन्त समृद्ध तथा सम्वेदनशील होते हुए भी केवल सामाजिक मर्यादाओं के कारण बहुत कम योगदान दे पायी है। आज परिस्थितीयों में परिवर्तन हुआ है, होता जा रहा है | हिन्दी काव्यजगत् में अपनी काव्य कृतियों के

माध्यम से ध्रुवपद प्राप्त करनेवाली अनेक कवयित्रियाँ है। उनहोंने अपनी कविता के सृजन से अपना विशिष्ट स्थान निर्माण किया है।

अनेक स्त्रियाँ विभिन्न क्षेत्रों में अपना अस्तित्व बना पायी हैं। कथात्मक साहित्य सृजन में प्रेमचन्द युग से ही लेखिकाएँ थी। काव्य के क्षेत्र में भी अनेक स्त्रियां अपनी पहचान बना पायी है। सत्तरोत्तरी संग्राम के विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों ने उसके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकृत किया और स्वतंत्र भारत के संविधान ने उसे पूर्ण सुरक्षितता दे दी।

विकास के सभी अवसर उसे प्रदान किए। परिणामतः इन पचास वर्षों के अन्दर भारतीय स्त्री अनेक क्षेत्रों में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने में सफल हो गयी है। एक तरह यह स्त्री अपनी परम्परागत रुढीयों संस्कारों का पालन भी कर रही है तो दूसरी ओर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए कार्यरत है। इसी परिवर्तित होती जा रही परिस्थितियों, परिवेश को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम साहित्य भी है। कवयित्रियों द्वारा साहित्य की विभिन्न विधाओं में से कविता विधा में 'स्त्री' का व्यक्तित्व, अस्तित्व निखर आया। (हम प्रस्तुत आलेख में 1975 के बाद की कविता के विकास में कवयित्रियों का योगदान देखते है।)

कवयित्रियाँ :

शांति सुमन, अमृता भारती, मालती शर्मा, इन्दु जैन, सावित्री डागा, कुसुम अंसल, सुमन वशिष्ठ, स्नेहमयी चौधरी, शांति मेहरोत्रा, रमणिका गुप्ता, अरुणा कपूर, मणिका मोहिनी, शशि शर्मा, सुनिता जैन, किरण जैन, सुमन जैन, कीर्ति चौधरी, अर्पिता अग्रवाल, शीला गुजराल, प्रमिला शर्मा, पद्मशा, सुमति अय्यर, मीन सिंह, पुष्पलता कश्यप, राजकुमारी कौल, कमल कुमार, रमासिंह, प्रेमलता वर्मा, सविता सिंह, दिनेशनंदिनी डालमिया, अचला शर्मा, मनोरमा तिवारी, सुधा गुप्ता, रत्नकुमारी, राजेश्वरी अग्रवाल, तारा पाण्डेय, सुभद्रा खुराना, प्रभा खेतान, डॉ. पदमा पाटील, डी माधवी, मंजु महिमा, अर्चना वर्मा, पद्मजा घोरपडे, कात्यायनी, कीर्ति केसर, गगन गिल, इन्दु वशिष्ठ, अनामिका, निशा निशान्त, वीण सिंह, सुशीला कपूर आदि अनेक कवयित्रियाँ कविता के क्षेत्र में सक्रिय हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि उत्तरराती के पश्चात के काल में जो कवियित्रियाँ सृजन में कार्यरत हुई उनकी संख्या प्रशंसनीय है।

कवियित्रियों की कविता में नारी विमर्श :

इस काल की कवयित्रियाँ की अभिव्यक्ति केवल नारी विषयक आक्रोश की भावना, वैयक्तिक, आंतरिक धरातल तक सीमित नहीं रही है। उनकी कविता में सामाजिक, राजनीतिक संदर्भ, भ्रष्ट राजनेताओं पर व्यंग्यात्मक तीव्र प्रहार, आर्थिक विषमता, पारिवारिक संबंध, शोषण, गरीबी, भूखमरी, बेकारी आदि के उल्लेख मिलते है। इसके साथ ही उन्होंने स्वतंत्रता की मांग की है तथा लज्जा, संकोच का त्याग करने का प्रयास किया है।

यह कवयित्रियाँ अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए उन परम्परागत मूल्यों का विरोध कर रही है, जिनके बोझ से वह स्वनिर्णय की शक्ति को खो चुकी थी। आज वह जमाना नहीं रहा। आज की स्थिति ऐसी है कि पति के दुत्कारने पर भी उन्हीं के चरणों में रोटी की मजबूरी के लिए लिपटी रहना वह पसंद नहीं करती। आज रोटी से अधिक महत्व है उसकी अपनी प्रतिष्ठा एवं स्वतंत्रता का। कवयित्रि मालती शर्मा ''आक्टोपस के पेट में बचा एक बीज'' कविता में सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाती है और परम्परागत धार्मिक रुढ़ियों का विरोध करती है । वे कहती हैं –

''मैं / दीवार क संधों में फँसी

बट वृक्ष का अंकुर हूँ।मेरे चारों ओर

जकइती हुई ऊँची, ठोस दीवारें हैं

औपचारिक रुढ़ियों का। तंग होता कसाव है

पर। मैं ये दीवारे फोड दुंगी।'[1] पृ. 50

कवयित्रि 'रमणिका गुप्ता' ने नारी की स्वतंत्र अस्मिता और अस्तित्व के लिए पुरुष के मेधावी और आक्रमक व्यक्तित्व के साथ निरन्तर संघर्ष करती नारी की उज्जवल तस्वीर प्रस्तुत की है।

''उसे आगे बढ़ने की बेहद इच्छा थी।

पति ने हाथ थामने को कहा।

उसने टाल दिया फलतः बुरी तरह पिटाई हुई

वह लडखड़ाकर गिर पडी उठकर आगे बढी।

पति ने हाथ बढाकर रोका

लेकिन उससे हाथ हटाकर कदम रखा।[2] पृ.24

इनमें से अनेक कवयित्रियाँ ने समाज में प्रचलित परम्परागत राढ़ियों का विरोध किया और स्वतंत्र अस्तित्व की मांग की है। उन कवयित्रियों में से 'पदमा' नारी की आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, स्वतंत्र अस्तित्व, परम्परागत मतों द्वारा चित्रित तथा आरोपित अबला व्यक्तित्व को नकारते हुए उसे सबला और पुरुष प्रधान संस्कृति को आहवान देनेवाली 'स्त्री' के रुप में चित्रित करती हैं।

''छाया जा रही था

सूरज के पीछे-पीछे

छाया सोचने लगी

मेरी काई अहमियत नहीं?

क्या मेरा कोई अस्तित्व नहीं?

उसके पीछे जाना ही

है मेरी नियति?

रुकी वह

सांस ली

उसकी अस्मिता जागृत हुई

मन टटोला, दुःख पहचाना

महसूस किया कि वह

शीतलता, ठंडक बनाए रख सकती है

सूरज ही उस पर निर्भर है।[3] पृ. 41, 42

इस प्रकार कवयित्रि 'शशी शर्मा' ने भी स्त्री के गरिमामय अलग व्यक्तित्व को उभारने की बेहद कोशिश की है।

''कब तक तलाश ते रहोगे

सिर्फ एक मां, बहन, प्रेमिका या पत्नी

इन सींखचो से बाहर भी कोई है – जो

सदियो से अपने वजूद को । सहलाती आ रही है।''[4] पृ. 86

इन कवयित्रियों की कविता में रुढ़ियों एवं संकीणर्ताओ की भर्त्सना में कवयित्रियों की जागरुकता एवं चेतना की काव्यात्मक व्यंजना देखी जा सकती है। कुछ कवियित्रियों की कविताओं में वर्तमान में राजनीतिक व्यवस्था, भ्रष्ट चरित्र राजनीतिक ढोंग पर व्यंग्यात्मक कड़े प्रहार भी किये गये हैं। कवयित्री 'शांति सुमन' ने कहा है, 'नेता खतरनाक सांप है, दंगे भड़काते रहते हैं। खुद एअरकन्डीशन्ड बंगलो में नशे में है। असहाय जनता इससे पड़ित है। इसका मार्मिक चित्रण 'बयान' कविता में दृष्टिगोचर होता है।

''नेता लाशों के नारों पर

जय-जय देश का क्ण्डा फहराता है

आश्वासनों की बैसाखियों पर घिस-घिस के सबेरा

चीखती चिल्लाती जिन्दगी में सब कुछ जाति

वाचक सर्वनाम के बदल गया है

रेल के कगार सी ठहती आस्थाएं

कठघरे में बन्द न्याय के

भयानक षड़यंत्र को उजागर करती है

उस विस्फोट में मरे हर व्यक्ति के नाम

सरकार ने दो सौ रुपये दिये

आतंक की आंधी उडाले गई सभी - गांव नगर

एक गहरी खोह का मुंह खुला है।'' पृ. 4

कुछ कवयित्रियों की कविता में राजनीतिक व्यवस्था के साथ आर्थिक विषमता की अभिव्यक्ति हुई है। कवयित्री 'शांति सुमन' अपनी कविता में कठिण परिश्रम करनेवाला किसान, रोटी, कपडा, मकाना, कर्ज के बोझ से परेशान है।

''बडा पाप है भूखा रहना। सदियों तक नंगापण सहना

बाहां - सी अपनी फसानों का खेतों में मालिक से बंटना

वे चढ़े हुए शोषण रथ पर। उनके पहिए की धुरी - पकड़ा।''[6] पृ. 22

इस तरह कवयित्री 'सुधा गुप्ता' ने कहा है किसान कठिन परिश्रम कर रहा है, उसकी कमर दुःख रही है। रोटी की तलाश में इधर-उधर भटक रहा है। इतना ही नहीं, जीवन के भागम-भाग और अनेक समस्याओं से घिरे मानव को स्वाभाविक रुप से नींद लेना भी दूर हो गया है। कवयित्रि 'कुसुम अंसल' की 'अनुभूती' नामक कविता इस युगीन संत्रास को उजागर करती है।

''नीन्द, गोलियों के

चमकीले गुलाबी कागज में बन्द है

आंखो में कही है।'' पृ. 55

कई कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में युगीन विषमताओं को वाणी देने का सफल प्रयास किया है। उनकी अनेक कविताओं में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संदर्भो आदि के सजीव चित्र भी दिखाई देते हैं। कवयित्रि 'निशा निशान्त' ने 'पंगड्डी का सफर' कविता में मिथक के आधार पर नारी की विवशता, दयनीयता को रेखांकित किया है। ''फिर आओ तुम'' कविता में कवयित्रि मर्यादा पुरुषोत्तम राम को प्रश्नों के कटघरे में खडा कर केवल उन्हें उत्तर नहीं मांगती तो राम को पुनःअवतार लेने की चुनौती देती है।

''आज का युग। उस युग में। व्यथित और विघटित हैं।

आज मानव जाति। दुःखो से ग्रस्त है। भयावह वातावरणों से त्रस्त है।

पौराणिक बातों में मुझे तो विश्वास नहीं। तुम

इस युग में लों अवतार तो जाने | फिर से | सब को

एक सूत्र में बांधो तो माने।[8] पृ. 60

इनमें से अनेक कवयित्रियों ने मिथकों के द्वारा नारी जीवन के अनेक प्रश्नों को उठ खडा किया है। कुछ कवियित्रियों में जरुर दयनीयता, विवशता भी देखी जा सकती है। परन्तु प्रधानता, अलिप्तता तथा आह्वान की रहा है। सुमन राजे, रश्मि मल्होत्रा, पद्मा पाटील, महिमा भटनागर आदि कवयित्रियाँ उल्लेखनीय है। कुछ कवयित्रियों की कविता में प्रकृति चित्रण भी दृष्टिगोचर होता है। डॉ. सुधा गुप्ता ने कहा है, पेडों को मत काटो, चिडियां कहां रहेंगी। प्राकृतिक सन्तुलन का बिगड़ना तात्पर्य पर्यावरण का असंतुलन मनुष्य के लिए भी हानिकारक है। मनुष्य भी प्रकृति का नाश कर रहा है। प्रकृति की सुरक्षा होना अनिवार्य है। कवयित्रि सुनीता जैन की कविताएँ प्रकृति तादात्म्य से परिपूर्ण है। चिड़िया का पुराना खेत कौंठो से भर गया है। 'भूलती जा रही हूँ', कविता में दर्द से कह

रही है, सबुह-सुबह चिड़ियों का गाने और दाने चुगने के निमित आना द्वन्द हो जा रहा है। फूलों का खिलना और ऋतुओं का बदलना भी विस्मृत होता जा रहा है। और सबसे भयानक यह की मानवीय सम्बन्ध टूटते जा रहे है।

''तुम ही कहो

अब

कैसे जीते?''[9] पृ. 19

इस तरह कवयित्रि 'रमणिका गुप्ता' मानव मुक्ति के लिए निरन्तर संघर्षरत रही है और उस संघर्ष से अपने सर्जन को भी समृद्ध करती रही। वे मनुष्य होने के नाते सौन्दर्य को प्यार करती हैं। सौन्दर्य चाहे भावनीय हो चाहे प्राकृतिक यही कारण है कि प्रकृति के देखे हुए प्रसंगों की प्रस्तुति मानवीय उपस्थिति से और अधिक रमणीय मालूम पड़ती है।

''कैसे गुनगनाऊँ

गीत की वह धुन

कि गा उठें अफ्रिका के काले-काले

जंगल।

मुक्ति के गीत।''[10] पृ.16

उत्तराती की कवयित्रियों के प्रकृति चित्रण में विविधता है। वह कहीं जन-जीवन से जुडी हुई है तो कहीं परिवेश से जुडी हुई दृष्टिगोचर होती है।

निष्कर्ष :

1) कवयित्रियों ने अपनी कविता में ऐसी 'स्त्री' का वर्णन किया है जो परम्परागत मतों द्वारा चित्रित तथा आरोपित अबला व्यक्तित्व को नकारतें हुए उसे सबला और पुरुष प्रधान संस्कृति को आवाहन देनेवाली 'स्त्री' के रुप में चित्रित किया है।

2) इसके साथ ही भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था तथा उनके ढोंग पर व्यंग्यात्मक कड़े प्रहार भी किए हैं।

3) इन कवयित्रियों की कविता में नारी सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टिकोन तथा नवीन चेतना अभिव्यंजित हुई है।

4) युग-युग से पीड़ित, शोषित नारियों का जीवन सुधारने की सबल इच्छा विकसित एवं जाग्रत करने का कार्य इनकी कविताओं में दृष्टिगोचर होता है।

5) इन कवयित्रियों का दृष्टिकोण, गरीबी, बेकारी, मजदूर किसानों के प्रति उदार रहा है। वे इन लोगों को आर्थिक अत्याचार से पीड़ित के रुप में देखती है।

6) उनकी कविता में अनेक नवीन कथ्य की अभिव्यक्ति हुई है।

संदर्भ :

1) मालती शर्मा, 'ऑक्टोपस के पेट में बचा एक बीज', वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृ. 50

2) रमणिका गुप्ता, 'तिल-तिल नूतन', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली 1999 पृ. 16

3) डॉ. पद्मा पाटील, 'कादम्बिनी', गंधबहर प्रकाशन, कोल्हापुर 1999 पृ. 41-42

4) शशि शर्मा, 'मौसम से कह दो', भावना प्रकाशन, दिल्ली 1992 पृ. 86

5) कमल कुमार, 'बयान', नेशनल पब्लिशिंग हाउस 1984 पृ. 4

6) सुधा गुप्त, 'अनचीन्हा परिवेश', भावना प्रकाशन, दिल्ली 1970 पृ. 66

7) कुसुम अंसल, 'विरुपीकरण', अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली 1986 पृ. 55

8) निशा निशांत, 'पंगड्डी का सफ़र', भारतीय प्रकाशन संस्थान, दिल्ली 1990 पृ. 60

9) सुमन राजे, 'एरका' नेशनल पब्लिशिंग हाउस 1990

10) मंजु महिमा, 'बोनसाई संवेदनाओं के सूरजमुखी', हिंदी साहित्य परिषद, अहमदाबाद पृ.60

11) सावित्री डागा, 'अपना अपना मोक्ष', राजस्थानी ग्रंथागार, राजस्थान, 1988

12) इंदु जैन, 'सबुत क्यों चाहिए', वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1993 पृ. 62

13) सुनीता जैन, 'सूत्रधार सोते है' वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1982 पृ. 19

14) दिनशनंदिनी डालमिया, 'हिरण्यगभी', नेशनल पब्लिशिंग हाउस 1984

15) कामिनी भटनागर, 'निजीगंध', अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली 1992

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिन्दी साहित्य में नारी अस्मिता और विमर्श

डॉ. विनोद श्रीराम जाधव

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग प्रमुख

एम. एस. एस. कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, अंबड, जिला जालना

साहित्य का मानव से घनिष्ठ संबंध है इस बात को हम सभी भलीभांति जानते हैं, साहित्य में मानव जीवन और उसके परिवेश को अनेक संवेदनात्मक विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है ।क्योंकि आलेख का शीर्षक "समकालीन हिन्दी साहित्य में नारी अस्मिता और विर्मश है", इसलिए हमें सबसे पहले समकालीन शब्द का अर्थ भी सारांश में जानना आवश्यक है। समकालीन यानि क्या...? व्युत्पत्ति के अनुसार.."समकालीन शब्द अंग्रेजी के कंटेंपरेरी' का हिंदी पर्याय है 'काल' और 'इन' प्रत्ययों से बने कालीन शब्द में 'सम' उपसर्ग जोड़ने से इसका निर्माण हुआ है, जहाँ काल का अर्थ होता है.. 'समय' और 'सम' का अर्थ होता एक जैसा..इस प्रकार समकालीन का अर्थ हुआ एक समय में होने वाला या रहनेवाला |"(१) नालंदा विशाल शब्द सागर में समकालीन के सबंधं में लिखा है.."जो एक ही समय में हुए हैं |"(२) लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोशगत में समकालीन का अर्थ "जो उसी काल या समय में जीवित अथवा वर्तमान में जी रहा हो, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी जी रहे हैं, या एक ही समय में रहने वाले |"(३) हिंदी शब्द सागर में समकालीन का अर्थ यह बताया... "जहां (दों या कई) एक ही समय में होते हैं, अथवा एक ही समय में होने वाले |"(४) डॉक्टर हुकुमचदं राजपाल समकालीन के सबंधं में लिखते हैं "समकालीन का सबंधं काल विशेष के वयैक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक स्थिति के अर्थ से रहा है इसीलिए इसे कंटेंपरेरी के पर्याय रूप में समझा जाता है |"(५)

हिंदी कोशगत में समकालीन शब्द का अर्थ इस तरह बताते हैं.. "एक ही समय का अपने जैसा या समवयस्क होता है | "समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना है | समस्याओं और चुनौतियों में भी केंद्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है |"(६) गहरे ऐतिहासिक मोह भंग के परिणाम स्वरूप आज की समकालीनता एक सर्वथा नई मुल्यवत्ता के संदर्भ पा सकी है, जो हमें मानव अस्तित्व की कठोर गतिविधियां, धर्म व कर्म के साथ राजनीति में हिस्सा लेने के लिए बाध्य करती हैं। समकालीनता न केवल एक मुहावरा है बल्कि आज की संश्लिष्ट वास्तविकता में प्रवेश करने का संकल्पित जीवन और प्रतिबद्धता की दृष्टि है । मात्र मनोरंजन के लिए लिखी जाने वाली कहानी आज सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक और यथार्थवादी रूपों से गुजरती हुई दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और भी अनेकानेक विमर्शों पर आ पंहुची है । अंतिम दशक की कहानियों में स्त्री अस्मिता और अस्तित्व की पुकार लगाते हुए अनेकानेक संगोष्ठियां और विमर्श हुए । हम कह सकते हैं कि इस काल की कहानियों में सामाजिक और पारिवारिक यथार्थ के ज्वलंत प्रश्नों की तरफ ध्यान अधिक आकर्षित हुआ है । हम देखते हैं कि तब से अब तक कई लेखिकाएं हिंदी साहित्य में अपने सफल सृजन के परचम फहरा रही है.. जैसे..मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मैत्रेई पुष्पा, प्रभा खेतान, अनामिका, नासिरा शर्मा, मृणाल पांडे, गीतांजलि श्री, सूर्यबाला, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, राजी सेठी, रमणिका गुप्ता और ऋचा शर्मा इत्यादि । लेखिकाओं ने अपने अपने तेवर को केंद्र में रख कर साहित्य का सृजन किया । इनके साहित्य में स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता के साथ साथ इन्होंने स्त्री की स्थिति का जायजा भी लिया और स्त्री विमर्श की दशा और दिशा भी कई मायनों में निर्धारित की।

वैसे तो नारी की उपस्थिति साहित्य में सदैव ही बनी रही । यहां तक कि हमें १२ सदी के साहित्य में भी स्त्री जीवन चित्रण मिलता है । बुद्ध रचित थेरी गाथाओं में भी स्त्री मुक्ति स्वर सुनाई देते हैं । प्रश्न यह है कि समकालीन साहित्य में स्त्रीवादी विचारों की क्या विशेषता है..? अस्मिता शब्द स्त्री और उसके समस्त जीवन से किस तरह गहराई से जुड़ा है..? "विमर्श" शब्द में ऐसी क्या नवीनता है..? अस्मिता के मायने नारी जीवन में.."नारी अस्मिता अपने स्थूल रूप में नारी की वैयक्तिकता, व्यक्ति या मनुष्य के रुप में उसकी गरिमा, प्रतिष्ठा तथा पहचान है जिसमे अपने जीवन पर खुद की सत्ता होती है । नारी अस्मिता उसके व्यक्तित्व की विशिष्ट और विलक्षण पहचान है जो उसके समाज की विलक्षण ऐतिहासिकता वास्तविक या मिथकीय अतीत से जोड़ती है।" अस्मिता के बारे मे आशा रानी वोरा कहती हैं.."हमारे यहां मुक्ति का अर्थ पुरुषों की सत्ता से मुक्ति का नही रहा है, जैसा कि पश्चिम देशों में रहा । राज्य व देश की आजादी का प्रश्न जब जब सामने आया पुरुषों की अनुपस्थिति में स्वयं सिर पर जिम्मेदारी से शत्रुओं को ललकारने में महिलाएं कभी भी पीछे नहीं रही ।"(७)

महादेवी वर्मा के अनुसार.."युगों के अनवरत प्रवाह में बड़े बड़े साम्राज्य बह गए, संस्कृतियां लुप्त हो गई, जातियां मिट गई, संसार में अनेक असंभव परिवर्तन संभव हो गए परंतु भारतीय स्त्री के ललाट में विधि की वज्र लेखनी से अंकित अदृष्ट लिपि नही धूल सकी ।"(८) स्त्रियों की अस्मिता लौटाने और अस्तित्व बचाने के लिए ही अनेकानेक संघर्ष, विद्रोह, संगोष्ठियां, चिंतन मनन और विर्मश हुए । डॉ. जया परांजपे "हिंदी नाटक और स्त्री विमर्श" में "विमर्श" शब्द का अर्थ स्पष्ट करती है.."विमर्श वस्तुस्थिति को स्वीकारने के बजाय वैकल्पिक रास्तों की खोज को उकसाने वाला तत्व है ।"(९) मृणाल पाण्डे कहती हैं .."नारीवाद पुरुषों का नही उनकी मानवीयता घटाने वाले छदम मुखोटे का प्रतिकार करता है । जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है, जिसके पीछे झूठी अहम मान्यताओं और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नही है ।"(१०)

हम कह सकते हैं कि जिस साहित्य में स्त्रियां अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है या वे अपना मार्ग स्वयं तय करती है, वही साहित्य उनकी अस्मिता और विमर्श वाला साहित्य बनता है । अंतिम दशक की महिला लेखिकाओं ने राजेंद्र बाला घोष, उषा देवी मित्रा, प्रेमचंद और यशपाल की परंपरा का निर्वाह बखूबी किया । अब लेखन कार्य का केंद्र न केवल मनोरंजन रह गया था, बल्कि समाज और व्यक्ति को भी केंद्र में रखा गया था। व्यक्ति मन, आपसी संबंध, मूल्य विघटन चिंता और चिंतन रिश्तों के विघटन की विडंबना और मानव जीवन की अन्य विसंगतियों का परिचय कहानी में दिया जाने लगा । विर्मश शब्द का अर्थ हिंदी शब्द कोश में.."विचार,विवेचन, परीक्षण, तर्क और समीक्षा ।"(११) रोहिणी अग्रवाल कहती है.."विमर्श यानी जीवंत बहस ।"(१२)

स्त्री के बिना पत्ता भी नही हिलता लेकिन उसके अस्तित्व का बोध किसी को नहीं होता । स्त्री परिवार और समाज की केंद्र बिंदु है । वह परिवार का विकास, बच्चों का संस्कार, पालन पोषण और भी अनेकानेक दायित्वों का निर्वाह करती है । आज से नही बल्कि बहुत समय पहले से ही स्त्री तथा पुरुषों के कार्यों तथा अधिकारों को लेकर एक विभाजक रेखा खींच दी गई है । अत्यंत अवसाद के साथ कहना पड़ रहा है कि अनगिनत प्रयासो के बावजूद भी यह रेखा मिटाई न जा सकी । बल्की गांव देहात में देख कर तो ऐसा लगता है जैसे इस रेखा में और भी अधिक चमक और गहरापन आ गया है । रघुवीर सहाय की इन पंक्तियों से कोमल किंतु कठोर नारी के बारे में अल्पांश में जानने का प्रयत्न करेगें..."वह कभी जरा सी बात पर खुश हो जाती है, इतनी खुश कि खुशी छिपा नहीं पाती । और थोड़ी ही देर में वह लाचार सी दिखने लगती है, जरूर कहीं कमज़ोर हो गई होगी।"(१३)

प्रसिद्ध कवियित्री ऋचा शर्मा संघर्ष से संघर्ष की प्रेरणा देते हुए कहती है.."सोचती हूं मैं...वह भी एक स्त्री है.. और मैं भी... उसके तन मन का संघर्ष मेरे वैचारिक संघर्ष से कितना कठीन और कितना महान है ।"(१४) हमारे देश मे मुगलो के आगमन के साथ ही बडी तत्परता से स्त्रियों के लिए संकीर्णता और परंपरा की चहारदीवारी खींच दी गई । संभवतः यह उस समय की मांग रही हो । वैसे तो वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी । गाड़ी के दो समान पहियों सा सरपट जीवन चलता था । परंतु मुगलों के आने से स्त्री..पुरुष, बहन..भाई, बेटी..बेटा के बीच ऐसी विभाजक रेखा खींची गई जो आज तक कहीं झिलमिलाती है तो कहीं पूर्णतः प्रकाशमान दिखती है । बाह्य रूप से कहीं यह रेखा यदि धुंधली दिखती भी है तो भी अंतर्मन के किसी कोने में स्थानापन्न रहती है । उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में समाज सुधार का मुख्य केंद्र नारी थी । सतीप्रथा, बहुविवाह, बालविवाह, दहेजप्रथा और पर्दाप्रथा जैसी कुरीतियां समाज का अभिन्न अंग बन गई थी । राजाराममोहन रॉय, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, महर्षि कर्वे, महात्मा ज्योतिबा फुले , एनिबिसेंट, सरोजिनी नायडू, और महात्मा गांधी जैसे महान समाज सुधारकों ने स्त्री समस्याओं को समाप्त करने की घोषणा की । परंतु कुरीतियों की जड़े इतनी गहरी थी कि पत्तियों तथा तने पर आघात करने से कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा था । ऐसे समय में साहित्यिक वर्ग की भूमिका महत्वपूर्ण थी । किसी एक की नही बल्कि पूरे समाज की सोच बदलनी थी । और यह काम साहित्य ही कर सकता है । महादेवी वर्मा कहती है.."घर और परिवार स्त्री की सबसे बड़ी समस्या भी है और समाधान भी । मेरे विचार से स्त्री का विकास घर परिवार की सीमाओं में अविकसित रह जाता है तो विकास के रास्ते भी वहीं पर मिल जाते हैं । जरुरत है, उसे खोजने की और परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेने की ।"

महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, आदि अनेक छायावादी रचनाकारों की कृतियों में नारी सशक्तिकरण की बात मिलती है । इनके पूर्व भारतेंदुजी ने "बाला बोधिनी" नमक पत्रिका का प्रकाशन किया जो स्त्री पर आधारित थी । बंग महिला से प्रसिद्ध राजेंद्रबाला घोष (दुलायीवाली) का नाम भी स्त्री विमर्श के संदर्भ में लिया जाता है । यह भी विवाद का विषय है कि स्त्री विमर्श भारतीय दिमाग की सोच है या पश्चिमी देशों से आयातित..? सन 1960 के दशक में स्त्री समस्याओं पर विचार किया जाने लगा । फ्रांसीसी लेखिका "सिमोन द बोऊवार" की पुस्तक "उपेक्षित स्त्री" प्रकाशित हुई । जिसमे लेखिका ने "नारीपन" इस नए शब्द का प्रयोग किया है । जहां नारीपन शब्द का अर्थ मातृत्व से नही लेते हुए उसके स्वभावगत कोमलता, भावुकता तथा कमजोरियों से है । इस कोमलता, भावुकता तथा अन्य कमजोरियों को दूर करना आवश्यक है तब ही लेखक का यह वाक्य सार्थक होगा.."नारी को नारीपन से मुक्त होना है ।"(१५)

1963 में प्रकाशित पुस्तक में बेट्टी फ्रिडेन के विचार से नारी को स्वतंत्र भी होना है और नारी अत्यंत शक्ति से संपन्न भी है । 1993 में प्रकाशित हुई "द फीमेल यूनेक" पुस्तक में जरमेंन ग्रियर लिखती है.."हम जानती हैं कि हम क्या हैं लेकिन यह नही जानती कि हम क्या हो सकती हैं या हो सकती थी..?" हम कह सकते हैं कि इन तीनों के नारी संबंधी विचार अपनी अपनी परिस्थियों की ऊपज है यह उनकी मनोभूमि है । लेखिका ऋचा शर्मा ने यह बात उठाई है कि भारत में स्त्रीविमर्श का अध्ययन करते समय भारतीय संस्कृति तथा परिवेश को समझना भी आवश्यक है क्योंकि पश्चिम देशों की लेखिकाओं के विचार उनके देश की परिस्थितिनुसार उपजे हैं जैसे सिमोन ने कहा कि "औरत पैदा नहीं होती है उसे बनाई जाती है ।" हम अमेरिका, भारत या पाकिस्तान में रहकर एक ही लड़की को एक जैसा बना सकते हैं क्या..? उत्तर होगा कदापि नहीं क्योंकि तीनों देशों की परिस्थितियां और सभी तरह के वे घटक अलग होंगे जो एक लड़की या औरत को बनाने में आवश्यक होते हैं।

सन साठ के दशक में ऐसी अनेक लेखिकाएं सम्मुख आई जिन्होंने स्त्री जीवन के हर एक पहलू को अपने साहित्य में बड़ी शिद्दत से उजागर किया जैसे शिवानी, मन्नू भंडारी, उषा प्रियमवदा और मृदुला गर्ग ।

वैसे तो हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की संकल्पना को ५वे और ६टे दशक से ही सामने लाया जा रहा था। ७वे और ८वे दशक आने तक तो ये संकल्पनाए मुद्दों, जिरहो व चर्चाओं में परिणित होने लगी थी । मन की गांठे खुलने लगी थी, आक्रोश नारों में बदल गया था । इन नारों और विद्रोह के स्वर ने साहित्याकाश को गूंजा दिया था । समकालीन हिंदी साहित्य में भी विरोध का चतुर्दिक गुंजीत स्वर और अधिक गूंजने लगा । अब से आगे नोवे और दसवें दशक में तो बहुत ही ज्यादा खुलकर स्त्री केंद्रित विषय आने लगें जैसे "स्त्री और सेक्स, स्त्री पुरुष संबंध परम्पराओं का विरोध, स्त्रियों का आक्रोश पुरुषों के वर्चस्व के खिलाफ, स्त्री के शारीरिक व मानसिक शोषण का विरोध इत्यादि । रांगेय राघव की "गदल", उषा जी की "मछलियां", मुद्रा राक्षस की "मातमपुरसी", मृदुला गर्ग की "कितनी कैदें", मार्कण्डेय की दूध और दवा", महिपसिंह की "सीधी रेखाओं के वृत्त", रामदरश मिश्र की "एक औरत";"एक जिंदगी" आदि । "भूमंडलीकरण के दौर में सामाजिक परिवर्तनों का गहरा प्रभाव स्त्रियों पर हो रहा था। समाज तथा परिवार में स्त्री की भूमिका तथा उसकी सोच को विषय वस्तु बनाकर खूब लिखा गया । अपने सृजन में इन सबने स्त्री को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से सफल होते दिखाया है । समकालीन कहानीकार स्त्री पात्रों को बलात्कार जैसी दर्दनाक घटना के बावजूद अवसाद में डूबते या अपराध में ग्रसित होते हुए नही दिखाया है।

अरुणा शीतेश अपनी कहानी "मोहरे" में बलात्कार की भुक्त भोगी लड़की को राजनीतिक मोहरा बनाने का विरोध करती है । इसी तरह चंद्रकांता की "आवाज" कहानी की नायिका विन्नी बलात्कारियों को अदालत में मृत्यु दण्ड देती है । इसी तरह "दहलीज पर न्याय" की नायिका बलात्कारी से स्पष्ट रूप से कहती है "यदि उसे उसके नन्हें बेटे की जान की परवाह न होती तो वह उसे मौत के घाट पर उतार सकती थी ।" समकालीन कहानियों में स्त्री विमर्श का स्वरूप "चंद्रकांता" कहानी के इस कथन से स्पष्ट होता है.."महत्वपूर्ण यह है की स्त्रीवाद की बहसों में उलझे बिना जमीनी सत्यता के साथ स्त्री संघर्ष को साहित्य में दर्ज किया जाए और आज ऐसा हो भी रहा है ।" सूर्यबाला, प्रभा खेतान, चंद्रकांता, मैत्रेयी पुष्पा, अनामिका, नासीरा शर्मा, सुधा अरोड़ा और ऋचा शर्मा जैसे अनेक नाम हैं जो स्त्री जीवन की जमीनी सच्चाई को बड़ी सहजता और स्वाभाविकता के साथ व्यक्त कर रहे हैं । मैत्रेई पुष्पा की "उज़्दारी", "भागो पगला गईं है" "तुम किसकी हो बिन्नी" और "बेटी" इसी तरह की कहानियां हैं।

सूर्यबला की कहानी "गीता चौधरी का आखिरी सवाल" एक ऐसा प्रश्न है जो हमारे मध्यमवर्गीय समाज की प्रत्येक लड़की पूछती है किंतु उत्तर नदारद है । मालती जोशी की बोल री कठपुतली कहानी की नायिका आभा का निम्नलिखित कथन है जो वह अपने पति से कहती है.."मैं चाहती हूं कि आप जाने कि यह मेरा शरीर यंत्रचलित नही है । इसके अंदर एक मन भी है, वही मन जो सुख दुख की परिभाषा जानता है । वह तो एक सरकारी नौकरी थी, फंदे की तरह गले में पड़ी हुई थी । आपके एक इशारे पर मैने उसे एक ही पल में उतार फेंका, लेकिन पीड़ा मुझे तब भी हुई थी । अब यह तो नौकरी नहीं है, यह तो मेरा अपना काम है, एक मिशन है, अपने खून पसीने से इसे मैने सींचा है। मैने आपको यह तो नहीं कहा कि इसे छोड़कर मैं नहीं आऊंगी पर छोड़ते हुए मुझे दुख तो होगा ही । क्या मेरा इतना भी हक़ नहीं ?

नासिरा शर्मा की कहानियां मुस्लिम समाज की स्त्रियों की स्थिति उजागर करती है । "बावली, पत्थर गली और ताबूत" इनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं । पत्थर गली कहानी की फरीदा मानो स्वयं पत्थर बनकर रह गई है । दूसरी लड़कियों की स्वतंत्रता देख कर वह कहती है..मैं पुरानी कहानियों की तरह शीशी में बंद करके रख दी गई हूं इतना ही नहीं बल्कि वह शीशी समुद्र में भी फेंक दी गई है । लहरों से चपेट खाती शीशी में मैं सब कुछ देख रही हूं, परंतु हाथ पैर फैलाकर तैर नही सकती बस पत्थर की मूरत की तरह बेहोश । इस दौड़ती भागती दुनिया में स्थिर खड़ी रहूं और बस। और अंत में समाज द्वारा निर्मित ऐसी ही अनेक परम्पराओं और रूढ़ियों के बीच स्त्री सदियों से पिसती रही । न उसने कभी परंपराओं के बंधनों को तोड़ना चाहा और ना ही स्वयं पुरुष ने उसे मुक्त किया । स्त्री को परंपरा और बंधन को तोड़ कर जीना यह "स्त्री आजादी" का अर्थ नही है ।"स्त्री आजादी" का अर्थ यह भी नही कि उसे भारतीय सामाजिक व्यवस्था में नही रहना है। स्त्री के साथ जुड़े शब्द इस बात के परिचायक है कि भारतीय जनमानस २१ वी शती में भी अपनी सोच और संकीर्ण मानसिकता को नही बदल पा रहा है । इसके उदाहरण ढूंढने के लिए कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं, घर बैठे दूरदर्शन और समाचार पत्र लगातार सूचना पहुंचाते रहते हैं । कहीं स्त्री को बैलगाड़ी में बैल के साथ जोत दिया है तो कहीं परंपरा की दुहाई देते हुए २१ वर्षीय विधवा भाभी का पुनर्विवाह ०८ वर्षीय देवर के साथ कर दिया। लिखते हुए दुख होता है कि बरसों बाद भी बाल विवाह, बहुविवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा और दहेजप्रथा जैसी कुप्रथाओं के उदाहरण हमारे समाज में सहज ही मिल जाते हैं । स्त्री शोषण के शारीरिक मानसिक और आर्थिक तीनों रूप यत्र..तत्र..सर्वत्र देखने को मिल जाते हैं । इस शोषण में कभी भी जाति, धर्म और शिक्षा भी आड़े नहीं आती है । व्यक्ति बदल गया, शोषण के तरीके बदल गए किंतु स्त्री का शोषण बदस्तूर ज्यों का त्यों बना हुआ है ।

स्त्री विमर्श एक "वाद" के रूप में जब आया तब उसमे एक तेज धार आ गई । २० वी शती के अंतिम दशक में विशेषकर लेखिकाओं ने अपने लेखन मे सारी मर्यादाओं को तोड़ दिया । अपने विचार और लेखन को संस्कारों या संकोच की बेडी से बंधने नही दिया । आक्रोशपूर्ण विचारों का तीव्र प्रवाह किसी बाढ़ से कम नहीं था। अनेकानेक कहानियां तथा उपन्यास तो लिखे ही गए साथ ही आत्मकथाएं भी तेजी से प्रकाशित होने लगी जैसे.. मैत्रेई पुष्पा की "कस्तूरी कुंडल बसे" तथा "गुड़िया भीतर गुड़िया", प्रभा खेतान की "अन्या से अनन्या" और मन्नू भंडारी की "एक कहानी यह भी" । समकालीन हिंदी कहानी में जो खुलापन तथा साहसिकता दृष्टिगत हो रही है उस पर डॉ. हरदयाल का वक्तव्य है.."छठे दशक में जब कृष्णा सोबती ने "यारों के यार, मित्रों मरजानी" लिखा तो वे चर्चा का विषय बनी थी, किंतु आज यदि मृदुला गर्ग "कितनी कैदे" और मधुमालती "अनावृत्ति" जैसी कहानियां लिखती है तो कोई सनसनी पैदा नहीं होती ।" आज के साहित्य में स्त्री विषय पर वैविध्य पूर्ण और यथार्थ चित्रण हो रहा है इससे पहले कभी नहीं हुआ । अंत में डॉ विजया के शब्दों में आलेख की समाप्ति करूंगा.."समकालीन हिंदी कहानी का स्त्री विमर्श तलख, बहु आयामी और प्रौढ़ बन गया है।" प्रसिद्ध शायर मजाज़ की पंक्ति पर गौर फरमाइए.."तू इस आंचल को परचम बना लेती तो अच्छा ही होता ।" अंततः यह कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श आंचल से परचम बनाने की ही प्रक्रिया है ।"

संदर्भ सूची

(१) व्युत्पत्ति के अनुसार... अंतरजाल से

(२) श्री नवलजी नालंदा..विशाल शब्द सागर.. पृष्ठ संख्या..१४०९

(३) सम्पादक बद्रीनाथ कपूर.. लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश.. पृष्ठ संख्या..८२७

(४) संपादक..श्यामसुंदर दास.. हिंदी शब्द सागर कोश पृष्ठ संख्या..२५०

(५) हुकुमचंद राजपाल..समकालीन बोध और धूमिल का काव्य.. पृष्ठ संख्या..११

(६) हिंदी कोशगत अर्थ... अंतर्जाल से

(७) आशा रानी वोरा..भारतीय नारी..दशा और दिशा.. पृष्ठ संख्या..१०

(८) महादेवी वर्मा.. श्रृंखला की कड़ियां.. लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद २००१, पृष्ठ संख्या २२

(९) डॉ. जया परांजपे..हिंदी नाटक और स्त्री विर्मश.. पृष्ठ संख्या ०२

(१०) मृणाल पाण्डे.. परिधि पर स्त्री..राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली..२०११, पृष्ठ संख्या..०९

(११) डॉ. हरदेव बाहरी.. राजपाल एंड संस.. नई दिल्ली..२०१५.. पृष्ठ संख्या..७५१

(१२) रोहिणी अग्रवाल..साहित्य की ज़मीन और स्त्री मन के उच्छवास.. वाणी प्रकाशन नई दिल्ली २०१४.. पृष्ठ संख्या १२

(१३) प्रा. आनंदमणि त्रिपाठी.. सृजन के विविध आयाम.. आदित्य प्रकाशन, लातूर.. पृष्ठ संख्या..३३०

(१४) ऋचा शर्मा..संघर्ष से संघर्ष की प्रेरणा.. सृजन के विविध आयाम..आदित्य प्रकाशन लातूर पृष्ठ संख्या..३३०

(१५) ऋचा शर्मा..समकालीन सृजन के विविध आयाम.. आदित्य प्रकाशन लातूर.. पृष्ठ संख्या..०६

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

'भगवानदास मोरवाल की कहानियों में दलित संवेदना'

प्रा. डॉ. अशोक शामराव मराठे
हिंदी विभाग प्रमुख
उत्तमराव पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय
दहिवेल तह. साक्री जि. धुले.

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था पीढी-दर-पीढी चलती आ रही है । समाज मे जब समाजिक व्यवस्था अव्यवस्थित होना शुरू होती है तब उसको व्यवस्थित बनाये रखना साहित्यकारों का मूल लक्ष होता है । साहित्यकारों का समाज के साथ सरोकार होने के कारण वह अपने साहित्य में सामाजिक कुरीतियों को कृतिबध्द करना शुरू करता है । हिंदी साहित्य जगत में प्रेमचंद ऐसे साहित्यकार है जिन्होंने सर्व प्रथम अपनी कहानियों में दलित चित्रण किया है । हिंदी साहित्य में दलितों के उध्दार के लिए कहानियाँ लिखी गई लेकिन दलितों के जीवन और समस्याओं को लेकर महाराष्ट्र के मराठी साहित्य में जो दलित चित्रण हुआ उनसे प्रेरणा लेकर हिंदी साहित्य में दलित चित्रण किया गया है । ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के अनुसार दलित शब्द का व्यापक अर्थबोध है- भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया वह व्यक्ति ही दलित है दुर्गम पहाडों, वनों के बीच जीवन यापन करने के लिए बाध्य जन जातियाँ और आदिवासी घोषित जातियाँ सभी इस दायरे में आतें है । सभी वर्गो की स्त्रियाँ दलित है, बहुत कम श्रम मुल्य पर चौबिसों घंटे काम करनेवाले श्रमिक बँधुआ, मजदूर भी दलित की श्रेणि में आते है ।''[1]

इन विचारों से ज्ञात होता है कि दलित माने सेवा करने वाला, गंदे काम करने वाला, जो अपने हक माँग नहीं सकता जो आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से दबा हुआ है, जिसकी स्वाधीनता छीन ली गई है, वह दलित है । साहित्य में हमें समाज की सभ्यता, संस्कृति तथा लोगों के आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान आदि की जानकारी तो मिलती है लेकिन दलित साहित्य में हमें दलितों के जीवन की झाकियाँ, उनकी पीडा, असहायता, मजबुरी, अत्याचार, सहन करने की क्षमता, दासता आदि का चित्रण दिखाई देता है । दलित कहानी को पढतें समय हमें दलित जीवन की अनुभूति होती है । इसलिए हम कह सकते है कि, जो पीडित, दलित, दासता की बेडियों में फसा हुआ व्यक्ति उसकी सामाजिक स्थिति का जिस साहित्य में चित्रण होता है, वह दलित साहित्य कहलाता है । केवल दलित समाज में जन्में हुए लेखक के साहित्य को दलित साहित्य कहते है, ऐसा नहीं बल्कि जो किसी भी जाति, धर्म के लेखक ने अस्पृश्य, दलित, शोषित व्यक्ति की पीडा को दुनिया के सामने रखने की कोशिश की हो वह भी दलित साहित्य कहां जाता है । जहाँ तक दलितों की संवेदना, समस्याएँ, एवम् अभिव्यक्ति का सवाल है, वह कहानी साहित्य के केंद्र में दिखाई देता है । सदियों से जिस वर्ग का शोषण होता रहा है, दमन होता रहा है, उनकी सही और सशक्त अभिव्यक्ति कहानियों के माध्यम से ही हुई है । निरंतर उच्च समाज से उपेक्षा सहने वाला यह वर्ग आज अपनी चेतना से सामाजिक सरोकार एवं सामाजिक अंतर्विरोध के ऊपर उठने का प्रयास कर रहा है । जरूरत पडने पर वह समाज से टक्कर लेता हैं, सत्ता से लडाई लडता है और जूल्म तथा शोषण के विरूध्द संघर्ष करते-करते सर्जनात्मक दुनिया में प्रवेश करता है ।

भगवानदास मोरवाल जी की कहानियों में यही चित्रण हमें प्रखरता से दिखाई देता है । उनके कहानियों के पात्र जुल्म से मुक्ति की एक बडी जंग लडते है । उनकी कहानियों में कही सरकारी व्यवस्था तंत्र की अन्यायपूर्ण नीति तो कही व्यापार के नाम पर दलितों का तिरस्कार अवगनणा का चित्र है । इतना ही नहीं उनकी कहानियों के पात्रों में नंगे, अंधभूखें बच्चे, लाचार दलित महिलाएँ, मजदूर और शिक्षित कर्मचारियों के शोषण का भी चित्रण पाया

जाता है । मोरवाल जी की कहानियों को लेकर वरिष्ठ कथाकार मुकेश वर्मा लिखते है कि, ''भगवानदास मोरवाल की कहानियों में स्पष्ट पक्षधरता है उन तमाम वर्गो के हक मे जो सदियों से दमित, दलित और वंचित रहे है । वे अपने इस आशय को किन्हीं वैचारिक आवेगों के कारण नहीं, बल्कि जिंदगी की तल्ख हकीकत से पाया हुआ ऐसा मानते है जो एक संवेदनशील साहित्यकार को गहराई से आंदोलित करता है । अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था और उतने ही क्रुर धर्म-विधान के चलते पीडित समाज की कराह की जीवंत अभिव्यक्ति को अपने रचना कर्म में महत्वपूर्ण रूप से लेखन करना इनके लिए बुनियादी साहित्यिक सरोकार है ।''[2]

'चोट' कहानी में दक्ष प्रजापति निम्न जाति का होने के कारण दफ्तर में अपने वरिष्ठ मिसेज सक्सेना के शोषण का शिकार होता है । पिछले कई दिनों से उसके रीढ में उठ रहे दर्द की तुलना में मिसेज सक्सेना ने दिया दर्द कही गुणा ज्यादा असहनीय और पीडादायक होता है । मिसेज सक्सेना दलित वर्ग के दक्ष के अधिकार को छिन उसके चमचे कहे जाने वाले केसवानी को सुपरसीड कर पहले प्रमोशन दे देती है । यह सूचना समीर दक्ष को सुनाता है तो उसे मजाक लगता है । समीर कहता है, ''यह कोई मजाक करने वाली बात है । जाकर देख केसवानी के सैक्शन में बधाई देने वालों का कैसे ताँता लगा हुआ है । तुझसे कितनी बार कहा है कि तू हमारे दलित कर्मचारी विकास संघ का सदस्य बन जा लेकिन सुनी हो तब ना ।''[3] मिसेज सक्सेना द्वारा दी गई चोट दक्ष को आर्थिक चोट लगती है । क्योंकि बाबासाहब अम्बेडकर ने कहा था कि मनुष्य अपनी आजादी से ज्यादा दौलत को प्यार करता है । वे यह भी जानते थे कि दबे-कुचलों और वंचितो की पहली जरूरत उसका आर्थिक रूप से मजबूत होना है । दक्ष समीर से कहता है, ''मुझे लगता है कि हम जैसे लोगों के लिए आर्थिक चोट से बडी और कोई चोट नहीं हो सकती । मेरा मानना है कि दौलत ही आदमी की सबसे बडी ताकत होती है । दौलत ही आदमी की रीढ होती है । अगर आदमी को किसी लायक नहीं छोडना है तो सबसे पहले उसकी इसी रीढ पर चोट करो । इस पर पडी चोट से वह कभी खडा नहीं रह सकता ।''[4] संविधान ने भले दलितों को अधिकार देकर सवर्णों की कतार में खडा किया हो लेकिन सवर्णों के मन में बैठा श्रेष्ठता का दंभ आज भी किसी-न-किसी रूप में बदला लेने को तत्पर होता है । दक्ष अपने मित्र सतबीर से कहता है, ''मुझे लगता है सतबीर, यह सैकडों हजारों वर्षो पुरानी उसी कुंठा और घृणा का परिणाम है जिसका हम आज तक शिकार होते आ रहे है । इन लोगों में हमारे प्रति आज भी उतनी ही नफरत है, श्रेष्ठता का दंभ है जितनी सदियों पहले थी ।''[5]

'सीढियाँ, माँ और उसका देवता' कहानी में निम्न वर्ग के व्यक्ति को पढ-लिखकर आगे बढने पर भी दलित होने का बराबर एहसास कराया जाता है । हजारों वर्ष की प्रताडना, शोषण और भेदभाव से दबा दलित अब अपनी अस्मिता की खोज के लिए जागरूक हो गया है । उच्च वर्ग लोगों के स्वार्थ और उसकी पूर्ति के लिए किए गए उनके दुरूपयोग को भी अच्छी तरह जानने लगा है । बचपन में वाल्मिक मनोहर को रामशरण चाचा के लडके उसके सामने ताली बजा-बजाकर 'शकरकन्दी बडी मन्दी, ले गया चोर पिटा भंगी' इस उक्ति को दोहराकर आनंद की अनुभूति लेते थे । आज वही मनोहर डॉक्टर बनकर अपने गांव आया है । जब वह बिमार कमला को देखने उसके घर जाता है, तब रामशरण चाचा एक बार फिर उसे दलित होने का एहसास कराते है । मनोहर उनसे कहता है, ''नहीं–नहीं, मै अन्दर जाने की बात नहीं कर रहा हूँ । आप उसे बाहर ले आओ, यही देख लूँगा ।''[6]

मनोहर अपने निश्चल खुरदरे अतीत को सँवारने का श्रेय कमला को देता है । कमला उसे अपने डॉक्टर होने का कारण पुछती है तब मनोहर कहता है, ''दरअसल मै उन जिस्मों को जी भरकर स्पर्श करना चाहता था जिनको छूने की बचपन मे मैं बहूत कल्पनाएँ करता था । मै उन कपडों की गन्ध एकदम पास से लेना चाहता था, जो कभी मेरे छूते ही उतारकर फेंक दिए जाते थे ।''[7] मोरवाल जी यहाँ पर डॉक्टर शालिनी जैसी पढी–लिखी उच्च

जाति की लडकी को जाति-पाति से उपर उठाकर, इन्सान को इन्सान के रूप में देखने के लिए प्रेरित करते है । कमला, डॉक्टर शलिनी को मनोहर की जाति को लेकर प्रश्न उपस्थित करती है तो बूरा मान जाती है । वह कमला से कहती है, ''कमला जी, इसमें बात ही बूरा मानने जैसी है । मैं एक पढे-लिखे जीनियस डॉक्टर से शादी करने जा रही हूँ न कि एक झाडू लगानेवाल महतर से ।''[8]

'दु:स्वप्न की मौत' कहानी में लालचन्द और सतवन्ती जैसे दलित परिवार के स्वप्नों का चित्रण है । लालचन्द की सबसे बडी कमजोरी यह है कि जब भी उसे कोई सपना आता है, तब वह पूरी-पूरी रात सो नहीं पाता है । प्यासे मृग की तरह गहन अंधेरे में दूर-दूर तक फैले रेगिस्तान में बस बेतहाशा दौडता रहता है । निम्न जाति का व्यक्ति अपने नीच कर्म से मुक्ति पाने की यदी सोचता भी है तो उच्च वर्ग के बडे-बुजुर्गों बुध्दिजीवियों में हलचल मच जाती है । सपने में एक बार सतवन्ती गली-मोहल्ले में खुल्लमखुल्ला यह घोषणा कर आती है कि, ''आज के बाद वह इस नीच दुष्कर्म यानी झाडू लगाने से लेकर मैला ढोने का काम कदापि नहीं करेंगी ।''[9] तो सारे मोहल्ले में मानो हडकम्प मच जाता है । आज भी निम्न जाति का व्यक्ति अपनी मेहनत लगन से कोई काम कर ले तो उच्च वर्गीय समाज का उसके प्रति व्यवहार तिरस्कृत ही रहता है ।

लालचन्द सपने में एक विशाल, शानदार, भव्य और आधुनिक प्रासाद, जिसे अभिजात्य वर्ग की भाषा में कोठी कह सकते है, का निर्माण करता है । उसके गृह-प्रवेश के लिए मुश्किल से एक ब्राह्मण का इन्तजाम करता है वह भी एक शर्त पर की मोटी नकदी रकम के अलावा वह कोई भी सामान उनके यहाँ से नहीं लेगा । इस अवसर पर वह खाने-पीने की व्यवस्था भी करता है । वह नाते-रिश्तेदारों से लेकर गाँव-बिरादरी और गली-मोहल्ले के उन तमाम लोगों को आमंत्रित करता है जिनके यहाँ उनका आना-जाना पूर्णतया वर्जित होता है । लेकिन जब लालचन्द और सतवन्ती खाने के पंडाल में जाते है तो दिमाग की नसे जैसें फटने लगती है और पाँव जमीन में धसने लगते है । वे देखते है कि, ''जिस पंडाल में उनकी बिरादरी और नाते-निश्तेदारों के खाने की व्यवस्था थी, वहाँ तो सभी खाने-पीने की चीजे साफ थी, लेकिन उन लोगों के पंडाल में, जिनके यहाँ उनका आना-जाना वर्जित था, पूर्व की तरह अनछूआ रखा था । मजाल है किसी ने भूले से उन्हे छूआ तो हो ।''[10] जिससे यह प्रतीत होता है कि आज भी उच्च जाति वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जाति पर घमण्ड है और इस घमण्ड को वह सदा कायम रखने की कोशिश में लगा है ।

'अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार' कहानी में अस्सी मॉडल जो एक निरक्षर चरवाहा है, उसके दिमाग में यह बात आ जाती है कि दो समाज में धर्म की बात फैलाकर चुनाव जीता जा सकता है और वह जीत भी जाता है । लेकिन चुनाव में दलित जाति को लेकर कहता है, ''यार रामलाल जी, बुरो मत मानियों..... इन छोटी जातन को कहा दीन-ईमान ।''[11] **'अरण्यकांड'** कहानी में पंडित कृपाशंकर न केवल जाति से बल्कि कर्म से भी पंडित है । वह स्वभाव का जितना विनम्र है उतना कठोर भी है । धर्म का पालन न करने वालों से वह सख्त नफरत, तो नास्तिकों से एकदम परहेज करता है । उनके उसूलों मे एक उसूल यह भी है कि पंडित जी के चौतरे पर जहाँ उन्होंने ठाकूर जी का थडा बनवाया है, मजाल है छोटी-मोटी जाति के लोग वहाँ फटक तो जाएँ । वे निम्न जाति के व्यक्ति से खाना खाना तो दूर पानी पिना भी पाप समझते है । जब वे अपने बेटे को मिलने दिल्ली जाते है तब बेटे की मकान मालकिन के यहाँ से आयी चाय को खाट के नीचे औंधा देते है । लेकिन रात का भोजन जिस बजरंगी ढाबे पे करते है वह निम्न जाति के व्यक्ति का होता है । इसका पता उन्हे महेंदर की बातों से चलता है । ''लिच्छू मै नहीं करता अपना धरम भ्रिस्ट..... अरे है तो वो ढेड ही..... तुम्हें जाना हो तो जाओ पर मै ना जाऊँगा उस चूहडे के ढाबे पे ।''[12] यह कथन सूनते ही पंडित कृपाशंकर बार-बार हलक के अंदर अँगुलियाँ डालकर

उल्टी के द्वारा पेट मे पडे रोटी के एक-एक कण को निकालने का प्रयास करता है । इससे पता चलता है कि आज भी उच्च वर्गीय लोगों के मन में निम्न वर्ग के प्रति नफरत या द्वेष के भाव दिखाई देते है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भगवानदास मोरवाल न अपनी कहानियों से यह स्पष्ट किया है कि, भारतीय संविधान में चाहे सभी को समानता का अधिकार दिया हो लेकिन जब तक मनुष्य ऊँच-निच के भेदभाव की मानसिकता से बाहर नहीं आता तब तक दलितों के प्रति यह व्यवहार बना रहेगा । समाज की मानसिकता में बदलाव ही मनुष्य-मनुष्य में समता स्थापित कर पायेगा ।

संदर्भ सूचि

1) ओमप्रकाश वाल्मीकि – दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र पृ. 14

2) भगवानदार मोरवाल – महराब और अन्य कहानियाँ - फ्लैप से

3) भगवानदास मोरवाल – कहानी अब तक (भाग-दो) पृ. 230

4) भगवानदास मोरवाल – कहानी अब तक (भाग-दो) पृ. 232

5) भगवानदास मोरवाल – कहानी अब तक (भाग-दो) पृ. 233

6) भगवानदास मोरवाल – सीढियाँ, माँ और उसका देवता पृ. 180

7) भगवानदास मोरवाल – सीढियाँ, माँ और उसका देवता पृ. 187

8) भगवानदास मोरवाल – सीढियाँ, माँ और उसका देवता पृ. 189

9) भगवानदास मोरवाल – सीढियाँ, माँ और उसका देवता पृ. 160

10) भगवानदास मोरवाल – सीढियाँ, माँ और उसका देवता पृ. 164

11) भगवानदार मोरवाल – अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार पृ. 23

12) भगवानदार मोरवाल – अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार पृ. 101-102

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

प्रभा खेतान लिखित पीली-आंधी में अभिव्यक्त नारी चेतना

प्रा. डॉ. चित्रा धामणे
(हिंदी विभागाध्यक्ष)
महिला कला महाविद्यालय, बीड ता.जि. बीड

साहित्य अपने समय के यथार्थ का चित्रण होता है | साहित्य के क्षेत्र में नारी हर युग में उपस्थित रही है | आज कुछ वर्षों से स्त्रियों की समस्याओं एवम् उसकी परिस्थितियों के संदर्भ में विस्तार से अध्ययन हो रहा है | हिन्दी कथा साहित्य में भी नारी चेतना के संदर्भ में अधिक मात्रा में लेखन हो रहा है | हिन्दी कथा साहित्य में महिला लेखिकाओं का बहुमूल्य योगदान है | नारी चेतना को लेकर अनेक उपन्यास हिन्दी साहित्य में लिखे गए | नारी समाज का अविभाज्य अंग होते हुए भी उसे जीवन में अनेक कसौटियों को झेलना पड़ता है | नारी सहनशीलता के बल पर कसौटियों का बेड़ा पार करती है, इसलिए तो पुरातन काल से वह रणचंडी, दूर्गा, काली के रूप में परिचित है | आदिमाया-आदिशक्ति के रूप में नारी को जिस परपंरा ने स्वीकृत किया उसी परंपरा ने उसके साहस को गाली –गलौच से कुचलने का भी प्रयास किया |

समाज में विभिन्न स्तरों पर नारी को अन्याय-अत्याचार का सामना करना पडता है | स्त्री पुरूषों के साथ हजारों सालों से विभिन्न अनुभवों के साथ जीवन व्यतीत कर रही है | नारी जीवन के विभिन्न रूपों को उजागर करके विविध आयामों अधोरेखित करने का काम स्त्रीवादी साहित्यद्वारा हो रहा है | हिन्दी उपन्यासों में स्त्रीवादी उपन्यास साहित्य की जो परम्परा प्राप्त होती है, उस में नारी को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत किया गया है | परम्परागत जीवनमूल्य एवं आधुनिक जीवनमूल्य के बीच संघर्षरत नारी की मानसिकता का चित्रण नारीचेतना के उपन्यासों का प्रमुख विषय रहा है | साथ ही सामाजिक, धार्मिक, मानसिक, पारिवारिक एवं शारीरिक धरातल पर नारी का जो शोषण हो रहा है तथा आज की नारी इस शोषण से अपने आप को मुक्त करने के लिए जो प्रयास कर रही है, उसे महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया है |

प्रभा खेतान द्वारा लिखित 'पीली आंधी' नारी चेतना की दृष्टि से सफल उपन्यास है | समस्त उपन्यास में विभिन्न चरित्रों के माध्यम से राजस्थानी बनिये समाज का चित्रण किया है | राजस्थानी परिवार तथा बनिये समाज का चित्रण करते-करते उन्होंने इस समाज से जुड़ी हुई पारंपारिक स्त्री, आधुनिक तथा शिक्षित स्त्री की समस्याओं को भी चित्रित किया है | राधा चाची पद्मावती (बड़ी माँ बहू) तथा सोमा तक तीन पीढियोंकी महिलाओं का चित्रण उपन्यास में हुआ है | राधा चाची पद्मावती तथा सोमा के माध्यम से हर युग की स्त्री की पीड़ा को अंकित किया है | नारी जीवन की विभिन्न समस्याएँ इस उपन्यास में प्राप्त होती है| मारवाडी समाज में व्याप्त घूँघट प्रथा, विवाहपध्दति, अनमेल विवाह, विधवा स्त्री तथा तलाक आदि कई प्रश्न पीली-आंधी उपन्यास में उपस्थित किए गए है |

पीली-आंधी उपन्यास का जो कथानक है उसका ताना-बाना नारी पात्रों के आधार पर बूना गया है | राजस्थान की अपनी भूमी छोड़कर बंगाल में व्यवसाय के बीच स्थित होनेवाले रूंगठा परिवार का लेखा-जोखा प्रभा खेतान जी ने शब्दांकित किया है | इस उपन्यास में राधा, पद्मावती, सोमा, रेवा, चंद्रा, संगीता, पुष्पा, लता, निर्मली, दादी आदि पात्र उभरकर सामने आते है | राधा चाची का जो चित्रण है वह परंपरा वहन करनेवाली नारी के रूप में सामने आता है | नारी चेतना की दृष्टि से पद्मावती तथा सोमा ये महत्वपूर्ण पात्र है |

पद्मावती उर्फ ताईजी उपन्यास का महत्वपूर्ण चरित्र है | पद्मावती एक स्वस्थ एवं सुन्दर लड़की होने के बावजुद पिता की आर्थिक दुरावस्था के कारण अनमेल विवाह की शिकार होती है | विधवा स्त्री के बंदिस्त जीवन को प्रभा खेतान ने पद्मावती के माध्यम से अभिव्यक्त किया है | हजारो वर्षों से विधवा नारी की भावनाओं की जो हत्या हो रही है, उसका जीवंत उदाहरण पद्मावती है | पद्मावती पीड़ित स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती महसुस होती है | हरिकृष्ण राय के अनुसार "सतृष्ण कामना से तड़प उठनेवाली पद्मावती अनमेल विवाह और फिर वैधव्य से अभिशप्त वेदी पर उस पशु की तरह छटपटाती है जिसका सिर पूरी तरह से धड से जुदा न हो |"[1]

पद्मावती अत्याधिक कुशल नारी है | पती के देहान्त के पश्चात 'रूंगठा हाऊस' का शासन पद्मावती बड़ी धीर गंभीरता तथा दृष्टिकोण से चलाती है | परिवार के सभी निर्णय लेनेवाली विदूषी पद्मावती का व्यक्तिगत जीवन सामाजिक बंधनों से अभिशप्त है | पद्मावती बत्तीस साल की उमर में विधवा हो जाती है | मूनीम सूराणाजी तथा पद्मावती में जो परस्पर प्रेम है उसे पद्मावती दुनिया के सामने न खुलकर प्रकट करती है और न ही उस प्रेम को नाम देना चाहती है | शशिकला त्रिपाठी के अनुसार पद्मावती जो दकियानूसी परम्पराओं, रितिरिवाजों की विसंगतियों को महसूस करती है, किन्तु घर की चौखट लांघने का साहस नहीं कर पाती, क्योंकि "हिन्दु स्त्रियों के लिए 'सती' होना आसान है, अपनी इच्छाओं, अकांक्षाओं को प्रकट करना दुष्कर है |"[2]

पद्मावती में कर्तव्यभावना पर्याप्त मात्रा में भरी हुई है | स्वयं निसंतान होने पर भी देवरानी के छह बच्चों की माँ बनकर हर कर्तव्य को निभाती है | पद्मावती का परम्परावादी व्यक्तिमत्व आधुनिक बनता है | उनके मन में परिवार की पूरानी परम्पराओं की रक्षा का भार है तो सोमा के प्रति पद्मावती की सोच नए बदलाओं को स्वीकार करनेवाली एक सच्ची आधुनिका का मूर्तिमंत रूप है | राधाचाची की परम्पराओं का वहन करनेवाली पद्मावती व्यक्तिगत पीड़ा की अनुभूति से परिवर्तनशील विचारों को स्वीकार करती है | सोमा के प्रति जो परिवर्तनशील विचार पद्मावती के है वहीं उपन्यास की सफलता है | सोमा रूंगठा परिवार की छोटी बहू है | अनुशासन की चौखट से पद्मावती परिवार चलाती है लेकिन सोमा का डॉ. सुजित सेन से जो प्रेम का रिश्ता बनता है उसे पद्मावती स्वीकार करती है, इतना ही नहीं सोमा के पेट में पल रहे सूजित के बच्चे को रूंगठा परिवार का नाम देना चाहती है |

सोमा का चरित्र एक परिपूर्ण विवेकशील स्त्री के रूप में उपन्यास में चित्रित हुआ है | सोमा गौतम का रिश्ता पती –पत्नी का है लेकिन सोमा को गौतम ने वह प्यार नहीं दिया जो एक पुरूष से सोमा चाहती है | हिरे-पन्ने की चमक से समृध्द परिवार के संदर्भ में सोमा जो कहती है वह मानवियता तथा नारी के अंतर्मन के आवाज की पहचान है | सोमा कहती है – "गौतम यह घर लोहे की दीवारों से बना है | बहुत मजबूत है यह घर | यहाँ धूप नहीं आती, कहीं कोई सुराख नहीं | हवा नहीं घुस सकती है |"[3] प्रस्तुत पंक्तियाँ समाज व्यवस्था के बनाये हुए नारी विषयक दृष्टिकोण पर करारा आघात है |

माधो बाबू की मृत्यू के पश्चात पद्मावती विधवा नारी का पारंपारिक जीवन जीती रही| पद्मावती ने आजीवन परिवार के लिए अपने प्रेम को त्याग दिया | सुराणाजी की प्रेम अभिव्यक्ति की डायरी पद्मावती गीता की भाँति गोद में रखकर ताउम्र माला फेरती रही | सुराणा की वही डायरी और सुमिरन की माला को विरासत के रूप में सोमा को सौंप दिया | इस उपन्यास के कथानक में यह डायरी ऐसा धन है जो नारी को जीवन में मानवीयता प्रदान करके नारी के मन की चाहत को वास्तव रूप देनेवाले प्रगतिशील विचारों का मुर्तिमंत प्रतीक है |

नारी चेतना के अनेक बिंदुओ को प्रभा खेतान ने इस उपन्यास में उल्लेखित किया है| प्रचलित समाज व्यवस्था में घर, परिवार, संतान, पारिवारिक रिश्ते इन सब की जिम्मेदारी, अधिकतम औरतों पर ही निर्भर होती है | इन जिम्मेदारियों को निभाना यही एकमात्र जीवन समझकर जीनेवाली नारी की आंतरिक भावनाओं को कठोर बंधनों से मुक्ति असंभव लगती है| इन बंधनों का मायाजाल नारी को स्वेच्छा के धरातल पर जीने का हक सरलता से नहीं देता | पीली–आंधी उपन्यास में चार-दिवारी में विश्व निर्माण करनेवाली सक्षम व्यक्तिमत्व की पहचान दिलवानेवाली पद्मावती एक समर्पिता है | वह परिवार की बाहरी प्रतिष्ठा अबाधित रखने में अविरत प्रयासरत है | सोमा पद्मावती के हर विचार को एक प्रतिप्रश्न के रूप में दोहराती है | यह प्रतिप्रश्न कर्मठ परंपराओ पर उठाये गये सवाल है |

प्रभा खेतान मे सोमा के माध्यम से परम्परा, मानमर्यादा आदि के नाम पर छली जानेवाली औरत के मुक्ति की महत्वकांक्षा को अंकित किया हैं | स्वतंत्र विचारों से जीनेवाली सोमा के प्रति पती गौतम पुरूषी अहंकार भाव से दबाव डालता है तब सोमा उसे प्रत्युत्तर में कहती है – “हां जब औरत अपने लिए रोती है, कुछ मांगती है तब पागल ही कहलाती है |”[4] राजस्थान की यह पीली-आंधी वहाँ की सुनहली रेत को हवा उड़ाती है और माहोल को धूँधला बनाती है उसी तरह समाज की परंपराएँ तथा अनमेल विवाह, विधवा का जीवन, बालविवाह यह नारी जीवन को दु:ख, वेदना, पीड़ा से अभिशप्त करते है और नारीजीवन में व्यथाओं की कथाएँ निर्माण करके उनके जीवन में आंधी-तुफान खड़ा करते है | पीली आंधी में पद्मावती तथा सोमा परंपरागत व्यवस्था के आंधी-तुफान का सामना करते हुए परिवर्तन की दिशा में नारी चेतना को जगानेवाले साहसी नारी पात्र सिध्द होते है |

संदर्भ सूची :

1. स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार- डॉ. वैशाली देशपांडे, सं.2007, पृ.148.
2. स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार- डॉ. वैशाली देशपांडे, सं. 2007, पृ. 148.
3. पीली आंधी-प्रभा खेतान, प्र.सं. 2001, पृ. 255.
4. पीली आंधी-प्रभा खेतना, प्र.सं. 2001, पृ. 256.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

सुधा अरोड़ा की कहानियों में स्त्री जीवन के विविध आयाम

शिप्रा देवी
शोधार्थी- पीएच० डी०
हिंदी विभाग,
मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इंफाल- 795003

सारांश :-

सुधा अरोड़ा के कहानियों में मध्यवर्गीय समाज के स्त्रियों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया गया है। पितृसत्ता के वर्चस्व के कारण आज भी इस समाज की शिक्षित स्त्रियाँ पुरुषों के सामने दबी एवं सहमी रहती हैं। पितृसत्तात्मक प्रभाव के कारण शिक्षित स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकल पातीं। कहीं-कहीं लेखिका ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ होते हुए भी दिखाया है, लेकिन उन्हें अपने परिवार से काफी संघर्ष झेलना पड़ता है। इनके साहित्य में हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ भी समाज में देखने को मिलता है। जहाँ स्त्री शोषण ज्यादा दिखाई देता है। आज समाज में स्त्रियों को उनके काम से असंतुष्ट परिवार व पति उन्हें पसंद नहीं करते है जिससे स्त्रियाँ मानसिक रूप से अमानवीय व्यवहारिक शोषण की शिकार होती हैं। कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा का भी अभिशाप इस समाज में देखने को मिलता है। जितना जागरूक समाज हो रहा उतनी ही अधिक समस्याएँ भी समाज में दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रहीं है। वर्तमान समय में कन्या भ्रूण हत्या करने का तरीका ही बदल दिया गया है। जिससे अब स्त्री को बच्चे के लिए नौ माह का इंतजार नहीं करना पड़ता है। चिकित्सकीय तकनीकि के कारण उसे जन्म देने से पहले चिन्हित करके भ्रूण अवस्था में ही मार देते हैं।

आत्मकेंद्रित समाज होने के कारण आज समाज में व्यक्ति के एकाकी रूप में रहने की स्थितियाँ ज्यादा परिलक्षित होती हैं। जिससे व्यक्ति तनाव व अपने को अकेला महसूस करने लगा है। औद्योगिकरण के विस्तार के कारण लोग महानगरों में जीवन बिताने लगे हैं। जिससे संयुक्त परिवार का विघटन होने लगा है। व्यक्ति एकाकी परिवार में रहने पर मजबूर हो रहा है। इस प्रकार लेखिका ने स्त्री जीवन की समस्याओं को एक विस्तृत फलक पर विस्तार देने की पूर्ण कोशिश की है। शिक्षा, स्त्री आत्मनिर्भरता का प्रमुख कारण है। शिक्षा के कारण ही स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो पा रही है और पुरुषों के समान समाज में स्थान बना पा रही है। अर्थ की समस्या स्त्री के जीवन में सबसे बड़ी समस्या समझी जाती है। वह घर में कितना भी श्रम कर ले उनका वह श्रम अवैतनिक श्रम कहलाता है और समाज में इन स्त्रियों को निम्न श्रेणी में ही रखा जाता है।

बीज शब्द :-

स्त्री-विमर्श, स्त्री अस्मिता, शोषण, तनाव, दांपत्य जीवन, एकाकीपन, अजनबीपन, संयुक्त परिवार, दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या, कन्या शिशु हत्या, एकाकी परिवार, स्त्री शिक्षा, समाज-सेविका, समाज, महानगर, पितृसत्ता।

शोध आलेख

प्रागैतिहासिक काल के उपलब्ध ग्रंथो में किए गए वर्णन में यदि स्त्री की स्थिति को देखा जाए तो वह देवी एवं शक्ति के रूप में पूजी जाती थी। उसका समाज में स्थान सर्वोच्च था। ऋग्वेद में स्त्रियाँ ऋचाओं एवं सूक्तों का लेखन एवं अध्यापन करती हुई उल्लेखित मिलती हैं। वह विदुषी के रूप में भी जानी जाती थी। धर्मशास्त्र के युग

में थोड़ा-बहुत स्त्रियों की स्थिति में गिरावट दिखाई देती है। इसी समय से वह धीरे-धीरे पतनशील होती गई और मध्य काल में आकर उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय रूप में दृष्टिगत होती है। मध्यकाल में मुगलों का भारत पर अधिकार स्थापित हो गया था। मुगलों और भारतीयों में हमेशा सत्ता के लिए युद्ध होता रहता था जिसके कारण स्त्री की सुरक्षा के लिए उन्हें बाहर निकलना मना था। लेकिन ब्रिटिश शासन काल के समय स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ा। 20वीं शताब्दी के अंत तक आते-आते स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कंपनियों, राष्ट्र सेवा एवं समाज सेवा में बढ़-चढ़कर भाग लेने लगीं। आधुनिक समय में स्त्रियों की स्थिति में काफी परिवर्तन आया है। वह अपनी सुरक्षा के साथ-साथ बाहरी काम-काजों में भी पुरुष का हाथ बटाने लगी है। इससे वह आर्थिक रूप से सक्षम हो चूकी है। उन्हें अब किसी के सामने हाथ फैलाना नहीं पड़ता है। चूँकि शहरी स्त्रियों में बदलाव एवं जागरूकता तो आई है, लेकिन आज भी ग्रामीण क्षेत्र की स्त्रियाँ पुरुषों पर ही निर्भर हैं। उनकी दशा आज भी परवर्ती काल जैसी ही है।

सुधा अरोड़ा एक समाज सेविका हैं। वह हिंदी साहित्य में कथाकार के रूप में आठवें दशक में साहित्य सृजन के जरिए समाज के सामने उभर कर आती हैं। इनके कथा साहित्य में मध्यमवर्ग की स्त्रियाँ शामिल हैं। इन्होंने ज्यादातर स्त्रियों की पीड़ा एवं संवेदना को अपने साहित्य सृजन में स्थान दिया है। स्त्रियों की पीड़ा सिर्फ शारीरिक ही नहीं मानसिक भी है। इन्हें अनेक प्रकार से शोषित किया जाता है। एक स्त्री होने के नाते इन्होंने स्त्रियों के दर्द को बड़े ही मार्मिक रूप से अपने कथा साहित्य में पिरोने का कार्य किया है। पारिवारिक स्त्री की दशा, उन पर पुरुषों द्वारा किए गए अनेक प्रकार के शोषण का उल्लेख अपने साहित्य में किया है। जिनमें दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, लैंगिक भेदभाव, शिक्षा का प्रभाव, हिंसा के प्रकार, दांपत्य संबंध, वृद्धावस्था, शहरों में स्त्रियों की स्थिति तथा पितृसत्ता का दंश आदि विविध आयामों पर इन्होंने अपनी रचनात्मक दृष्टि डाली है।

सुधा अरोड़ा के कथा साहित्य में पारिवारिक स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इसलिए नहीं कि वे अशिक्षित हैं, बल्कि इसलिए की वे शिक्षित हैं। शिक्षित होते हुए भी स्त्रियाँ आज भी पुरुषों द्वारा शोषित हैं। चूँकि वह शोषित हो रहीं है फिर भी शांत नहीं बैठी हैं वह किसी न किसी रूप में पुरुषों के तिरस्कृत सवालों का जवाब मूक अवस्था में देती हुई नजर आती हैं। फिर भी इनके साहित्य में पितृसत्ता का प्रभाव दिखाई देता है। सुधा अरोड़ा ने स्त्रियों की पारिवारिक स्थिति को 'रहोगी तुम वही', 'अन्नापूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी' व 'नमक' आदि कहानियों में चित्रित किया है। इन तीनों कहानियों में स्त्रियाँ मानसिक रूप से पुरुषों द्वारा शोषित की जाती हैं। लेखिका ने इन कहानियों में स्त्री की शादी के बाद की स्थिति का वर्णन किया है। 'रहोगी तुम वही' कहानी की नायिका शिक्षित है फिर भी वह सिर्फ घर में अपना पूरा वक्त बिताती है। वह बच्चों की देखभाल एवं पति की सेवा में हमेशा तत्पर रहती है, फिर भी पति द्वारा हमेशा तिरस्कृत होती है, आवेग पूर्ण वाणी को सुनती है। इस कहानी में पुरुष प्रत्येक क्षण स्त्री पर आक्रोश करता रहता है। लेकिन स्त्री पूरी कहानी में पुरुष के एक भी प्रश्न का जवाब संवाद द्वारा नहीं देती है। वह अपने को पुरुष के अनुसार ढालने की पूरी कोशिश करती है फिर भी जब उसमें कुछ परिवर्तन दिखाई देता है तो पुरुष उस पर दूसरी तरह से क्रूर वाणी का बौछार करता है। पुरुष का उसके रहन-सहन, खान-पान सब में खराबी ही झलकती है। इस कहानी में प्रत्येक स्थिति की जिम्मेदार स्त्री को ही ठहराया जाता है। बच्चे के फेल होने से लेकर पति के जूते रिपेयर करवाना, बिजली का बिल भरने तक की सम्पूर्ण ज़िम्मेदारी स्त्री को ही उठानी पड़ती है। लेखिका ने स्त्री के प्रत्येक तरह के कार्य करने के दौरान आक्रोशित होते हुए पुरुष का उल्लेख किया है- "तुम से घर में टिककर बैठा जाए, तब न! स्कूल में पढ़ाती हो, वह क्या काफी नहीं है ऊपर से यह समाज-सेवा का रोग पाल लिया अपने सिर पर! क्यों जाती हो उस फटीचर समाज-सेवा के दफ़्तर में? सब हिपोक्रेट औरते हैं वहाँ। मिलता क्या है तुम्हें? न पैसा न धेला उल्टा अपनी जेब से आने जाने का भाड़ा भी फूकती हो।" वर्तमान

समय में स्त्रियाँ कितनी भी ऊँचाई को प्राप्त कर ले परंतु उनको पारिवारिक दायित्व को उठाना ही पड़ता है। वह समाज में पुरुषों के बराबर तो सम्मान हासिल कर लेती हैं किंतु घर में उन्हें पुरुषों की डाँट फटकार ही सुननी पड़ती है।

लेखिका ने अपने कथा साहित्य में शिक्षित स्त्रियों का भी उल्लेख किया है। वर्तमान समय में स्त्रियाँ समाज में पुरुषों के बराबर योग्यता हासिल कर समाज में योगदान दे रहीं है। वे स्कूल, समाज सेवा, विदेश, बैंक अकाउंटिग, ऑफिस वर्कर के रूप में अपनी स्थिति स्थापित कर रही हैं। हालाँकि स्त्रियों को दोहरे मानदंड झेलने पड़ रहे हैं, लेकिन वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी हो रही हैं जिसका कारण शिक्षा है। शिक्षा के कारण ही वे आज सभी क्षेत्रों में अपनी उपलब्धता स्थापित करा पा रही हैं। सुधा अरोड़ा के कथा साहित्य में स्त्री जागरूकता तो दिखाई देती है। लेकिन आज भी परिवार में वह निर्णय नहीं ले पा रही हैं। 'महानगर की मैथिली', और 'तेरहवें माले से जिंदगी' कहानी में स्त्री शिक्षित है और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी है। लेकिन जब उन्हें कोई पारिवारिक निर्णय लेना होता है तो वह निर्णय पुरुष द्वारा ही लिया जाता है। 'महानगर की मैथिली' कहानी की बात की जाए तो स्त्री को घर पर रहने के लिए सिर्फ रविवार को छुट्टी मिलती है। लेकिन उस दिन भी उसका पति घर रहने की वजाय फिल्म देखने का निर्णय ले लेता है। जहाँ न चाह कर भी स्त्री को उसका साथ देना पड़ता है। इस कहानी में स्त्री को महानगरों के अर्थतन्त्र के कारण घर से बाहर जाना पड़ता है। सप्ताह में उसे मुश्किल से घर रहने के लिए एक दिन मिलता है, उसमे भी पति की इच्छा के कारण न घर पर रह पाती है और न अपने बच्चे को समय दे पाती है। यह कहानी महानगरीय एकाकी पारिवारिक जीवन पर आधारित है, जहाँ पर स्त्री को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। घर में अकेले होने के कारण वह बच्चे को भी समय नहीं दे पाती है। बच्चे की देखभाल करने के लिए उसे आया रखनी पड़ती है। महानगरीय स्त्रियों को न चाहते हुए भी बच्चे को अकेले छोड़ना पड़ता है और आर्थिक समस्या के कारण घर से बाहर काम करना पड़ता है। 'तेरहवें माले से जिंदगी' कहानी में पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं। जिससे बच्चों की देखभाल करने के लिए नौकरानी की जरूरत पड़ती है। महानगरीय स्त्रियों की सबसे बड़ी समस्या बच्चों की देखभाल एवं नौकरानी की है। महानगरों में नौकरानी मिलती नहीं है और वे नौकरी छोड़ना नहीं चाहती है। जिससे उनकी चिंता बढ़ती ही जाती है। कुछ समय बाद उसे नौकरानी मिल जाती है जो पूरे घर एवं बच्चे को बड़ी सहजता से संभालती है। पारिवारिक कलह के कारण जब नौकरानी की मृत्यु हो जाती है तो वह उसे देखने जाना चाहती है। लेकिन वहाँ उसके जाने के निर्णय को पुरुष नकार देता है और अपना निर्णय रख उसे नहीं जाने देता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियाँ शिक्षित हैं सिर्फ घर एवं बच्चों की जिम्मेदारी संभालने के लिए। सामाजिक क्रियाशील महिलाओं के बारे में प्रज्ञा शर्मा कहती हैं कि "वर्तमान में शिक्षित कार्यशील महिला के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहा है। उसके मतानुसार परिवार एवं बच्चों की देखभाल की सारी जिम्मेदारी उसकी ही नहीं है। जब वह धनोपार्जन में पुरुष के ही समान क्रियाशील है तो पुरुष को भी चाहिए कि वह घर के प्रबंधन में उसका सहयोग करे।" अर्थात् प्रज्ञा जी के अनुसार स्त्री-पुरुष को परिवार समाज की ज़िम्मेदारी समान रूप में लेनी चाहिए। तथा दोनों को घर एवं बाहर सभी क्षेत्रों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता भी होनी चाहिए।

सुधा अरोड़ा के कहानियों में स्त्री- पुरुष के दांपत्य संबंधों में तनाव दिखाई देता है। उनके बीच आए दिन झगड़े होते रहते है। जिसके कारण परिवार की स्थिति दयनीय हो जाती है। भारतीय समाज में जहाँ स्त्री को सती सावित्री माना जाता है। समाज को सुशिक्षित एवं सुशील स्त्री की जरूरत होती है वही आज की स्त्रियाँ भी पतियों के अवैध संबंध को अस्वीकार करती नजर आती है। जिसके कारण उन पर पुरुषों द्वारा अपशब्दों का बौछार की जाती है। भारतीय समाज की सबसे जटिल विसंगति यह है कि स्त्री को अपनी पवित्रता की अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है।

पुरुष घर के बाहर क्या कर रहा है? कहाँ जा रहा है? किसके साथ घूम-फिर रहा है ? इसका कोई प्रमाण देना उचित नहीं समझा जाता है। हाँलाकि आज के युग में तो स्त्री अपने पति के अवैध संबंध को जानती है, फिर भी वह कुछ कर नहीं पाती है। 'सत्ता संवाद', 'भागमती पड़ाईन का उपवास' और 'यह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है' कहानियों में दांपत्य संबंधों में तनाव अलग- अलग रूपों में दिखाई देता है। 'सत्ता संवाद' कहानी की स्त्री शिक्षित है- स्कूल में पढ़ाती भी है जिससे घर का खर्च चलता है। लेकिन पुरुष लेखक है। वह कोई कार्य नहीं करता है। वह मेहमानों की तरह घर में रहता है। पुरुष के पास से मिले प्रेम पत्र के कारण स्त्री नाराज होती है व तमाम बातें सुनाती है। परंतु उसके विपरीत जाकर कोई कार्य नहीं करती है। इसमें स्त्री अपने प्रारंभिक प्रेम प्रसंग को याद कर करुणा की स्थिति में पहुँच जाती है लेकिन पति से अलग नहीं हो पाती है। 'भागमति पड़ाइन का उपवास' कहानी में लेखिका ने भागमति को एक सहनशील एवं संवेदनशील स्त्री के रूप में चित्रित किया है। भागमति के पति प्रोफेसर थे जिसके निर्देशन में सुमेधा नाम की छात्रा शोध कर रही थी। दोनों गुरु-शिष्या को एक दूसरे से प्रेम हो जाता है जिसको भागमति वर्षों से झेल रही थी। जिसके कारण भागमति एवं पाण्डे जी के बीच हमेशा तनाव रहता है। प्रोफेसर पाण्डे सुमेधा के प्रेम में फस कर उसे नेट की प्रतियोगी परीक्षा में प्रथम स्थान दिलाते हैं। जिसको घर में बैठी भागमति पँड़ाइन देखती रहती है वह अपने पति को रोक नहीं पाती है। सारा समाज भी पाण्डे के इस प्रेम प्रसंग को जानता है, लेकिन हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहता है। 'यह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है' कहानी में चित्रा अपने माता-पिता की रजामंदी के बगैर प्रेम विवाह करके चली जाती है। चूँकि विवाह के बाद चित्रा के पति दिवाकर की किसी गैर स्त्री से प्रेम प्रसंग शुरु हो जाता है, जिससे दोनों में हमेशा मनमुटाव एवं तनाव चलता रहता है। जिसके कारण उसके बच्चे पर बुरा असर पड़ता है। बच्चे को मानसिक रूप से विछिप्त होने से बचाने के लिए स्त्री अपने पति की हर बात को मानने के लिए तैयार हो जाती है। लेकिन पति दिवाकर हमेशा अपनी पत्नी चित्रा से नाखुश रहता है, क्योंकि उसकी दूसरी प्रेमिका उसके घर आती है तो चित्रा भारतीय नारी की तरह अपने अंतर्द्वंद्व को उसके सामने प्रकट नहीं होने देती है, जिसको देखने के बाद दिवाकर की प्रेमिका उसे हमेशा के लिए छोड़कर चली जाती है। दिवाकर का आक्रोश चित्रा पर इस प्रकार फूटता है "उसके सामने नाटक किया तुमने कि तुम एक पतिव्रता नारी हो। उसे दिखा दिया कि बड़ी सुखी गृहस्थी है तुम्हारी, कि उसकी हैसियत सिर्फ इंटूडर की है इस घर में। मैं उसके पास दो घंटे बैठ क्या लेता था, तुमसे मेरा चैन बर्दाश्त नहीं हुआ।" लेखिका इस प्रकार के दाम्पत्य विघटन का चित्रण इसलिए नहीं करती हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों के सामने अपनी पहचान खोती जाए, बल्कि इसलिए करती हैं कि इसका विरोध करें ताकि आने वाले समय में पुरुष द्वारा ऐसी घटनाएँ और समस्याएँ समाज में दिखाई न दें। उषा महाजन कहती है कि "दांपत्य संबंधों में विखराव और कटुता के मामले पिछले दो दशकों में अनपेक्षित रूप से बढ़े हैं। औरतों की आजादी और समानाधिकार की मांग ने दांपत्य संबंधो के पारंपरिक ढ़ाँचे को तोड़ दिया है। महिलाएँ अब पति के गलत व्यवहार को चुपचाप सहन नहीं करती।" दांपत्य संबंधों में तनाव कई कारणों से आता जिसमें व्यक्ति या तो घर की उचित ढंग से देखभाल नहीं कर पाता है, या तो उसका कोई बाहरी अवैध रूप से किसी से संबंध हो। तनाव सिर्फ एक तरफ से नहीं होता स्त्री-पुरुष दोनों तरफ से हो सकता है। लेकिन सुधा अरोड़ा के कहानियों में एक तरफा तनाव देखने को मिलता है जिसमें सिर्फ पति के अवैध संबंध के कारण दांपत्य सम्बन्धों के बीच कटुता बढ़ती है। जिसे सिर्फ स्त्री ही नहीं झेलती घर में सभी सदस्यों को झेलना पड़ता है। इन पति-पत्नी के टकराहटों के बीच बच्चे अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं। जिसका उदाहरण 'यह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है' कहानी में मिलता है, लेकिन उसमे भी पुरुष अपनी गलती को सुधार नहीं पाता हैं।

समाज में दिनोंदिन शिशु भ्रूण हत्या, कन्या भ्रूण हत्या का अपराध बढ़ता जा रहा है। लोग वंश वृद्धि के लिए पुत्र की इच्छा रखते हैं, जिसे उनके कुल की वृद्धि समझा जाता है। वर्तमान समाज में लिंग का पता लगाकर बेटी होने पर उसे गर्भ में ही खत्म कर देते हैं। यह कुप्रथा आज की नहीं है। बल्कि यह प्रथा परंपरा से चलती आ रही है। जब समाज में चिकित्सकीय गर्भपात की व्यवस्था नहीं थी तो उस समय रूढियों से जकड़ी स्त्रियों की मानसिकता ने जन्म के पश्चात् बेटी होने पर उन्हें गला घोंटकर मार देती थी या मरवा देती थी। लेकिन आधुनिक चिकित्सकीय तकनीकी ने उनका यह काम और आसान कर दिया है। सुधा अरोड़ा के कहानियों में कन्या भ्रूण हत्या, शिशु हत्या आदि के वर्णन देखने को मिलते हैं। लेखिका ने अपनी कई कहानियों में भ्रूण हत्या का कारण वंश वृद्धि एवं दहेज की समस्या को बताया है। 'बड़ी हत्या, छोटी हत्या' कहानी में शिशु हत्या का उल्लेख किया गया है। इस कहानी में लेखिका बताना चाहती है कि शिशु हत्या इस लिए की जाती है, जिससे उसे दहेज न दे पाने से ससुराल वाले उसकी हत्या न कर दे। इस पारंपरिक सोच के कारण स्त्री बच्चे के पैदा होते ही दाई या नर्स से कहकर हत्या करवा देती थी। भारतीय समाज की यह विडंबना है कि बेटी पैदा होते ही उसके शिक्षा के बारे में न सोच, उसको अपने घर से विदा करने के बारे में सोचने लगते है। लेकिन आज स्थितियाँ बदली है। सरकार भी बेटियों को प्रोत्साहन दे रही हैं। उनके लिए तमाम अभियान भी आरंभ कर रही है। बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ और सुकन्या समृद्धि योजना, कन्या भ्रूण हत्या को रोकने में सफल हो रही है। परंतु आज भी यह अपराध पूरी तरह से बंद नहीं हो पाया है। डॉ कृष्णचंद्र चौधरी कहते है कि "कन्या शिशु की उपेक्षा का दृष्टिकोण इतना विकृत हो गया है कि लोग अब गर्भ के दौरान ही कन्या-भ्रूण-हत्या को अपनाने लगे हैं। वर्तमान में गर्भ के समय लिंग ज्ञात करने की आधुनिक तकनीक ने कन्या-भ्रूण-हत्या को और भी आसान बना दिया है। यही कारण है कि कन्या शिशुओं की अपेक्षा शिशुओं की जन्मदर अधिक पाई जाती है।" भारतीय समाज में आज कुंठित मानसिकता के लोग मौजूद हैं जो बेटियों को तरस खाती नजरों से देखते हैं। लेखिका ने 'बेटियाँ बड़ी नियामत हैं' कहानी में लड़कियों के पक्ष में स्त्री के नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों दृष्टिकोण का परिचय दिया है। इस कहानी में लेखिका ने समाज में बेटियों के साथ अपराध करने वाली मान्यताओं को खारिज कर बेटियों को उच्च स्थान पर स्थापित किया है। वे उन सभी कारणों का विरोध भी करती है जो शिशु जन्म के समय ही हत्या को अंजाम देती हैं। इस कहानी में सुधा जी ने बेटियों को माता-पिता के लिए ईश्वर द्वारा दी गई उपहार मानती है व उन सभी माता-पिता को खुशनसीब समझती है जिनके पास बेटियाँ होती हैं। 'तीसरी बेटी के नाम ये ठंडे, सूखे, बेजान शब्द' कहानी में भी लेखिका ने कन्या शिशु जन्म का वर्णन किया है। इस कहानी में भी लड़कियों के जन्म पर परिवार के लोग ईश्वर को कोसते हुए नजर आते हैं। परंतु जिस पिता के घर यह लड़की जन्म लेती है वह पिता अपने को धन्य समझता है। वह उसकी परवरिश उसी प्रकार करता है जिस प्रकार हमारे समाज में लोग लड़कों की परवरिश करते हैं। परिवार में कुछ सदस्य ऐसे भी थे जिन्हें बेटी नहीं बेटे की मांग होती है लेकिन उस बेटी का पिता उनके विचारों का विरोध करता है।

सुधा अरोड़ा की कहानियों में आत्मनिर्भर स्त्री का भी उल्लेख किया गया है। 20वीं सदी की स्त्रियाँ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में अपना स्थान बना रही हैं। स्त्री आत्म -निर्भरता का कारण स्त्री शिक्षा है जिसके कारण स्त्री आज आर्थिक रूप से समाज में स्वतंत्र दिखाई देती है। आत्मनिर्भर स्त्री का उल्लेख लेखिका के निम्न कहानियों में किया गया है 'युद्धरत' कहानी में मालती से बड़ी दोनों बहने पढ़ाई खत्म करके स्कूल में शिक्षक थी। जिसके अर्थ से वें अपनी शादी करती है। 'कांसे का गिलास' कहानी में नेहा शिक्षित स्त्री है जो विदेश जाकर नौकरी करती है। 'सत्ता संवाद' कहानी की नायिका स्कूल में पढ़ाती है और परिवार की आर्थिक सहायता भी करती है। 'बुत जब बोलते हैं' कहानी में लेखिका ने स्त्री को डॉक्टर का स्थान देकर आत्मनिर्भर स्त्री का

चित्रण किया है। इस कहानी की नायिका देवयानी दूसरो की भी आर्थिक मदद करती हुई नजर आती है। उसे दूसरों की मदद के लिए किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना पड़ता है। डॉक्टरी के कारण वह समाज में पहचान भी बना लेती है। 'बगैर तराशे हुए' कहानी में स्त्री सेल्स गर्ल का काम कर अपना और अपने परिवार का भरण पोषण करती है। 'ताराबाई चॉल : कमरा नम्बर एक सौ पैंतिस' की नायिका बैंक में एकाउंटिंग की नौकरी कर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है। 'काँच के इधर उधर' कहानी की गौण पात्र प्रतिमा एक आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में समाज सेवा का कार्य करती है। इस प्रकार सुधा अरोड़ा ने अपने कहानियों में आत्मनिर्भर स्त्री का चित्रण कर उस समाज में सर्वोच्च स्थान पर स्थापित किया है। आधुनिक युग में आत्मनिर्भर होने के कारण स्त्री के भीतर नई उर्जा का संचार देखने को मिलता है। आत्मनिर्भर स्त्री के परिप्रेक्ष्य में मीना शर्मा कहती हैं कि "पंडिता रमाबाई के सहयोगी तत्कालीन वातावरण में तनाव व दबाव के कारण विख्यात समाज सुधारक डॉक्टर भंडारकर तथा न्यामूर्ति रानाडे दोनों को ही रमाबाई और उनके 'शारदा सदन' से अलग होना पड़ा, किंतु रमाबाई ने अपने स्त्री सुधार अभियान को अविचल मन से जारी रखा किंतु उन्हें अपने सदन को बंबई से पुणे ले जाना पड़ा। स्त्रियों को आत्मनिर्भर और आत्मसम्मान का पाठ पढ़ाने वाली रमाबाई ने अपनी संस्था को भी आत्मनिर्भर बनाते हुए न्यास (ट्रस्ट) स्थापित कर धन संग्रह के कार्य में जुट गई।" इस प्रकार नवजागरण कालीन शिक्षित स्त्रियाँ शिक्षित होकर अपनी आत्मनिर्भरता का परिचय देती हैं व समाज की अनेक स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने में अपना योगदान देती है। वर्तमान समय में समाज एवं परिवार द्वारा स्त्रियों का शोषण देखने को मिलता है। मध्यकालीन इतिहास बताता है कि स्त्रियाँ पहले परिवार द्वारा अधिक शोषित होती थी। आज स्त्री शोषण का अलग रूप समाज में दिखाई देता है। निम्नवर्ग की स्त्रियाँ आज भी पुरुष द्वारा शारीरिक रूप से शोषित की जाती हैं और शिक्षित एवं मध्यवर्ग की स्त्रियों को मानसिक रूप से शोषित किया जाता है। शोषण करने की प्रकिया में बदलाव तो आया है वस्तुतः सम्पूर्ण रूप से खत्म नहीं हुआ है। शोषण का दौर पहले राजाओं द्वारा प्रजा से मालगुजारी वसूलने के रूप में किया जाता था। उसके बाद प्रेमचंद युग में सामंतवादी लोगों द्वारा किसानों एवं स्त्रियों का शोषण किया जाता था। लेकिन अब परिवार में सास-ससुर एवं पति द्वारा स्त्रियाँ शोषित हो रहीं हैं। सुधा अरोड़ा के कथा साहित्य में स्त्री शोषण दो रूपों में दिखाई देता है शारीरिक एवं मानसिक। आज पुरुष जागरूक, शिक्षित स्त्रियों को मानसिक रूप से ज्यादा शोषित कर रहें हैं क्योकि इसका निशान दिखाई नहीं देता है। यह पुरुषों की सोची समझी शोषण करने की रणनीति है। शारीरिक रूप में किये जाने वाले शोषण का चिंह दिखाई देता है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'रहोगी तुम वही' में स्त्री का मानसिक रूप से शोषण किया जाता है। जिसके चिंह कहीं दिखाई नहीं देते है। इस कहानी में स्त्री के प्रत्येक व्यवहार से पति नाखुश रहता है जिससे स्त्री दिन-रात अपने पति के अनुसार बदलने की कोशिश में लगी रहती है। अंततः वह पुरुष की नजरों में एक स्त्री के सिवाय और कुछ नहीं होती है। 'अन्नपूर्णा मण्डल की आखिरी चिट्ठी' कहानी में स्त्री को शादी के बाद रसोई में कैंद कर दिया जाता है। उसका बाहरी दुनिया से कोई ताल्लुक नहीं रह जाता है। इसमें तो लेखिका ने स्त्री के ऐसे अंधकार रूपी घर का वर्णन किया है जहाँ स्त्री को सूर्य की रोशनी तक दिखाई नहीं पड़ती है। 'एक औरत, तीन बटा चार' कहानी में शारीरिक शोषण का वर्णन किया गया है जहाँ पुरुष स्त्री के साथ सहवास करने के बाद सिगरेट से उसके शरीर को जलाता हुआ नजर आता है। लेकिन स्त्री इस प्रकार की यातना को सहने की आदी हो चुकी थी। उसके मरने के बाद आदतन स्त्री, पुरुष के अंदाज में सिगरेट को शरीर में चुभा देती है। हालाँकि भारतीय समाज में स्त्री के लिए उसका पति परमेश्वर के समान माना जाता है। लेकिन अब यह मान्यता पुरानी एवं अपवाद युक्त है। 'नमक' कहानी में स्त्री का चारित्रिक रूप से शोषण होता दिखाया गया है। यहाँ सिया के चरित्र पर दाग उसके पति द्वारा लगाया जाता है, क्योंकि सिया कुछ क्षण किसी दूसरे पुरुष से बात कर रही थी। वह पति के खाने की टेबल पर नमक रखना भूल गई थी। सिया की

यह छोटी सी गलती उसके माता-पिता तक पहुँच जाती है। सिया के लिए पति का प्रतिकार भरा शब्द द्रष्टव्य है- "साहब ने तीन दिन बाद उसके माँ-बाप के घर जाकर उसकी शिकायत की कि वह ऐसी बदचलन औरत के साथ कैसे रह सकते हैं जो उनके दोस्त से बात करने में इतनी मशगूल हो गई कि उन्हें ढ़ंग से खाना भी नहीं खिलाती... और अगली बार ऐसा कुछ फिर दोहराया गया तो वे उसे तलाक दे देंगे।" पढ़ी-लिखी जागरूक स्त्रियाँ आज भी शोषण की शिकार हो रही है। वह सही-गलत की पहचान तो कर पा रहीं हैं, लेकिन परिवार न बिखरे और उसके माता-पिता को उनके द्वारा कोई दु:ख न झेलना पड़े, जिसके कारण वह अपने को बदलने की कोशिश में लगी रहती हैं। जो कि स्त्री के नकारात्मक बौद्धिक पक्ष को बढ़ावा देता है। स्त्री को सकारात्मक सोचना चाहिए क्योंकि वह अब बिना किसी गलती के दोषी ठहराई जा रहीं है। जिसका कोई पुष्ट कारण नहीं बनता कि पुरुष स्त्री का शोषण करता रहे। सिया के समान समाज में ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं जो माता-पिता की चिंता कर पति द्वारा शोषित होती रहती हैं। यह पुरुष नहीं पुरुष का दंभ बोलता है अन्यथा यदि पुरुष के पास धनोपार्जन का कोई विशेष साधन नहीं होता तो समाज में ऐसी समस्याए या शोषण कम देखने को मिलता। आज का पुरुष समाज दंभी समाज है जो स्त्री को अपना कठपुतली बनाकर जैसे चाहै, वैसे नचाता फिरता है। संविधान में समता, समानता और शोषण के विरुद्ध अधिकार मिल तो गया है, लेकिन वह अमल में नहीं लाया जाता है। शोषण का प्रतिकार यदि स्त्रियों द्वारा होता है तो वह परिवार व पति के सम्मान को बचाने के चक्कर में स्त्रियाँ प्रतिकार के खिलाफ नहीं प्रतिकार के समर्थन में खड़ी रहती हैं।

आधुनिक समय की इस भागदौड़ भरी जिंदगी में मनुष्य अकेला जीवन गुजारने के लिए विवश हो चुका है। अकेलापन स्त्री के जीवन को दयनीय बना देता है। जब किसी भी स्त्री को अपने अकेले रहने का एहसास होने लगता है तो वह मानसिक रूप से कमजोर होने लगता है। व्यक्ति के अकेलेपन का चित्रण साहित्य की सभी विधाओं में देखने को मिलता है। किसी स्त्री के अकेले रहने का कारण एक नहीं हो सकता, वह नौकरी के चक्कर में अकेले रहती है, असफल प्रेम के कारण अकेले रहती है, पति की मृत्यु या पुत्रों के दूर हो जाने के कारण अकेले रहने को विवश होती है। सुधा अरोड़ा के कहानियों में भी स्त्री के अकेलेपन का चित्रण किया गया है। 'डेजर्ट फोबिया उर्फ समुद्र में रेगिस्तान' नामक कहानी में एक तरफ स्त्री के पास अपने बच्चे नहीं होते वह अपने पति की पहली पत्नी के बच्चों के साथ रहती है, जो उन्हें छोटी माँ कहकर पुकारते हैं, फिर उसके बाद पति की मृत्यु के बाद वह बिल्कुल अकेले हो जाती है, क्योंकि वे बच्चे भी उन्हें घर पर छोड़ विदेश चले जाते हैं। यहाँ स्त्री का जीवन जो समुद्र जैसे लहरा रहा था, वह रेगिस्तान जैसे निर्जन हो जाता है। उसका अपना पूरा जीवन ही शुष्क रेगिस्तान लगता है। "वे खिड़कियों पर खड़ी होती तो उसे लगता है कि उसकी आँखों के सामने हिलोरे लेता समुद्र नही, दूर-दूर तक फैला खुश्क रेगिस्तान है। यहाँ तक कि वे अपनी पनियाई आँखों में रेत की किरकिरी महसूस करतीं, वहाँ से हट जातीं।" 'निर्मम' कहानी में लेखिका ने स्त्री को बीमारी के कारण अकेले रहने का चित्रण किया है। क्योंकि परिवार होते हुए भी उसको अपने माता-पिता, भाई-बहन से अकेले रहना पड़ता है। वह बीमारी से ग्रस्त थी इसलिए उसके पास रात में सभी सोने से मनाकर देते हैं, क्योंकि वह दर्द के कारण हमेशा कराहें भरती रहती है। लोग सो नहीं पाते हैं। लेखिका ने समाज की यथार्थवादी दृष्टिकोण का चित्रण किया है और स्त्री के अकेलेपन के कारण को दर्शाया है कहीं उन्हें अपना परिवार दूर कर देता है। तो कहीं वे स्वयं से सबको दूर कर देना चाहती है।

निष्कर्ष

बदलते आधुनिक समाज में व्यक्ति संयुक्त परिवार से ज्यादा एकाकी परिवार में रहना पसंद करता है। लेकिन एकाकी परिवार में कहीं-कहीं उसे अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या

ज़्यादा होने से बच्चों की परवरिश बड़े-बुजुर्गों द्वारा की जाती है। लेकिन एकाकी परिवार में सभी कार्य स्त्री को ही करने पड़ते हैं। सुधा जी की अनेक कहानियों में एकाकी परिवार का चित्रण देखने को मिलता है। 'महानगर की मैथिली' में नायिका चित्रा को बच्चों एवं परिवार के साथ-साथ बाहरी क्षेत्र का कार्य अकेले करना पड़ता है। जिसके कारण स्त्री का पूरा जीवन भागदौड़ करने में ही बीतता जाता है। 'रहोगी तुम वही' कहानी में भी एकाकी परिवार का चित्रण है। इसमें स्त्री बच्चों की देखरेख करती एवं अकेले ही घर को संभालती है और पति की डाँट फटकार भी सुनती है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सुधा अरोड़ा की कहानियों में स्त्री जीवन से जुड़ी विभिन्न विसंगतियाँ- समस्याएँ देखने- समझने को मिलती है। स्त्रियाँ आज परिवार की ज़िम्मेदारी के साथ- साथ समाज एवं राष्ट्र सेवा में भी अपना योगदान दे रही हैं। साज में रूढगत प्रथा में परिवर्तन कर समाज को एक नई दृष्टिकोण प्रदान कर रहीं हैं। समाज में हो रहे कुकृत्यों के प्रति आवाज भी उठा रही हैं। इस प्रकार धीरे- धीरे स्त्रियाँ एक नए राष्ट्र का निर्माण करने का प्रयास कर रही हैं।

इनकी कहानियों में कहीं दहेज के कारण कन्या भ्रूण हत्या का अंकन है, तो कहीं दांपत्य संबंधों में तनाव का चित्रण है। स्त्री शोषण का रूप भी कहानियों में देखने को मिलता है। साथ-साथ एकाकी एवं संयुक्त परिवार का चित्रण भी किया गया है। जिनमें स्त्री के अकेलापन का उल्लेख भी किया गया है। अत: लेखिका ने स्त्री पक्ष के सभी मार्मिक बिंदुओं को अपने कहानी साहित्य में उल्लेखित कर स्त्री की दयनीय कारुणिक दशा का चित्रण किया है। जिससे समाज में स्त्रियों के साथ हो रहे अमानवीय कार्य- व्यवहार का पर्दाफाश होता है। साथ ही, स्त्रियों को जागरूक बनाने का संदेश भी समुचित रूप से मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. 21 श्रेष्ठ कहानियाँ, सुधा अरोड़ा, डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2009, पृष्ठ सं.- 156
2. भारतीय समाज में स्त्री, प्रज्ञा शर्मा, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, प्रथम संस्करण 2001, पृष्ठ सं.- 145
3. यहीं कहीं था घर, सुधा अरोड़ा, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण : 2016, पृष्ठ सं.- 156
4. बाधाओं के बावजूद नई औरत, उषा महाजन, मेधा बुक्स, दिल्ली, संस्करण : 2001, पृष्ठ सं.- 55
5. स्त्री-विमर्श आधुनिक युग का नया क्षितिज, डॉ. कष्ण चंद्र चौधरी, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण : 2018, पृष्ठ सं.- 252
6. नवजागरण और स्त्री, मीना शर्मा, अनामिका पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ सं.- 155
7. एक औरत की नोटबुक, सुधा अरोड़ा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2021, पृष्ठ सं.- 135-136
8. 21 श्रेष्ठ कहानियाँ, सुधा अरोड़ा, डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2009, पृष्ठ सं.- 179

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

मेहरुन्निसा परवेज़ के 'कोरजा' उपन्यास में आदिवासी विमर्श

डॉ.बाबासाहेब रसूल शेख
सहायक प्राध्यापक एवं शोधनिर्देशक
हिंदी विभाग, पूना कॉलेज, कैम्प, पुणे -411001

शोध का सारांश:-

मेहरुन्निसा परवेज़ के कथा साहित्य में आदिवासी विमर्ष से संबंधित अनेक आयामों का उद्घाटन हुआ है। उन्होंने आदिवासी जीवन को बहुत नज़दीक से देखा परखा था। अतः आदिवासी जनजीवन की झलक उनके साहित्य में दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक है। 'अकेला पलाश' तथा 'कोरजा' उपन्यास के साथ 'कानीबाट', 'टोना', 'जंगली हिरनी' आदि कहानियों में आदिवासी समाज की अनेक परतों का मार्मिक चित्रण करने में मेहरुन्निसा परवेज़ सफल हुई है। मेहरुन्निसा परवेज़ की कथाओं के पात्र परोक्ष-अपरोक्ष रूप से आदिवासियों के संपर्क में आते रहते हैं। अतः आदिवासियों की जीवन शैली, उनकी दिनचर्या, उनकी आर्थिक लेनदेन , संस्कृति, रीति-रिवाजों,तीज तौहार आदि का चित्रण स्वाभाविक रूप से उनके साहित्य में मिलता है।

बीज शब्द :- 'कोरजा' उपन्यास में आदिवासियों का होनेवाला आर्थिक शोषण, इनके जीवन में नमक का महत्व, इनकी भोली भाली मानसिकता, आयुर्वेद का ज्ञान, स्त्रियों का सम्मान करना। और पूंजीपति लोगो द्वारा शोषण करना साथ ही नेताओ की असली चेहरा सामने लाने का प्रयास किया है।

शोधलेख :-

मेहरुन्निसा परवेज़ ने इस उपन्यास मे आदिवासी समाज की व्यथा पर विचार करने पर मजबूर किया है। इसमे बताया गया हैं कि आदिवासियों के जीवन में नमक का बहुत महत्व होता हैं। नकम खरीदने के लिए ये अपनी किमती वस्तुओं को कौडीयों के दामों में व्यापारियों को बेच देते हैं। व्यापारी इन भोले आदिवासियों का आर्थिक शोषण करते हैं। मध्यप्रदेश के ''जगदलपुर में रहनेवाले प्रायः ज्यादातर कोस्टा लोग नमक का व्यापार करते हैं। बाजार देखकर नमक का भाव घटा-बढा देते हैं। बरसात में जब नदी-नाले भरे रहते हैं तब तो एक पायली नमक को यह लोग दो-दो रुपये तक बेच देते है, जंगल और दूर गाँवों में रहनेवाले आदिवासियों के लिए नमक का बहुत महत्व है। नमक खरीदने यह लोग दूर-दूर से आते हैं, सिर्फ नमक से ही यह भर-पेट भोजन कर सकते हैं। नमक इन्हीं व्यापारियों से, जो जगदलपुर से हाट-हाट बेचने आते हैं, यह लोग खरीदते हैं। अब तो कोई-कोई आदिवासी पैसा देने लगा है, वरना पहले तो यह लोग एक पायली नमक के बदले एक पायली चिरोंजी देते थे।

इस चिरौंजी बीजा का इनके यहाँ कोई महत्व नहीं है, छोटे-छोटे व्यापारी अंदर गाँवों में जाकर ढेर-सारे नमक के बदले चिरौंजी ले आते है और इसे जगदलपुर की दूकानों में असली रेट पर बेचतें हैं और ढेर-ढेर मुनाफा कमाते है। नमक आदिवासियों के लिए सोने-चाँदी से बढ़कर है। पहले तथा अभी भी बहुत-सी जगहों पर नमक के बदले में यह लोग चिरौंजी दाने, चावल, मुर्गा, बकरा आदि एक्सचेंज में देते है। पर अब जो आदिवासी शहर के आस-पास आने से समझदार और होशियार हो गए हैं, वह लोग नमक पैसे से खरीदते हैं।'' 1

जगदलपुर के बाज़ार में मुर्गियों के दाम बहुत घट जाते हैं, क्योंकि ये आदिवासी लोग किसी के भी बहकावे में जल्दी आ जाते है। नसीमा की नानी को यही चिंता हैं वह नसीमा से कहती हैं - ''वो, वह कंठीवाले बाबा हैं न चपकावाले- उन्होंने जाने क्या उल्टी झमड़ी घुमाई कि मांस मछली मत खाओ, शराब मत पियो। उन्हें आदिवासी

मानते भी तो बहुत हैं न, तो लोग धड़ाधड़ गले में कंठी बँधवा रहे थे और नशे की चीजें छोड़ रहे थे, इसलिए आदिवासियों ने इधर मुर्गियाँ सस्ती कर दी थी। ----- अरे बेटी यह आदिवासी ? पूरे भेड़ बकरी से कम हैं ? लकड़ी लेकर जिधर हाँक दो उधर चलें। वह बाबा बिहारीदास ने कंठी चलाई लोग कंठी बँधाकर उसके चेले बन गए। दंतेवरी बस्तर की देवी है। जिसे यह लोग पुरखों से मान रहे हैं। पर अब यह भी राम-कृष्ण की पूजा करने लगे। व्रत रखने लगे, भजन गाने लगे हैं। ---- उस बाबा बिहारीदास ने इन आदिवासियों पर वह रंग जमाया है कि बस कहता है मैं ही तुम्हारा राजा हूँ, मैं ही राजा प्रवीरचंद भंजदेव हूँ, दुबारा जिंदा हो गया हूँ। उनकी आत्मा मुझमे प्रवेश कर गई है।''2

आदिवासी स्त्रियाँ जंगल की संपदा को घरेलू वस्तुओं के रूप में ढालकर उसे बेचकर अपना निर्वाह करती हैं। नसीमा देखती हैं कि ''सड़क पर कोई आदिवासी औरत घुटनों तक पीली साड़ी बाँधें, सर पर झाड़ू का गट्ठा रखे चिल्लाती घूम रही थी। काँटाबाहरी- जो अरहर की सूखी डालें हैं, जो आँगन बुहारने के काम आती हैं।''3

आधुनिकीकरण का प्रभाव केवल शहर, गाँव, कस्बों तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने आदिवासियों के जीवन को भी प्रभावित किया है। आदिवासी लड़कियाँ भी बाज़ारवाद के मोह से अपने को बचा नहीं पाई। ''वे आदिवासी लड़कियाँ जो दो हाथ की जाँघों तक लंबी धोती ओर जंगली फूलों का शृंगार कर ही अपने को पूर्ण मान लेती थीं, आजकल नायलोन की साड़ी, ब्रारसरीज, ऊँचे ब्लाउज, अफगान स्नो और रेमी पाउडर से पोते गए गाल और बालों में खोंसी गई ढेर सारी क्लिपें लगा कर जब निकलती हैं तो अजीब नमूना लगने लगती हैं।''4

आदिवासियों की कला की नकल कर व्यापारी ढेर सारा मुनाफा कमाते है। लेकिन ये आदिवासी स्वयं गरीबी में जीवन यापन करने को बाध्य है। अमित को इसी बात की चिंता है वह कम्मो से कहता है - ''चेंज आया है कम्मो? यही कि पैसे की गिनती नहीं जाननेवाले ये भोले आदिवासी भी अब पैसे का मोल जानने लगे हैं, पर कम्मो, सवाल यह पैदा होता है कि इन्हें पैसे का मोल करना किसने सिखाया? इनकी संस्कृति को किसने बाज़ार में ला खड़ा किया? आदिवासी नृत्य, आदिवासी कला का मोल, महत्व किसने बताया? और जब वे अपना मोल, अपनी अहमीयत समझ गए हैं, तब अपने में लौटना कितना मुश्किल होता है।

मानिक घडवा जिसे काँसे की मूर्तियाँ बनाने के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार मिला है, पिछले दिनों मैं उससे मिलने उसके घर गया तो वह घर क्या, टूटा-फूटा झोंपड़ा ही था समझो, --- इसका अर्थ जाननेवालों ने उस कला की नकल करके ढेरों रुपया कमाया है और इस कला में जान फूँकनेवाला कुंठित है, अभावग्रस्त है क्योकि वह पढ़ा-लिखा नहीं है, वह नहीं जानता कि उसकी बनाई मूर्तियों का बाहर क्या मूल्य है। --- यहाँ मेन रोड पर कई दुकानें हैं जो इस कला की नकल कर साँचे में इसे ढालते हैं और हजारों-लाखों का व्यापार करते हैं।''5

लेखिका को इस बात का सदैव रंज है कि आदिवासियों की अज्ञानता का हमेशा दूसरों ने फायदा उठाया है। इसीलिए यह गरीब हो चुके है। आदिवासी बहुत भोलेभाले होते है। इनके घरों में किमती सागौन की मोटी मोटी बल्लियाँ गडी थी इन्हें नहीं पता था कि सागौन कितना किमती है, उसका फर्निचर बनता है।

बैलाडीला में कलेक्टर ने आदिवासी समाज को धारा से जोडने के लिए सरकारी शादियाँ कराई थी। सरकारी कर्मचारियों ने अपनी नौकरी को सुरक्षित करने के लिए आदिवासी युवतियों से विवाह तो कर लिए थे किंतु ''ये शहरी बाबू- जिन्होंने इन्हें अपनी वासना का ग्रास बनाया, उन्होंने थोड़े दिन कलेक्टर के डर से इन्हें घर में रख कर, उनसे शादी रचा कर क्या किया? इन जंगली हिरनियों को घरेलू औरतों की तरह पर्दे में रखना चाहा। बाहरी आदमियों से मिलने-जुलने से रोका। कहीं किसी से बात करते देख लेते तो मारपीट शुरू कर देते थे। आदमी जितना पढ़-लिख जाता है उतना ही शक्की हो जाता है। हम यह बर्दाश्त नहीं कर पाते कि हमारे घर की औरतें

किसी से मिलें, किसी से बात करें और ये निपट देहाती आदिवासी इस मामले में कितने उदार हैं, तिने साफदिल हैं! शक इन्हें छू तक नहीं गया है।''6

आदिवासियों की समस्याओं को समझने के लिए, उनका समाधान करने के लिए कई नेतागण सरकारी पैसे से इस इलाके का दौरा करते है किंतु उनकी समस्याओं को दूर करने की बजाय ये स्वयं पिकनिक मनाते है और आदिवासियों की किसी भी समस्या का समाधान नहीं खोजते हैं। - ''बाहर से जितने मिनिस्टर आते हैं उनका एक दिन का यहीं का प्रोग्राम होता है। असल में मिनिस्टर बस्तर में सिर्फ घूमने के उद्देष्य से आते हैं। एक दिन चित्रकूट, एक दिन बैलाडीला, एक दिन जगदलपुर, जहाँ सरकेट हाउस में मुड़िया डांस देखे, दो-चार लोगों से मिले, फिर चल दिए यह है आज के मिनिस्टरों का बस्तर टूर। कहने को, पत्रकारों से कहते हैं, हम आदिवासियों की समस्याओं के लिए आए हैं। पर यदि कोई पूछे तो यहाँ की एक भी समस्या का वह नाम भी नहीं गिना सकेंगे।''7

आदिवासियों को भले ही हम तथाकथित सभ्य लोग पिछडा मानते हो किंतु इनकी तरह अनुषासन का पालन हम नहीं करते। इसी कारण शहरों में ट्रैफिक जाम हो जाता है तथा दुर्घटनाएँ घटित होती रहती है। अमित तथा उसके साथियों को ''दूर से कुछ आदिवासी युवक लाइन से एक के पीछे एक आते दिखे, उन्होंने सिर के पीछे जूड़े बाँध रखे थे। गले में सोने की चीप माला थी और धनुष-बाण पकड़े थे। --- यह लोग जब भी चलेंगे तो एक-दूसरे के पीछे। चाहे यह कहीं भी हों, कितनी चैड़ी सड़क क्यों न हो। जगदलपुर की सड़कों पर भी यह चलेंगे तो एक के पीछे एक, चाहे साथ में बीस आदमी क्यों न हो। सब एक के पीछे एक लाइन से चलते हैं जैसे बीहड़ जंग लमें किसी पगडंडी पर चल रहे हो।''8

निष्कर्ष :- आज निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आदिवासी समाज को जड़ी-बूटियों का बहुत ज्ञान होता है, किंतु अज्ञानता के कारण ये इसका लाभ नहीं उठा पाते और इनका यह अनमोल ज्ञान उन्हीं तक सीमित रह जाता हैं। रब्बो नसीमा से कहती है - ''इन पहाड़ों पर ऐसी बेशकीमती जड़ी-बूटी मिलती हैं, जो लाख रुपयों में भी नहीं मिलेगी। यहाँ एक ऐसा पेड़ है जिसके पत्तों को टूटी हड्डी के आस-पास लपेट दिया जाए तो कुछ दिनों में टूटी हड्डी जुड जाती है। न प्लास्टर का चक्कर, न दवा, न इंजेक्षन का खर्च। पर ये आदिवासी इन जड़ियों का, इन पेड़ों का नाम, अता-पता कुछ नहीं बताते।''9

इस प्रकार 'कोरजा' उपन्यास में आदिवासियों का होनेवाला आर्थिक शोषण, इनके जीवन में नमक का महत्व, इनकी भोली भाली मानसिकता, आयुर्वेद का ज्ञान, स्त्रियों का सम्मान करना नेताओ द्वारा शोषण, जल जमीन और जंगल को उजाड़ देना आदि अनेक पहलुओं का मार्मिक चित्रण मिलता है।

संदर्भ सूची:-

1. कोरजा - मेहरुन्निसा परवेज, पृ.27-28
2. वही, पृ.45
3. वही, पृ.76
4. वही, पृ.101
5. वही, पृ.104
6. वही, पृ.107-108
7. वही, पृ.155
8. वही, पृ.168
9. वही, पृ.187

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

दलित हिंदी काव्य की सामाजिक अस्मिता

प्रा डॉ गजानन सवने
सहाय्यक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, वसुंधरा महाविद्यालय घाटनांदुर
त. अंबाजोगाई जि. बीड

प्रो.(डॉ) प्रकाश खुळे
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
बाबुरावजी आडसकर महाविद्यालय
केज जि. बीड

भूमिका:

समकालीन हिंदी साहित्य में अनेक विमर्श दिखाई देते है। जिसमे स्त्री विमर्श,अल्पसंख्यांक विमर्श,आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श थर्ड जेंडर विमर्श आदि है। दलित विमर्श का समकालीन हिंदी साहित्य मे अधिकतम मात्रा मे चर्चा रही है और आज भी हो रही है। दलित शब्द कि व्युत्पत्ति संस्कृत के' दल' धातू से बना है, जिसका अर्थ होता है दबा हुआ,कुचला हुआ । अर्थात जिसका सभी व्यवस्था से शोषण हुआ है, उसे दलित कहा जाता है। दलित विमर्श की प्रेरणा डॉ. बी. आर. आंबेडकर है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के विचारों से प्रेरित होकर दलित समाज के साहित्यकारोने अपनी अस्मिता को सिद्ध करने के लिए लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। दलितोपर सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व्यवस्था ने वर्षो से शोषण किया है। इस शोषण का विरोध करके अपने हक्क ,अधिकार के लिए संघर्ष किया है। यह संघर्ष समकालीन हिंदी साहित्य के विविध विधा में चित्रित हुआ है। दलित विमर्श प्रथम मराठी भाषा मे आत्मकथा विधा द्वारा मराठवाडा भूमी से निर्माण हुआ है। आज दलित विमर्श का अनेक विधा में और अनेक भाषा में दिखाई दे रहा है। डॉ. रश्मि चतुर्वेदी लिखते है की, " वर्तमान मे दलित कविता मे आक्रोश,विद्रोह और संघर्ष के स्वर विद्यमान हैं। आज कविता सदियों के संताप से संत्रस्त एक बडे सांस्कृतिक विद्रोह की पुकार है,जिसमे मुक्ती की छटपटाहट के साथ- साथ समानता और बंधूत्व भाव की समरसता के समाज की संरचना का स्वप्न निहित है। इसकी मूल चेतना आंबेडकर की विचारधारा से ओत - प्रोत है।"1 इसके साथ आज" दलित साहित्य प्रकृति के सौंदर्य और नायिका के नखशिख वर्णन को नकार कर वर्तमान में साहित्य की विविध विधाओं में दस्तक दे रहा है। हिंदी दलित साहित्य अपने तेवर से उँचाइयों के नए मापदंड और आयाम स्थापित करता हुआ अपनी पिडाओं और अनुभूतियों को यथार्थ के सौंदर्य मे पिरोकर नए बिम्बो के विशिष्ट के साथ दृष्टव्य है। "2

समकालीन हिंदी कविता मे दलित काव्य की अलग पहचान है।" हिंदी मे दलित कविता की बकलदा शुरुवात बीसवी के आठवें दशक मे हुई। इसकी प्रेरणा डॉ. आंबेडकर की विचारधारा तो थी ही, महात्मा फुले का संघर्ष, मार्क्स की क्रान्तिदृष्टि तथा मराठी का दलित साहित्य रहा । इसके प्रारंभिक दौर में हम माता प्रसाद और डॉ. राम शिरोमणि होरिल जैसे कवियों के सृजन को देख सकते हैं।"3 इसके साथ अनेक दलित काव्य का निर्माण हुआ है ।जो सामाजिक असमानता, अलगाव, नफरत, अस्पृश्यता, अन्याय, अत्याचार की विरोध में दलित कवियों ने अपनी अस्मिता जागृत की है। कवि डॉ. कँवल भारती 'होली' कविता मे इस तथ्थ को प्रस्तुत करते हैं-

"मै हिंदू धर्म का विरोधी नही हूँ

मै विरोधी हूँ

असमानता का

अलगाव का

नफरत का

अस्पृश्यता का

जो भी धर्मशास्त्र, देवता,महापुरुष

सिखाते हैं असमानता,अलगाव ,नफरत अस्पृश्यता

न्योयोचित ठहराते हैं जो वर्णव्यवस्था को,

मैं उन सबका विरोधी हूँ"4

इस संदर्भ में ईश गंगानिया लिखते है की,"एक वैचारिक क्रांती का दर्शन है, जो भारतीय समाज मे व्याप्त सभी प्रकार के अंधविश्वासों, मान्यताओं, परंपराओं व रीति- रिवाजों का पोषण करनेवाले वेदों, स्मृतियों व अन्य धार्मिक ग्रंथो का सिर्फ वैज्ञानिक विश्लेषण ही नही बल्की भारतीय समाज में व्याप्त सभी प्रकार की असमानताओं, भेदभाव व शोषणखोर प्रवृतियों के वैकल्पिक समाधान के साथ- साथ समतामूलक शांन्तिमय प्रगतशील ,सुखमय व समृद्ध भारत के निर्माण का विकल्प भी प्रस्तुत करत हैं।" 5

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकी जी ने अपनी कविता मे सामाजिक अस्मिता का चित्रण किया है,

"एक दिन भी पानी न मिले यदि तुम्हें

उठा लेते हो

जमीन- आसमान सिर पर

एक मै हूँ

जिसकी न जाने कितनी पिढियाँ

रही प्यासी बिना पानी

युगों- युगों तक " 6

दलित समाज युगों-युगों से प्रताडित, शोषित, वंचित रहा है। इन पर हुए अन्याय,अत्याचार को साहित्य के माध्यम से अनेक सामाजिक अस्मिता को उजागर करने का काम दलित कवियों किया हैं। इसके साथ वर्णव्यवस्था और जातिवाद का विरोध किया है। कवि वाल्मीकी लिखते है,

"स्वीकार्य नहीं मुझे

जाना

मृत्यू के बाद

तुम्हारे स्वर्ग में

वहाँ भी तुम

पहचानोगें मुझे

मेरी जाती से ही ।"[7]

इसी प्रकार कवि जयप्रकाश कर्दम जी ने भी सामाजिक पिडा का तीखे स्वर में विरोध किया है। वह लिखते है,

"तमाम विरोधों और खतरों के बावजूद

जाति जंगल का यह निरीह जीव

अपनी मुक्ती केलिए अडा है

अपने अस्मिता और अस्तित्व केलिए

लडा है

और आज

तमाम हाँसलों के साथ

हाथों मे खंजर लिए वह

दमन की दहलीज पर खडा है

और ललकार रहा है चीखकर

बाहर निकल हराम जादे

तेरी ऐसी- तैसी"[8]

इससे स्पष्ट हो जाता है की, सभी दलित कवियों की काव्य मे सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण किया हैं।इस अन्यायभरी सामाजिक व्यवस्था से छुटकारा पाने केलिए अनेक प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं। दलित कविता ने सामाजिक परिवर्तन की बात करके राष्ट्र निर्माण का आवाज दियी है। वह राष्ट्र जहाँ सब समान हो, कोई भी जाति से अपमानित नहीं हो। इस संदर्भ कवि डॉ.कँवल भारती अपने कविता मे लिखते है,

“अब तुम ताजी हवाओं को रोक रहे हो

बन्द करने लगे हो खुले वातायनों को

लेकिन अब वे बन्द नही होंगे

क्योंकि, चौखट का आखिरी हिस्सा भी टूट गया है

इसलिए अब और मत रचो

विशेषाधिकार और निर्योग्यताओं के मानस

असमानता की विद्रूपताएँ

रचो ऐसी पारमिताएँ

की हम बन सकें एक राष्ट्र"[9]

उपर्युक्त विवेचन स्पष्ट हो जाता है की, दलित कविता सामाजिक अस्मिता की कविता हैं। इससे सामाजिक वर्ण व्यवस्था का विरोध किया है। इस व्यवस्था से उपजा विद्रोह और आक्रोश को सामाजिक परिवर्तन का आवाज हैं। जिसमे दलितो पर हुए युगों - युगों का अन्याय,अत्याचार, पिडा, वेदना को चित्रित किया है। इस अन्याय अत्याचार करनेवाली अवस्था से छुटकारापाहने के लिए दलित कविता ने सामाजिक अस्मिता को जागृत किया हैं। यह कार्य करते समय सम्यक समाज की संरचना करने का प्रयास किया हैं।

संदर्भ:

1. रश्मि चतुर्वेदी, हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ, सरस्वती प्रकाशन 40149, बौद्ध नगर नौबस्ता कानपुर-21प्र.सं 2014 ,पूरोवाक से
2. रश्मि चतुर्वेदी, हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ, सरस्वती प्रकाशन 40149, बौद्ध नगर नौबस्ता कानपुर-21प्र.सं 2014 , मुख्यपृष्ठ से
3. रश्मि चतुर्वेदी, हिंदी दलित साहित्य की विविध विधाएँ, सरस्वती प्रकाशन 40149, बौद्ध नगर नौबस्ता कानपुर-21प्र.सं 2014 ,पृ.सं.21
4. डॉ. कँवल भारती, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती,बोधिसत्व प्रकाशन,स.1996 प्र. सं. 26
5. .सं. तेजसिंह,अपेक्षा(त्रैमासिक) जुलाई- सितंबर 2008, दिल्ली ,पृ. स. 16.
6. ओमप्रकाश वाल्मीकी, बस्स! बहुत हो चुका, द्वि.स. 2008, गौतम बुक सेन्टर दिल्ली, प्र. सं. 55
7. ओमप्रकाश वाल्मीकी, बस्स! बहुत हो चुका, द्वि.स. 2008, गौतम बुक सेन्टर दिल्ली, प्र. सं. 78
8. 08. जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नही था मैं, सागर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.35
9. .डॉ. कँवल भारती, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती,बोधिसत्व प्रकाशन,स.1996 प्र. सं. 59-60

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

नारी विरोधी सामाजिक पंगुता का यथार्थ दर्शन करती प्रभा खेतान

डॉ अरविंद अंबादास घोड़के
हिंदी विभाग, सहयोगी प्राध्यापक
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबेजोगाई

भूमिका / प्रस्तावना :

कुटुंब-परिवार सामाजिक व्यवस्था की एक नीव है, किंतु इसी कुटुंब व्यवस्था के हाथों सबसे अधिक पीड़ा स्त्री को मिलती है। सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए परिवार जरूरी है किंतु इस परिवार के बहाने पुरुष व्यवस्था द्वारा जो स्त्री को गुलामी के जंजीरों में बांधकर रखने की कोशिश की जाती है।नारी विरोधी कुटुंब व्यवस्था के चलते आज परिवार टूटने के कगार पर अधिक संख्या में दिखाई देते हैं। भारतीय समाज व्यवस्था में पति को परमेश्वर मानकर स्त्री को उसकी दासी बनाने की चेष्टा सदियों से की गई है किंतु आज के आधुनिक नारी पति को परमेश्वर के बजाए पार्टनर के रूप में अपना कर उसकी सहेली, दोस्त, साथी के रूप में अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है। पारंपरिक व्यवस्था वाले पुरुष के मन में पत्नी की भूमिका दासी तक सीमित होती है। पारंपरिक पुरुष वर्चस्ववादी भूमिका और आधुनिक युग में स्त्री पुरुष समानता की भूमिका में संघर्ष होता है। इस संघर्ष के दौर में महिलाओं के मन में स्त्री अधिकारों के प्रति सजग करने का कार्य आधुनिक महिला रचनाकार ने किया है। प्रभा खेतान द्वारा लिखित आत्मकथा 'अन्या से अनन्या में भारतीय नारी के यथार्थ रूप का चित्र साझा किया गया है। आज भी गांव की खेती हो अथवा असंगठित मजदूर वर्ग में आर्थिक दृष्टि से नारी को दुय्यम स्थान दिया है। आज खेती में काम करने वाले पुरुष मजूर को जितनी तनखा मिलती है उतनी तनखा महिला को नहीं मिलती। खेती में ५०० रु कमाने वाला पुरुष के साथ काम करने वाली पत्नी को २५० रु मिलते हैं। पुरुषों से कंधे से कन्धा मिलाकर काम करने वाली पत्नी को आधी मजूरी में काम करना बड़ा ही अन्यायी और जुल्मी कार्य हैं। घर से बाहर करने वाले काम का आधा मूल्य मिलने की गारंटी है किन्तु घर में सबेरे सबेरे से लेकर रात तक अपने परिवार के लिए अनेक प्रकार के किए गए कामों का कोई मूल्य नहीं है। दिन – रात घर गृहस्थी के लिए मेहनत करने वाले नारी के नसीब में सम्मान की जगह यातना, पीड़ा और अपमान ही दिखाई देता हैं।

बीजशब्द:

कुटुंब-परिवार, सामाजिक व्यवस्था, आधुनिकता, आत्मनिर्भर, एकांगी प्रतिष्ठा, नैतिकता, असंगठित मजदूर, पारंपरिक पुरुष वर्चस्ववादी, गुलामी, यथार्थ, पंगुता, विद्रोह, बहिष्कार

मुख्य अंश :

आधुनिकता का दिखावा दिखाने वाले इस भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति बस दिखावे की ही दिखाई देती है। वास्तविक रूप में देखा जाए तो इस खोकली आधुनिकता के पीछे स्त्री का शोषण आज भी जैसे के वैसे जारी है। स्त्री आर्थिक दृष्टि से परावलंबी हो, या आत्मनिर्भर हो किंतु स्त्री का शोषण इस पुरुष वर्चस्वादी समाज व्यवस्था में तय है। समाज स्त्री विरोधी एकांगी प्रतिष्ठा के बहाने स्त्री का हर रूप में शोषण करना जानता है और स्त्री भी प्रतिष्ठा अथवा नैतिकता के डर से इस चंगुल में फस चली जाती है। शिक्षित, आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर प्रभा सामाजिक नैतिकता के डर के इस चंगुल में फांसी हुई दिखाई देती है। वह अपना घर बनाना चाहती है किंतु

अविवाहित महिला अपना घर नहीं बन सकती यह बात उसे डॉक्टर साहब के दोस्त समझने की कोशिश करते हैं। " सिंदूर की पहचान तो रहती है। वे मैसेज कहलाती है, मिस नहीं।आप समझती क्यों नहीं कि आप अकेली औरत है और अकेले फ्लैट में लोग आपको शक की निगाहों से देखेंगे।"[1] डॉक्टर साहब के दोस्त नारी विरोधी सामाजिक व्यवस्था का दर्शन करता है। अकेली औरत को इस समाज व्यवस्था में रहना भी पाप समझा जाता है। उसे डर-डर के जीने के लिए किसी न किसी पुरुष के गुलामी के जंजीरों में जकड़ कर रहने के लिए मजबूर किया जाता है। अगर कोई महिला इस पुरुष वर्चस्वादी गुलामी के जंजीरों को तोड़कर जीने की कोशिश करें तो, समाज व्यवस्था उसे जीने नहीं देता। उसे जगह-जगह पर प्रताड़ित करते हुए उसका अपमान कर देती है। प्रभा जी के साथ भी ऐसा ही समय-समय पर होता है।

स्त्री विरोधी पुरुष मानसिकता की स्थिति तथा महिलाओं की दयनीय स्थिति पर पर प्रकाश डालते हुए प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा अन्या से अनन्या में लिखती है कि "ठीक है... ठीक है... क्या फर्क पड़ता है, वह चाहे पति हो या दोस्त तुम्हें छोड़कर चला गया ना। वैसे जानती हो मर्द हमेशा औरत को रुलाता है, ऑल मैन आर बास्टार्ड। वैसे इन मर्दों को पैदा हम औरतों ने किया है, नौ मिनट का सुख... और नौ महीने का पेट... ही... ही... ही...।"[2] आज के आधुनिक नारी अपने स्थिति को लेकर बड़ी चिंतित और संवेदनशील भी बनी हुई दिखाई देती है। प्रभा खेतान जी का दोस्त डॉक्टर साहब जो उसका पति नहीं है लेकिन हमसफर सब कुछ है। प्रभा जी ने सामाजिक व्यवस्था को तोड़कर अपनी तरह की जिंदगी जीने की कोशिश की है। इसी कोशिश में प्रभा जी डॉक्टर साहब से प्रेम करती है किंतु उसके साथ शादी करना नहीं चाहती। बगैर शादी के उनके साथ रहती है। लेकिन प्रभा के इस व्यवहार को समाज अस्वीकार करता है। सामाजिक क्रिया क्रम में उसके ऊपर बहिष्कार डाल देता है। समाज बस बाहर का ही नहीं उसके परिवार के सदस्य भी उससे मुंह मोड़ लेते हैं। सामाजिक क्रिया-क्रम से उसे दूर रखने की भली भांति कोशिश की जाती है। प्रभा जी को सार्वजनिक समारोह में सम्मिलित करने से मना कर दिया जाता है।

" इसे हम कैसे अपने घर बुलाएं ?"

" इससे कैसे दोस्ती करें ? पूछेंगे नहीं लोग इसके चरित्र के बारे में...

" अरे लोग तो हमसे सवाल-जवाब भी करेंगे ? हमारी भी तो बहू बेटियां हैं। उनके सामने ऐसे गलत उदाहरण कैसे परोस दे।"

" इसकी देखा देखी हमारी बहू बेटियां बिगड़ी नहीं ? और कल को भी भी किसी से उलझ जाएं तो ?"

"इस औरत को हम मंच पर कैसे बिठाए ? माना की पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर स्त्री है पर ऐसी स्त्री समाज की नाक नहीं बन सकती।"[3]

प्रभा जी को लेकर मारवाड़ी समाज में सामाजिक मंच पर आते समय इसी समाज के लोगों के बीच की चर्चा स्त्री विरोधी समाज व्यवस्था के यथार्थ रूप का प्रदर्शन करता हुआ दिखाई देता है। डॉक्टर साहब की बगैर शादी के प्रभा के साथ रहते हैं, उसे अपनाते हैं। लेकिन समाज डॉक्टर साहब के विरोध में कुछ नहीं कहता। लेकिन प्रभा जो एक स्त्री है इसलिए उन्हें खरी खोटी सुनाते हैं तथा उसके नैतिक पतन की चर्चा करता रहता है। स्त्री के कार्यों को उसके त्याग भाव को नजरअंदाज करते हुए, गुलाम की तरह उसके साथ व्यापार करते समय भारतीय

समाज व्यवस्था कभी पीछे नहीं हटी है। स्त्री कितना भी अपनी भावनाओं का गला घोटकर पुरुष का साथ दे किंतु पुरुष जो है बस उसके सुख को छीन ने में ही अपने आप को समर्थ समझता है।

शिक्षा, सविधान और कानून के बल पर भारतीय नारी/महिलाओंको भले ही अधिकार, सुरक्षा तथा आरक्षण मिलता हो किंतु सामाजिक व्यवस्था में इन सबका कोई मूल्य नहीं होता है। क्योंकि भारतीय जनमानस में आज भी महिला को चक्की और चूल्हे तक, बच्चो के पालन पोषण तक सीमित रखा गया है। संविधान के कारण मिले आरक्षण के कारण राजकीय पद पर कार्यरत महिला के पति या लड़के के हाथ में ही सत्ता की असली बागड़ोर होती हैं। बहुसंख्य राजकीय पद पर कार्यरत महिला सिर्फ और सिर्फ कठपुतली बनकर रह जाती हैं।भारतीय समाज व्यवस्था में एक समानता का दृष्टिकोण अपनाया हुआ दिखाई नहीं देता है। आज के आधुनिक भारत में स्त्री की यथार्थ दशा का चित्रण करते हुए प्रभा खेतान की लिखती है "औरत के आर्थिक अवदान को निकालने की परंपरा रही है। पहले गृहस्थी में उसके श्रम को नकारा जाता है, फिर मुख्य धारा में यदि उसे स्थान दिया जाता है। तब उसे स्त्री को या तो अपवाद मानकर पुरुष वर्ग अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है या फिर उसे पर धकेल दिया जाता है। पर आने वाले वक्त में औरत की सबसे बड़ी लड़ाई इस मुख्य धारा में बने रहने की होगी ।"[4] स्त्री के प्रति अलग नैतिकता के मापदंड लगाए जाते हैं और पुरुषों के प्रति अलग मापदंड लगाए जाते हैं। शादीशुदा डॉक्टर साहब पत्नी के होने के बावजूद अन्य महिलाओं के साथ संबंध बनाए रखते हैं। इससे आगे जाकर पढ़ी-लिखी उनसे उम्र में १४ साल छोटी लड़की को अपने घर में रखते हैं फिर भी उनका समाज उन्हें अनैतिक नहीं समझता बल्कि उनके समाज में उनका सम्मान मिलता हुआ दिखाई देता है। वहीं दूसरी ओर प्रभा जी सिर्फ एक ही पुरुष को चाहती है, लेकिन उनका कसूर एक ही था कि वह शादीशुदा था। सामाजिक नियमों में शादीशुदा पुरुष को चाहना गलत है। इसलिए उनके ऊपर अनेक सामाजिक बंधन लगाए जाते हैं। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में डॉक्टर साहब पुरुष है इसलिए उनके प्रति समाज में एक न्याय और प्रभा जी स्त्री है इसलिए उनके प्रति अलग न्याय दिखाई देता है। पुरुषों के इस नीति के खिलाफ अनेक बार आवाज उठाई गई है। किंतु पुरुषों ने स्त्री को दबाने की नीति बने हुए रखिए इसलिए इन पुरुष व्यवस्था से परेशान होकर प्रभा जी कहती है कि"स्त्री– पुरुष अभी दोस्त नहीं हुए हैं। पुरुष मुझे चाहे जितने वायदे करें मगर देर–सवेर पितृ व्यवस्था उसे पर हावी हो जाएगी और वह मुझे व्यवस्था की नजरों से ही तौलेगा ।सामाजिक परिवेश की सामूहिक आवाज वही की वही ठहरी हुई हैं, जहां हजार साल पहले थी।"[5] स्त्री विरोधी पुरुष मानसिकता की स्थिति तथा महिलाओं की दयनीय स्थिति यथार्थ चित्रण प्रस्तुत आत्मकथा 'अन्या से अनन्या में किया हैं ।

परिणाम / निष्कर्ष :

मनुष्य भाषा के सहारे आज विश्व में राज कर रहा है। इसी भाषा ने मनुष्य को एक साथ जोड़ने में बड़ा योगदान दिया है। इसी भाषा में समाज और संस्कृति का निर्माण किया है। भाषा के सहारे समाज का निर्माण हो गया और यह समाज, सामाजिक व्यवस्था करने के लिए अनेक सामाजिक नियमन करता चला गया। मनुष्य के विकास का अगर आरंभिक काल देखा जाए तो इस समाज व्यवस्था पर मातृसत्ता व्यवस्था का प्रभाव दिखाई देता था किंतु समय के गतिशीलता में मातृसत्ता व्यवस्था को पीछे छोड़कर पुरुष प्रधान व्यवस्था ने उसे अपने हाथों में लेकर स्त्री को अपने हाथों की कठपुतली बनाकर उसकी हर जगह पर शोषण करने के लिए मजबूर किया। आधुनिक काल तक आते-आते अनेक रचनाकारों ने स्त्री शोषण व्यवस्था पर प्रकाश डाला है उसे एकांगी व्यवस्था पर प्रहार किया है । स्त्री और पुरुषों से मिलकर बना हुआ यह समाज धीरे-धीरे पुरुष सत्तामक बन गया और उसे समाज व्यवस्था में पुरुषों द्वारा बनाए गए सामाजिक नियमों का ही बोलबाला दिखाई देने लगा। आज के आधुनिक युग में

भी आधुनिकता के नाम पर बस दिखावे के आधुनिकता दिखाने वाले पुरुषों ने स्त्री को अपनी दासी बनाने के लिए अनेक प्रकार की नई व्यवस्था निर्मित की है। सिर्फ पुरुषों ने ही नहीं पुरुष प्रधान मानसिकता वाले स्त्री ने भी पुरुष प्रधान व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अपना योगदान दिया है। सदियों से स्त्री विरोधी इसी व्यवस्था के विरोध में आधुनिक युग की अनेक रचनाकारों ने अपनी आवाज उठाई है इस आवाज में प्रभा खेतान की आवाज पीछे नहीं रही। बचपन से लेकर अपने जीवन के अतीम पड़ाव तक के जीवन का प्रस्तुत आत्मकथा 'अन्या से अनन्या में सजीव चित्रण किया है। इस आत्मकथा में लड़की को लेकर (मारवाड़ी)समाज में प्रचलित विचार प्रकट किए हैं, तथा उसे सामाजिक मान्यता को ठुकराकर मनचाहे ढंग से जीवन जीने के लिए अनेक सामाजिक नारी विरोधी कुप्रथा का शिकार होना पड़ता हैं।

संदर्भः-

1. अन्या से अनन्या - प्रभा खेतान आत्मकथा- पृष्ठ २४७
2. वही - पृष्ठ - 10
3. वही - पृष्ठ - 198
4. वही -पृष्ठ -२१२
5. वही -पृष्ठ- २५७

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

प्रभा खेतान के उपन्यासों में प्रगतिशीलता

प्रा.व्ही.डी.कापावार
हिंदी विभाग प्रमुख
कला,वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय
किल्ले-धारूर
नायगाव[बा],जि.नांदेड

प्रो.डॉ.एस.पी.वटटमवार
हिंदी विभाग
श्री.शरदचंद्र महाविद्यालय
जि बीड

प्रभा खेतान उत्तरशती की हिन्दी साहित्य की सुप्रसिद्ध, बहुचर्चित लेखिका, कवयित्री, समाज-सेविका, व्यवसायिका और नारीवादी चिंतक थी । उनके विषय में डॉ.हरिशंकर दुबे ने सही लिखा है- "अपने परिश्रम के बल पर न केवल साहित्याकाश में वरन् व्यापारिक क्षेत्र में भी अपनी पृथक् पहचान बनाने में समर्थ प्रभा खेतान कदाचित प्रथम ऐसी महिला है जिन्होंने वैश्विक धरातल पर नारी को प्रतिष्ठा दी ।"१ हिन्दी महिला उपन्यास लेखन में आपका बहुमूल्य योगदान रहा है । किसी भी रचनाकार के साहित्य का मूल्यांकन करने से पूर्व उनके जीवन और व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करना अनिवार्य बन जाता है क्योंकि रचनारकार के साहित्य पर उनके जीवन और व्यक्तित्व की गहरी छाप होती है । अतः इस अध्याय के अंतर्गत प्रभा खेतान के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है।

'प्रगति' शब्द का अर्थ है-आगे बढ़ना, उन्नति। तथा प्रगतिशील शब्द का अर्थ है-आगे बढ़ने वाला, उन्नतिशील। इस प्रकार प्रगतिशील स्त्री पात्रों से आशय ऐसी स्त्री पात्रों से है जो परम्परा को तोड़कर आगे बढ़ना चाहते हैं तथा वर्तमान परिस्थितियों से बाहर निकलकर अपनी अलग पहचान कायम करना चाहते हैं और समाज को उन्नति की ओर बढाना चाहते हैं। समीक्ष्य उपन्यास-साहित्य में चित्रित किये गये ऐसे अनेक स्त्री पात्र हैं, जो आगे बढ़ने को तत्पर हैं तथा विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित करने को तैयार हैं।

निम्न उपन्या सो का संक्षिप्त परिचय ;

'आओ पेपे घर चले' उपन्यास में प्रगतिशीलता:

'आओ पेपे, घर चलें' उपन्यास में लेखिका स्वयं पात्र है जो अपने आप में प्रगतिशील स्त्री की पहचान रखती है। वह मारवाड़ी परम्पराओं को तोड़ते हुए विदेश जाती है, वहाँ पर सभी परेशानियों का सामना करते हुए अपनी एक अलग पहचान बनाने की कोशिश करती है, जिससे वह आर्थिक स्वतंत्रता हासिल कर सके-''नहीं मेरी लड़ाई इसी समाज से चलेगी। आप नहीं जानती, बहन जी औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित है।.....कुछ दिनों के लिए देना होगा। नहीं तो इस समाज में मुझे अपनी मर्जी से जीने नहीं दिया जाएगा।'[२] इसी उपन्यास की पात्र मिसेज हेल्गा बेरी भी अपने पैरों पर खड़ी होकर अलग पहचान बनना चाहती है और जीवन में आगे बढ़ना चाहती है-'हाँ, बेरी तो कमाती ही थी, पर हेल्गा को अपनी अलग पहचान चाहिए थी। वह केवल पत्नी और माँ की भूमिका में सिमटकर नहीं रहना चाहती। स्त्री पात्र आइलीन, हेल्गा, एलिजा, मरिल सभी आर्थिक रूप से संपन्न होते हुए अपने अस्तित्व की खोज के लिए उनमे छटपटाहट दिखती है|

'छिन्नमस्ता' उपन्यास में प्रगतिशीलता:

'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका प्रिया प्रगतिशील विचारों की स्त्री है। उसका सोचना है कि यदि स्त्री को कुछ करना है तो उसे समाज की परम्पराओं को तोड़ते हुए स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा। प्रिया का मानना है कि औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित है। मारवाड़ी परिवार में जन्मी तथा अग्रवाल परिवार की बहू प्रिया अपने पैरों पर खड़ी होने के लिए, अपनी अलग पहचान बनाने के लिए पति से अलग रहने लगती है तथा समाज में एक अलग पहचान बनाती है। स्वयं प्रिया के ही शब्दों में-''तुम्हारी जैसी, जीजी लोगों जैसी जिन्दगी मैं नहीं स्वीकारना चाहती थी। मैं बड़ी भाभी जी की तरह घुट-घुटकर नहीं मरना चाहती। मगर फिर भी इस परम्परा की जड़ें शरीर में समाई रही हैं? सदियों की इस अमानवीय परम्परा को किस बीमारी का नाम दूँ जहाँ मेरी जैसी विद्रोही लड़कियाँ भी समर्पिता पत्नी और माँ बन जाने को विवश हो जाती हैं? मैंने अपनी जिन्दगी का एक लम्बा हिस्सा अम्मा की जैसी न हो जाने के संघर्ष में लगा दिया।.....मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। क्या एक बूँद आँसू में ही स्त्री का सारा ब्रह्माण्ड समा जाए? क्यों? किसलिए? रोना और केवल रोना, आँसूओं का समन्दर आँसुओं का दरिया और तैरते रहो तुम। अम्मा, जीजी, भाभीजी, ताई, चाचियाँ, यहाँ तक कि मेरी शिक्षिकाएँ भी, जिनकी ओर मैंने बड़ी ललक से देखा, जिनको मैंने क्रांतिचेतना पायी थी, वे भी तो उसी समन्दर को अपने-अपने आँसुओं से भरति चली जा रही थीं।''.....नरेन्द्र मैं यह व्यवसाय रुपये के लिए नहीं कर रही। हाँ, चार साल पहले जब मैंने पहले-पहल काम शुरू किया था, मुझे रुपयों की भी जरूरत थी। पर आज मेरा व्यवसाय मेरी आइडेंटटी है। यह आए दिन की विदेशों की उड़ान.....यह मेरी जिन्दगी के कैनवास को बड़ा करती है। नित्य नए लोगों से मिलना जुलना, जीवन के कार्य जगत को समझना। मुझे जिंदगी उद्देश्यहीन नहीं लगती।...मैं जिंदगी में क्रान्ति चाहती हूँ। मैंने अपनी जिन्दगी की तारीख खाली पन्नों पर खुद लिखी है।'[3]

ऐसा नहीं है कि स्त्री का प्रगतिशील होना आसान हो यदि वह पुरुषों की बनाई हुई व्यवस्था को तोड़ती है तो उसे सजा भी मिलती है प्रिया के साथ भी ऐसा ही हुआ-''व्यवस्था को तोड़ने वाली औरत को जहाँ समाज सौ कोड़े लगाता है, वही पुरुष को मंच पर क्रांतिकारी कहकर बैठाता है। औरत हर तरह मरति है। लेकिन रोती हुई औरत मुझे अच्छी नहीं लगती। मुझे औरत की इस निष्क्रियता पर झुँझलाहट होती है। यह क्या घुट-घुट कर मरना।....जरूरत तो इस बात की थी कि मैं इस ढ़ाँचे के अनुसार ढ़ल जाती पर ढ़ल नहीं पा रही थी।....तुम ठीक कह रही हो जूडी! व्यवस्था के बाहर पैर रखने से बहुत निर्मम सजा मुझे मिली। अपने मन को मैंने टुकड़ों में बाँट लिया है और मन के दरवाजे हमेशा के लिए बन्द कर लिए हैं।' छिन्नमस्ता उपन्यास में प्रिया ही नहीं इसकी पात्र नीना ने भी विपरीत परिस्थितियों में रहकर स्वयं अपनी पहचान बनाई है। नीना नौकरी करती है, उसका मानना है कि-''नहीं, जिन्दा रहने और अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम अपमान और वंचना को भी याद रखें। मुझे आप ये सब 'चुप-चुप रहो' वाली बातें न सिखलाएँ तो!...अपने पैरों पर खड़ी स्त्री का कोई निरादर नहीं कर सकता। भाभी! पापा का महीने का महीने रुपये देना ? मुझे नफरत होती है उनसे। सच कहती हूँ भाभी, ऐसे बुजदिल इंसान से मुझे सख्त नफरत है।' इसके साथ इलोना भी प्रगतिवादी स्त्री की भूमिका में है। उसकी माँ का यह कथन इंगित करता है कि-''आज कम से कम मुझे पता है कि इलोना एक व्यक्ति की तरह सोचती है, अपना निर्णय खुद लेती है।"

'पीली आंधी' उपन्यास में प्रगतिशीलता:

'पीली आंधी' उपन्यास की लेखिका स्वयं इसमें पात्र है और वह प्रगतिशील स्त्री के रूप में दिखती है। विपरीत परिस्थितियों के बाबजूद प्रभा खेतान मारवाड़ी परम्पराओं को तोड़ते हुए शादी नहीं करती तथा खुद के पैरों

पर खड़ी होकर सफल व्यवसायी बनती है और विदेशों में चमड़े से बने बैग का निर्यात करती है-''यहाँ तक कि श्वार्ज के स्टैण्ड पर झूलते हुए मेरी अपनी फैक्ट्री के बैग भी विदेशियों से ही बात करते हैं। मेरे अपने बैग, एक इस खयाल के साथ पूरा कलकत्ता अपनी घुएं, गन्दगी, पसीने की गन्ध सब कुछ एक मेरी आँखों में झांकने लगा है। पर यै बैग यहाँ इतने क्यों चमकने लगते हैं। [४]

'पीली आंधी' उपन्यास में प्रगतिशील स्त्री का सशक्त रूप सोमा में दिखाई देता है। वह परम्परा को तोड़ती है तथा ताई के सामने अपने विचारों को खुले तौर पर रखती है और पति को छोड़कर दूसरे व्यक्ति ने साथ बिना शादी के जीवन यापन करती है। शादी के बाद अपनी ससुराल में पहुँच कर पहले ही दिन विद्रोह करने की सोचती है-''उसने मन ही मन निश्चय किया-नहीं, विद्रोह करना होगा। पहले दिन से, आज से, अभी से, इसी क्षण से। बुढ़िया जो बोलेगी, उसका उल्टा करूँगी। देखूँ, वह मेरा क्या बिगाड़ लेती है?'' इसके बाद सोम का बार-बार विरोध दिखाई देता है-''निमली बाई! मैं और गाली? आप झूठ बोल रही हैं? आप एक दम झूठी हैं।..... आप झूठ बोलेंगी तो क्यों नहीं विरोध करूँगी?.....नहीं ताई जी! मैं एकतरफा इल्जाम नहीं बर्दाश्त कर सकती।...मैं नहीं माफी मांगूंगी.....हां! मैं क्यों जाऊँ उनके पास? जब मेरी गलती नहीं है।" सोमा को देखने जब ताई जी आने वाली थी, तब उससे सर पर पल्ला लेने के लिए कहा जाता है उस पर सोमा का कहना-''आंटी मैं तो बाद में भी नहीं ढ़कने वाली । सोमा सुजीत से भी स्पष्ट रूप से कहती है कि-''हाँ सुजीत, रूँगटा हाउस का महत्व बहुत बड़ा है।..... मैं यहाँ कुछ भी नहीं। सुजीत मैं मरना नहीं चाहती। जीना चाहती हूँ। जीना.....तुम को डर लगता है सुजीत? तुमको मुझसे डर लगता है ?'' शादी के कई वर्ष बाद भी जब सोमा के कोई बच्चा नहीं हुआ तो सोमा का सोचना-''लेकिन यथार्थ इतिहास में आराम से जुगाली कर सकता है? मगर मेरा यौवन? मेरे सपने? मैं भविष्य देखना चाहती हूँ। लेकिन कौन-सा भविष्य? आखिर एक गृहस्थिन का भविष्य क्या हो सकता है? पति का सुख, संतान की प्राप्ति लेकिन शादी के इतने साल हो गये और अभी तक सोमा की गोद नहीं भरी थी।' सोमा को जब अपने जेठ मोहन के अफेयर के बारे में पता चलता है तब वह सोचती है कि बड़ी भाभी यानि मोहन की पत्नी कुछ क्यों नहीं कहती-"लेकिन बड़ी भाभीजी क्यों नहीं अपने लिए अपने अधिकार के लिए कुछ कहती है?" राजू की पत्नी लता पूरी तरह तो नहीं परन्तु उसमें प्रगतिशीलता के कुछ गुण अवश्य है। जब शादी के गहनों के बारे में बात होती है, तब सभी के सामने खुलेआम कहती है- 'हाँ तो फेरे में आप लोगों ने जो गहना डाला था, वह मेरा स्त्री धन हुआ न।.....तब आप लोग फेरे में क्यों डालते हैं? क्या समाज को दिखाने?' ताई जी (पदमावती देवी) में रूढ़-परम्परावादी स्त्री होने के साथ समय के हिसाब से परिवर्तन दिखाई दिया है। गाँव की अनपढ़ गँवार औरत बच्चों को तथा अपनी चाची सास को नये-नये तरीके से सेवा करने लगी-''कब बच्चों को बड़ी माँ दूध में बादाम-पिश्ता और मलाई देने लगी, किसी को समझ में नहीं आया। कब वह राधा बाई के सर बादाम रोगन का तेल लगाने लगी, खुद राधा बाई को ही पता नहीं चला।'' इस प्रकार इस उपन्यास मे रूढ़-परम्परावादी एवं प्रगतिशील स्त्री का सामंजस्य रूप देखते ही बनता है।

'अग्निसंभवा ' उपन्यास में प्रगतिशीलता:

'अग्निसंभवा ' उपन्यास में नायिका आईवी प्रगतिशील स्त्री है। वह परंपरा को तोड़कर घर से भाग जाती है तथा अपने पैरों पर खड़ी होती है। टैक्सी ड्रायवर का काम करती है, इसके बाद मि. डिक्रे की कम्पनी में शिव की सेकेट्री का काम करती है और बाद में ब्रांच मैनेजर बन जाती है-''टैक्सी चलाते हुए इतने दिनों में तुम पाँच सात सौ डॉलर नहीं बचा पायीं?'' प्रभा खेतान को एक दिन आईवी का फोन आया और उसने प्रभा से कहा-''मैं अब

अपनी बॉस खुद ही हूँ। मुझे कल मिस्टर डिक्रे का फैक्स मिला कि पहली जनवरी से स्टैंडबाई कंपनी की ब्रांच मैनेजर आइवी युंग नियुक्त की जाती है।'' [५]

'अपने अपने चेहरे' उपन्यास में प्रगतिशीलता:

'अपने-अपने चेहरे' उपन्यास में रमाबाई तथा रीतू प्रगतिशील स्त्री पात्र हैं। जहाँ रमा द्वारा शादीशुदा पुरुष से प्यार किया जाता है और वह उस प्यार के सहारे अपना जीवन स्वावलम्बी रूप से जीती है, वह खुद कमाती है तथा समाज का सामना करती है वह चोरी छिपे कुछ करना नहीं चाहती-''अब मैं भी क्या करूँ? कितनी बार तो कह दिया चलो, कहीं मंदिर में शादी कर आएँ, पर नहीं ? रमा सब कुछ ऐलान करके खुलेआम करना चाहती है और इधर सेठानी तलाक तो देंगी नहीं।....रमा कमा सकती है अपने पैरों पर खड़ी है।... आखिर रमा समझदार है, स्वतंत्र विचारों की है। यानी कि स्वावलंबी है। वह किसी पर बोझ नहीं।" रीतू की बात करें तो जब उसका पति कुणाल दूसरी औरत लेकर घर आता है तो वह उसे स्वीकार नहीं करती है अपितु विरोध करते हुए घर छोड़कर मायके आ जाती है और मायके आकर भी वह खुद अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है-''लेकिन रीतू कहती है कि क्या गारंटी है कि दूसरा पुरुष भी मुझे धोखा नहीं देगा? उसके साथ एडजस्टमेंट की समस्या नहीं खड़ी होगी?...यहाँ अकेले रहूँगी और कहीं स्कूल में नौकरी कर लूँगी। मुझे पता है पापा घर की इज्जत की बात उठाएँगे। लेकिन सबकी इज्जत का ठेका मैंने अकेले तो ले नहीं रखा है।,[६]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास-साहित्य में जो स्त्री पात्र हैं वे अपनी प्रगतिशीलता के कारण आधुनिक युग की विभिन्न समस्याओं का हमारे सामने उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार लेखिका द्वारा इन स्त्री पात्रों के माध्यम से हमारे सामने स्वावलंबी स्त्री का खाका तो खींचा ही है इसके साथ-साथ प्रगतिशीलता पर भी मुहर लगाई है।

निष्कर्षत: प्रभाजी का व्यक्तित्व एवं कृतीत्व में अनेक प्रसंग यथार्थता के साथ प्रस्तुस्त हुये है.प्रभाजी का व्यक्तित्व विद्रोही ,निडर,साहस पूर्ण राहा है.प्रभाजी का अध्ययन गहन गंभीर विषयो से अधिक रहाहै.उनका समग्र साहित्य पाठको को झाकाझोरणे वाला है,पाठक चिंतन कर सजग और गम्भिर्तापुर्वक सोचने लागता है.काव्य से शुरू कर उपन्यासो तक आगे बढती राही,सफलता कदम चुम रही नजर अती है.उन्होने अपने उपन्यासो 'आओ पेपे घर चले,अग्निसंभवा ,छिन्नमस्ता ,पिली आंधी ,अपने अपने चेहरे ,आदि उपन्यासो के माध्यमसे यथार्थ समाज में कई प्रश्न और आधुनिक नारी ने खोजे नये रस्ते हमारे सम्मुख उभरते है .

संक्षेप में प्रभाजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्वयही झलकाता है कि,वे अहुमुखी प्रतिभा के धनी है,उनका सृजन अपने आपमे उच्च कोटी का है ,यही साबित होता है.और यही सच्ची दास्ता कही जायेगी .

संदर्भ सूची

१] हिंदी साहित्य कोश –ज्ञानमंडल लिमिटेड ,वाराणसी

२] आओ पेपे घर चले-प्रभा खेतान

३] छिन्नमस्ता –प्रभा खेतान

४] पिली आंधी –प्रभा खेतान

५] अग्निसमभवा –प्रभा खेतान

६] अपने अपने चेहरे –प्रभा खेतान

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

भारतीय संविधान एवं महिलाएं

डॉ.संजयकुमार हानुमंत जाधव
लोकप्रशासन विभाग,
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई

प्रस्तावना:-

आधुनिक सूचना, संप्रेषण तंत्रज्ञान के युग में महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है... आज महिलाएं किसी भी मामले में पुरुषों से कम नहीं है, हर क्षेत्र में वे बराबर की ही हिस्सेदार बन रही है... "महिलाओं की उच्चशिक्षा, प्रौद्योगिकी और तकनीकी प्रशिक्षण के प्रभाव, महिला आंदोलनों और पश्चिमी प्रभाव से पनपती संस्कृति के कारण महिला की स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता को लेकर क्रांतिकारी स्थिति है... वैश्वीकरण के इस युग में महिला की अदम्य शक्ति, बुद्धिमत्ता, कार्यक्षमता तथा सामर्थ्य ने उसके अस्तित्व को न सिर्फ स्थापित किया, बल्कि महिला ने अपने औचित्य को सिद्ध करने के लिए किसी भी चुनौती का सामना करने के लिए अपने आप को तैयार कर लिया है... 21वीं सदी में समूचे विश्व में महिलाएं आर्थिक रूप से स्वावलंबी व सशक्त बनी है"...[१] लेकिन समाज में ऐसे कई अवरोध है जो महिलाओं के उन्नति के मार्ग में रोड़ा बने हुए हैं... जिसमें महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कई ज्यादा समस्याओं का सामना करना पड़ता है... घरेलू हिंसा, शोषण, अत्याचार उत्पीड़न, लिंग भेद आदि परेशानियों से महिलाओं को गुजरना पड़ता है... आज के युग में दुर्भाग्य से महिलाओं पर अत्याचार व उत्पीड़न का ग्राफ भी तेजी से बढ़ रहा है... भारतीय नारी को अत्याचार व उत्पीड़न के दलदल से बाहर निकाल कर उन्हें पुरुषों के समान जिंदगी जीने का हक देने के लिए एंव उनकी स्थिति को सुधारने हेतु संविधान में अधिकार दिए हैं... "लॉसकी के शब्दों में कहा जा सकता है कि, एक राज्य अपने नागरिकों को जिस प्रकार के अधिकार प्रदान करता है, उन्हीं के आधार पर राज्य को अच्छा या बुरा कहा जा सकता है..."[2] अधिकारों के बिना मानव जीवन के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती. इसी कारण वर्तमान में विश्व के सभी देशों के समान आपने देश ने भी मानव जीवन के उत्थान के लिए विस्तृत अधिकार प्रदान किए हैं...

संविधान द्वारा महिलाओं को प्राप्त अधिकार:-

भारतीय संविधान में पुरुषों के समान ही महिलाओं को अधिकार मिले हैं.महिलाएं सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान ही संधि की हकदार है... भारतीय संविधान महिलाओं के लिए तीन तरीकों से लाभ पहुंचाने की विशिष्ट मंशा रखता है... १) संविधान महिलाओं और पुरुषों में लैंगिक भेदभाव मिटाने की मंशा रखता है... २) महिलाओं को प्रताड़ित किया गया है तथा हीन समझा गया है... इस अन्याय को समाप्त करने के लिए संविधान सरकार को महिलाओं के हित में विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है... ३)सरकार सभी कमजोर वर्गों जिसमें महिला शामिल है, की स्थिति सुधारने के लिए विशेष विशेष प्रयत्न करेगी...[3]

भारतीय संविधान में पुरुषों के समान महिलाओं को बराबर अधिकार देने के लिए निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं... भारतीय संविधान के अध्याय 3 में अनुच्छेद 14 से 32 तक निम्नलिखित मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है...

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18 तक)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22 तक)
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से 24 तक)
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28 तक)
5. सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29 से 30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

संविधान में अनुच्छेद 14 से 18 तक प्रत्येक व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता, सामाजिक समानता, अवसर की सामानता, अस्पृश्यता का अन्त एवं उपाधियों के उन्मूलन की व्यवस्था की गई है... पुरुषों के समान महिलाओं को समानता का अधिकार मिला हुआ है... समानता के अधिकार से संबंधित उपर्युक्त अनुच्छेदों से स्पष्ट है कि संविधान के अंतर्गत देश में सामाजिक और राजनीतिक समानता को स्थापित करने का प्रभावशाली प्रयत्न किया गया है... समानता के अधिकार के अनुसार महिलाओं को पुरुषों के साथ ही सार्वजनिक नौकरियों में समान अधिकार एवं समान वेतन का मौलिक अधिकार मिला है... महिलाओं को असमानता के बंधनों से मुक्ति मिलकर उन्हें अपना विकास करने के लिए अनेक रास्ते खुल गए हैं...

भारतीय संविधान प्रत्येक व्यक्ति को अनुच्छेद 21 से 22 के अंतर्गत निम्नलिखित छः स्वतंत्रता प्रदान करता है... अ) वाक् ओर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ब) सभा करने की स्वतंत्रता क) संस्था एवं संघ बनाने की स्वतंत्रता ख) भ्रमण की स्वतंत्रता ग) आवास की स्वतंत्रता, एवं घ) पेशा, व्यापार तथा व्यवसाय की स्वतंत्रता, ईन स्वतंत्रता का अधिकार पुरुषों के समान महिलाओं को भी मिलता है... स्वतंत्रता का अधिकार जीवन के लिए परम आवश्यक है क्योंकि इस अधिकार के बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा समाज का विकास संभव नहीं है... संविधान के अनुच्छेद 21 से देश के व्यक्ति याने पुरुष एवं महिलाओं को प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण मिलता है... यह अधिकार सभी अधिकारों से श्रेष्ठ है... "अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा... [४] ईसी प्रकार स्त्री एवं पुरुषों दोनों को प्राण एवं दैहिक स्वाधीनता को संविधान द्वारा संरक्षण मिला हुआ है...

भारत में सदियों से दसता कि प्रथा प्रचलित है... ईस प्रथा के अंतर्गत दीन, दलित, श्रमिक एवं महिलाओं पर अत्याचार किए जाते रहे हैं... नागरिकों को इस प्रकार के शोषण से मुक्त करने के लिए संविधान में अनुच्छेद 23 और 24 के अंतर्गत शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान किए गए हैं... "अनुच्छेद 23 के अनुसार मानव का दूर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार के अन्य जबरदस्ती किए जाने वाले श्रम को निषिद्ध किया गया है... [५] अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु वाले किसी बालक को कारखानों, खानों अथवा अन्य किसी जोखिम भरे काम पर नियुक्त नहीं किया जा सकता... ईस, अधिकार से महिलाओं को खरीद- बिक्री, वेश्यावृत्ति के लिए जबरदस्ती करना, भीख मंगवाना आदि को दंडनीय माना गया है... इसी प्रकार शोषण के विरुद्ध अधिकार से सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना को संवैधानिक आधार मिलता है...

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार पुरुषों के समान ही महिलाओं को मिला है... अनुच्छेद 25 द्वारा सभी व्यक्तियों को अपनी इच्छा अनुसार धार्मिक आचरण और प्रचार की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है... अनुच्छेद 26 के अनुसार धार्मिक मामलों के प्रबंध की स्वतंत्रता धार्मिक संप्रदाय को मिली हुई है... अनुच्छेद 27 के द्वारा ऐसे समस्त आय को कर मुक्त कर दिया गया है... जिसे धार्मिक एवं परोपकारी कार्यों में खर्च करना निश्चित किया गया है... अनुच्छेद 28 में कहा गया है कि राजकीय निधि से

चलने वाले किसी भी शिक्षण संस्था में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा प्रदान नहीं की जाएगी... इसके साथ ही राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या आर्थिक सहायता प्राप्त शिक्षण संस्था में किसी व्यक्ति को किसी धर्म विशेष की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता...[६] इसी प्रकार महिला एवं पुरुषों को समान रूप से धार्मिक स्वतंत्रता की व्यवस्था की गई है...

भारत के सभी नागरिकों को संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 द्वारा सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधी अधिकार प्रदान किया गया है... अनुच्छेद 29 के द्वारा अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति सुरक्षित रखने का अधिकार मिला है... अनुच्छेद 30 के द्वारा अल्पसंख्यकों को अपनी शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार मिला है... इसी अधिकार से अल्पसंख्यक वर्ग के महिलाओं को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति का जतन एवं शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ है...

संविधान द्वारा नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकारों की रक्षा करने के लिए अनुच्छेद 32 द्वारा संवैधानिक उपचारों का अधिकार पुरुषों के समान महिलाओं को भी प्राप्त हुआ है... इस अधिकार का सहारा लेकर महिलाएं अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा करने के लिए उच्चतम न्यायालय एवं अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों का सहारा ले सकती है... उच्चतम न्यायालय को मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा तथा उत्प्रेषण लेख जारी करने का अधिकार है...

राज्य की नीति के निर्देशक तत्व में महिलाओं के विकास हेतु कई प्रावधान किए हुए हैं... संविधान के भाग चार में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य की नीति निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है... अनुच्छेद 39 के अनुसार समान रूप से नर और नारी सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो, पुरुषों और स्त्रियां दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन हो, श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों का स्वास्थ्य और और शक्ति, बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग ना हो, तथा आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों ऐसे रोजगार में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो और बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाए तथा शैशव और किशोर अवस्था का शोषण से नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण हो...[७] अनुच्छेद 39(क) में समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किया है... ईन प्रावधानों से महिलाओं को शोषण से मुक्ति, विकास के समान अवसर, समान न्याय की प्राप्ति और विधिक सहायता की प्राप्ति, समान काम के लिए समान वेतन प्राप्ति एवं जीविका को पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार मिला है... संविधान के अनुच्छेद में 42 के अंतर्गत काम कि यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करना और महिलाओं को प्रस्तुति सहायता प्राप्ति कि व्यवस्था सरकार करेगी यह प्रावधान किया गया है... अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य के दुर्बलतर वर्गों के विशेषतया अनुसूचित आदिम- जातियों के शिक्षा तथा अर्थ संबंधि हितों की विशेष सावधानी से उन्नति कर सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा... [८] ईस प्रावधान से दुर्बल वर्गों के महिलाओं को शिक्षा, आर्थिक विकास एवं सभी प्रकार के शोषण से मुक्ति मिलकर वह सशक्तिकरण की रहा पर चलती है...

भारतीय संविधान में 73 वाँ ओर 74 वाँ संविधान संशोधन 1992 द्वारा पंचायती राज संस्थाओं एवं नगर पालिकाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है... ईन संशोधनों द्वारा संविधान के अंर्तगत 243 क से 243यछ तक के उपबंध डाले गए हैं... 243घ एवं 243न अनुच्छेद के अंतर्गत पंचायतों और नगर पालिकाओं में महिलाओं को आरक्षण की व्यवस्था की गई है... अब महिलाएं राजनीतिक गतिविधियों में बढ़ चढ़कर भाग ले रही है...

महिलाएं राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में हिस्सा ले रही है... महिलाओं की राजनीतिक विकास को चालना इसी प्रावधान से मिली हुई है...

भारतीय संविधान में वर्णित अधिकारों के अतिरिक्त महिलाओं को कुर्तियां को प्रथम से मुक्त कराने हेतु सरकार के द्वारा विभिन्न कानूनी अधिनियम पारित किए गए हैं जिनमें प्रमुख निम्न कानून है न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948), हिंदू विवाह अधिनियम (1955), सुरक्षित गर्भपात का अधिकार, समान पारिश्रमिक अधिनियम(1976), वेश्यावृत्ति निवारण अधिनियम(1956), दहेज निषेध अधिनियम(1961), मातृत्व लाभ अधिनियम(1961) बाल विवाह अवरोध अधिनियम, सती रोकथाम अधिनियम(1987), राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम (1990), लिंग परीक्षण को रोकने हेतु पूर्व निधान तकनीक अधिनियम(1994), घरेलू हिंसा अधिनियम (2005), कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न रोकथाम निषेध और निवारण अधिनियम (2013) आदि. ईन कानून एवं अधिनियमों द्वारा भारतीय महिलाओं की स्थिति सुधारने का प्रयास किया गया है... सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी महिलाओं के विकास हेतु समय-समय पर किया गया है...

भारतीय संविधान में प्राप्त अधिकार एवं सरकार द्वारा पारित कानूनों के बाबजूद भी भारतीय महिलाओं की स्थिति, विकसित देशों कि तुलना में बहुत ही देयनीय है... इसके मुख्य कारण महिला अशिक्षा, आर्थिक परतंत्रता, महिला अधिकारों के बारे में जानकारी का अभाव है... [९] इसके अलावा घरेलू हिंसा, लड़कों के मुकाबले लड़कियों को घर में कम स्वतंत्रता, भारतीय धार्मिक परंपराओं का प्रभाव, लिंग - भेदभाव, महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध, महिलाओं को कम से कम सुविधाओं, अधिकारों और उन्नति के अवसरों में रखा जाता है, इसी कारण महिलाओं की स्थिति निचले स्तर पर है... महिलाएं निर्णय लेने की शक्ति, आंदोलन की स्वतंत्रता, शिक्षा तक पहुंच, रोजगार तक पहुंचे और मीडिया के संपर्क से वंचित है... महिलाओं की विकास की राह में यह कारक बाधा उत्पन्न करते हैं... महिलाएं संतति की परंपरा में मुख्य भूमिका निभाती है... महिलाएं जीवन का मुख्य आधार होती है... इसीलिए जब तक महिलाओं का विकास नहीं होता तब तक मानवीय जीवन का विकास नहीं हो सकता... महिलाओं के विकास के लिए उपर्युक्त वर्णित बादाओं को दूर करने के लिए संविधान में महिलाओं को अधिकार दिए हैं, और शासन द्वारा, अधिनियम , कानून और कार्यक्रम तैयार किए गए हैं... महिलाएं इन अधिकारों, कानूनों, अधिनियमों, एवं कार्यक्रमों का सहारा लेते हुए पुरुषों के समान हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है. महिलाओं की प्रगति में पहले से ज्यादा आज बढ़ोतरी हुई है... आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति सचेत है... किंतु आज भी उन्हें संरक्षण की जरूरत है...

संदर्भ सूची:-

1. प्रतियोगिता दर्पण, सितंबर 2021, प्रष्ठ 73.
2. शर्मा पूजा, महिलाएं एवं मानवाधिकार, सागर पब्लिशर्स, जयपुर, संस्करण 2012, पृष्ठ 1.
3. माहेश्वरी अविनाश, महिला अधिकार और कानून, प्रिज्म बुक्स, जयपुर, संस्करण 2011 पृष्ठ 65.
4. डॉ.आर .एन. त्रिवेदी एवं डॉ. एम.पी. राय, भारतीय संविधान, कॉलेज बुक डिपो, त्रिपोलिया, जयपुर, संस्करण 2011,पृष्ठ 65.
5. डॉ. आर . एन. त्रिवेदी, पूर्वोक्त पृष्ठ 67.
6. पुजा शर्मा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 76.
7. डॉ.आर एन. त्रिवेदी, पूर्वोक्त पृष्ठ 75.
8. डॉ.आर.एन. त्रिवेदी पूर्वोक्त पृष्ठ 76.
9. प्रतियोगिता दर्पण, सितंबर 2021, पृष्ठ 74.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

तीसरी ताली, किन्नर और समाज

प्रा. विट्ठल केशवराव टेकाले

सहायक प्राध्यापक,
कै. सौ. शेषाबाई सीताराम मुंढे महाविद्यालय
गंगाखेड, जि. परभणी.

संसार का प्रत्येक जीव महत्वपूर्ण है । वैश्वीकरण के इस युग में समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी पहचान बनाने के लिए बाध्य है, इसके लिए वह हर संभव प्रयास करता है । समता मूलक समाज की आधुनिक अवधारणा में यह निहित है कि और हार्दिक एक समुदाय के लोगों को समुचित प्रतिनिधित्व मिलना आवश्यक है । वैश्वीकरण के इस युग में इस स्वाभाविक-सी अवधारणा ने पहली बार इस स्थिति को पुष्ट करने का अवसर दिया है कि उसकी गरिमा के अनुरूप जीवन जीने का अधिकार प्राप्त हो ।

समाज का एक वर्ग ऐसा है जिसे समाज अपना नहीं मानता । थर्ड जेंडर जिन्हें हम अक्सर नजरअंदाज कर देते हैं । आवश्यकता है इनके साथ समानता का व्यवहार हो । हिजड़ा होना प्राकृतिक है । शरीर विज्ञान की दृष्टि से सूत्रों के संतुलन से आयी एक विशिष्टता मात्र है, परंतु सामाजिक दृष्टि से इस गुणसूत्र विशिष्टता को कभी भी सम्मान और समानता की दृष्टि से नहीं देखा जा रहा है । इसे हिन दृष्टि से देखे जाने के अनेक सामजिक, ऐतिहासिक उदाहरण देखने के लिए मिलते हैं ।

किन्नर का इतिहास-

सबसे पहले किन्नर का उल्लेख रामचरितमानस के अयोध्या काण्ड के अंतिम चरण में आता है । दूसरा उल्लेख महाभारत में अर्जुन के संदर्भ में आता है बृहन्नला के रूप में, इसी ग्रंथ में शिखंडी का भी उल्लेख हुआ है जो किन्नर है, इसी के साथ अर्जुन और उलूपी से उत्पन्न उनका एक पुत्र किन्नर था जिसका नाम अरावण है । उपरोक्त सभी का नाम उल्लेख देवी-देवताओं के साथ जोड़ा है, परंतु आधुनिक युग में किन्नर को उस दृष्टि से नहीं देखा जाता, उल्टे हिन दृष्टि से देख उनका बार-बार अपमान किया जाता आ रहा है ।

बिसवी शती के उत्तरार्ध में और इक्कीसवी सदी के आरंभ में हिंदी साहित्य जगत् में स्त्री विमर्श और दलित विमर्श जैसे महत्वपूर्ण विमर्श उभरकर आए हैं । थर्ड जेंडर विमर्श का भी उद्भव हो गया । 'ट्रांसजेंडर' वह इंसान है, जिनका लिंग जन्म के समय तय किए गए लिंग से मिल नहीं खाता । इनमें ट्रांसमेन, ट्रांसविमेन, इंटरसेक्स और किन्नर भी आते हैं । जेंडर एक सामाजिक अवधारणा है क्योंकि पुरुषों और महिलाओं के बीच सामाजिक रूप से निर्मित अंतर को संदर्भित करता है ।

मानव समुदाय का आरंभ जब से हुआ है, तब से किन्नर का अस्तित्व भी विद्यमान है । आदिकाल से लेकर वर्तमान युग तक इनके रहन-सहन, तौर-तरीके, व्यवहार में परिवर्तन जरूर देखा जाता है । वर्तमान युग में उनकी स्थिति अत्यंत सोचनीय है । वर्तमान युग में जिस प्रकार से समाज का विकास हुआ है उस प्रकार इस समुदाय का विकास नहीं हो पाया है । वर्तमान युग में सभ्य समाज या सफेदपोश (white collar) और किन्नर समुदाय के बीच एक बहुत बड़ी दीवार स्थापित हो गई है, जिसे अब तोड़ने की आवश्यकता है । किन्नरों की अपनी अलग ही दुनिया बन चुकी है । समाज से बहिष्कृत यह समुदाय दो वक्त की रोटी का मोहताज होने के साथ-साथ अकेलेपन एवं

अजनबीपन की पीड़ा झेलने के लिए मजबूर है । साथ ही साथ परिवार एवं समाज द्वारा निष्कासित और तिरस्कृत जीवन जीने के लिए मजबूर है । समाज इन्हें एक अलग नजरिए से देखता है । समाज में रहने के लिए इन्हें घर तक नहीं दिए जाते । वर्तमान युग में यह समुदाय समाज की मुख्य धारा से दूर दिखाई देता है, भीख मांगने के लिए मजबूर हो गया है । किन्नर भी समाज का एक अंग है जो दायनीय अवस्था में जीवन यापन कर रहा है, जो समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित नहीं है ।

शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी इस समुदाय के साथ ठीक ढंग का व्यवहार नहीं होता । शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का विकास होता है । शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य रोजगार प्राप्त कर सकता है, परंतु इस समुदाय को शिक्षा से दूर रखने का प्रयास होता है और उसे पर यह समुदाय भी शिक्षा से दूर भागता हुआ दिखाई दे रहा है । इसका कारण यह भी हो सकता है कि इनकी संख्या । अपना पेट भरने के लिए विवाह के अवसर, किसी घर में शिशु के जन्म होने पर उनके घर जाकर गाना, बजाना, नाचना और आशीर्वाद देकर कुछ रुपए, पैसे पाकर अपना जीवन यापन करते हैं । भिक्षा माँगना भी इनकी आजीविका का मुख्य आधार बना है ।

प्रदीप सौरभ का बहूचर्चित उपन्यास 'तीसरी ताली' किन्नर समुदाय के हर एक पहलू से रू-ब-रू कराता है तथा पाठक को झकझोर कर सोचने के लिए मजबूर कर देता है । इस उपन्यास में किन्नरों के रहस्यभरी दुनिया को नजदीकी से देख सकते हैं । किन्नरों के मन में आसमानता का दुःख , जीविकोपार्जन की समस्या, अकेलेपन की पीड़ा, परिवार से दूर रहने का दर्द आदि अनेक समस्याओं का चित्रण है - 'तीसरी ताली' । यदि मानवीय अधिकारों का मूल्यांकन किया जाए तो हर पल मौत का नाम है - किन्नर होना । समाज अनेक पीढ़ियों से चलती आ रही परंपराओं का पालन करता आ रहा है । किन्नरों के प्रति समाज का दृष्टिकोण परंपरागत ही रहा है । 'तीसरी ताली' किन्नरों के प्रति समाज की मानसिकता को व्यक्त करता है , जिन्हें हिन दृष्टि से देखा जाता है । यदि कोई किन्नर हमारे आस-पास दिखे तो हमारी यही मानसिकता होती है कि- ये लोग अभद्र होते हैं, अशिष्ट होते हैं, अश्लील होते हैं । इसलिए हम उनसे बात करने में भी अपना अपमान समझते हैं ।

समाज किसी की विवशता, मज़बूरी को बिना सोचे समझे अपनी टिप्पणी से सामनेवाले को लुहलुहान कर देता है । प्रदीप सौरभ ने 'तीसरी ताली' के माध्यम से किन्नरों के प्रति समाज के दृष्टिकोण को दिखाने का प्रयास किया है । सुनयना शेरपा से बहुत प्यार करती है । सुनयना किन्नर है, वह समझ चुकी है कि शेरपा किसी हिजड़ी से प्रेम करना नहीं चाहता, शेरपा केवल पैसों के लिए उसके साथ रहता है । पुरुष पैसे पाने के लिए भले ही किसी किन्नर के साथ रह ले, परन्तु वह उससे सहज़ प्यार नहीं कर सकता, शादी-विवाह की तो बात दूर है, क्योंकि इस प्रकार के व्यवहार को समाज में किसी प्रकार का स्थान नहीं है ।

इसमें किन्नरों के प्रति नकारात्मक सोच पाठकों के सामने आती है । उपन्यासकार किन्नरों के प्रति समाज में अच्छी सोच और व्यवहार की सलाह देता है- क्या किन्नर इंसान नहीं है?

समाज की मानसिकता और सोच किन्नरों के प्रति हमेशा नकारात्मक ही रही है । इनकी उपजीविका का साधन किसी के घर में मंगल / शुभ कार्य, नवजात शिशु का जन्म होने पर ये किन्नर उस घर के सामने जाकर ढोलक बजाकर गीत गाते हुए नृत्य करते हैं, तब इन्हें कुछ पैसे मिलते हैं यही आजीविका का साधन है । लेकिन समाज को उनका यह व्यवहार भी खलता है । समाज और परिवार विकलांग बच्चों का स्वीकार करता है । यहाँ तक की, घर में कुत्ते-बिल्ली पाली जाते हैं, उनसे प्यार भी किया जाता है, परन्तु तृतीय पंथी/ किन्नर यदि घर में

जन्म लेता है तो उसे घर से दूर किया जाता है । यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि उस नवजात शिशु का इसमें क्या दोष? समाज की इसी मानसिकता के कारण किन्नर समाज यातनाओं से भरा जीवन यापन करता आ रहा है ।

समाज किन्नरों के अस्तित्व को कोई कीमत ही नहीं देता । यदि कोई किन्नर जन्म लेता है तो समाज उनके साथ दोहरा व्यवहार करता है । इस कुंठित मानसिकता और समाज द्वारा स्थापित को व्यवस्था को दूर कर इस समुदाय को सबके साथ मिलकर आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करना चाहिए ।

तृतीय पंथी बच्चों को हिन दृष्टि से देखा जाता है, उसकी प्रताड़ना की जाती है । यदि कोई परिवार ऐसे बच्चों को अपने साथ रखना चाहेगा भी तो समाज उसे स्वीकृति नहीं देता, ऊपर से उस बच्चे तथा परिवार का अक्सर अपमान किया जाता है । ऐसे बच्चों का उनका अपना कोई दोष नहीं होता, फिर भी समाज और परिवार के कोप का भाजन बनना पडता है । यदि वह तृतीय पंथी जन्मा है तो उसमें उसका क्या दोष? परंतु वह अपने परिवार से यह पूछ भी नहीं सकता ।

समाज ने इस वर्ग को हाशिए पर रख दिया है और व्यंग्य की दृष्टि से देख उसे मजाक का विषय बनाया है । समाज को यह पता नहीं है कि उसके ऐसा करने से किन्नर के दिल और दिमाग में कितनी बड़ी ठेस पहुँचा रहा है ।

समाज ने किन्नर को उपेक्षित कर दिया है । सामजिक जीवन धारा से दूर रहकर जानवरों से भी बदत्तर जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया है । समाज ने इन्हें जीवन जीने के लिए गाना गाकर, नृत्य करने के लिए मजबूर किया है । आज समाज विज्ञान युग में जी रहा है, परंतु इस किन्नर समुदाय को अपने प्रगति पथ पर साथ लेकर नहीं चल रहा है । आवश्यकता है- इन्हें भी समाज के साथ लेकर चले तो वह भी बेहतर जिंदगी जी सकते हैं । आज भी समाज किन्नरों को अपनाने में हिचकिचाता है, चाहे समाज प्रगत हो, आधुनिक विचारोंवाला हो, चाहे कुछ और हो ।

सन्दर्भ सूची

०१) प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन २०११

०२) संपा.- डॉ. एम. फीरोज खान, थर्ड जेंडर अतीत और वर्तमान, विकास प्रकाशन, कानपुर,प्रकाशन सं. २०२१

०३) संपा. -डॉ. एम. फीरोज खान, थर्ड जेंडर और साहित्य, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रकाशन २०१८

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

'गुलाम मंडी' में चित्रित किन्नर संवेदना

डॉ. मिर्झा अनिसबेग रज्जाकबेग

सहयोगी प्राध्यापक एवं हिन्दी विभाग अध्यक्ष
ज.शि.प्र.मं. महिला कला महाविद्यालय, औरंगाबाद.

सार: भारतीय समाज में मुख्यतः दो लिंगों की ही बात की जाती है - स्त्रीलिंग और पुल्लिंग। तृतीय लिंग के विषय में कोई भी बात नहीं करना चाहता। यदि कोई इस विषय पर बात करता है तो उसे हिकारत भरी नजर से देखा जाता है। सभ्य समाज में इनके लिए किन्नर, हिजड़ा, छक्का, नपुंसक, आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। किन्नरों का इतिहास पुराना है। जब से सृष्टि बनी है, स्त्री और पुरुष के अलावा एक ऐसा प्राणी भी पैदा होता है जिसका न स्त्री जननांग होता है, न पुरुष अंग। ऐसे जन को किन्नर या हिजड़ा कहा जाता है। पुराणों में इनका जिक्र है। महाभारत में पांडवों के सहयोगी शिखंडी का जिक्र है। बृहन्नला की भी कहानी है, जिसमें अर्जुन को नपुंसक बना दिया जाता है। किन्नर पहले सेनाओं में भी होते थे। इतिहास में जिक्र है राजा लोग उन्हें अपने हरम मे भी कामकाज के लिए रखते थे। मुगल साम्राज्य में हरम में किन्नरों को रानियों का प्रहरी नियुक्त किया जाता था क्योंकि लैंगिक विकृति के कारण ये रानियों के साथ सहवास नहीं कर सकते थे। लेकिन वर्तमान समय में इनकी दशा शोचनीय है। पेट की भूख मिटाने के लिए कहीं इन्हें भीख मांगनी पड़ती है तो कहीं देह व्यापार भी करना पड़ता है।

किन्नर स्त्री भी होती है और पुरुष भी। दोनों लिंगों में जन्में इन किन्नरों को अपने परिवार, माता-पिता से तिरस्कृत-बहिस्कृत होना पड़ता है। अपने परिवार से दूर विस्थापित हो इन्हें अपने समुदाय में ही रहना पड़ता है क्योंकि सभ्य समाज इन्हें हेय की दृष्टि से देखता है। किन्नरों को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। बुचरा हिजड़े जन्मजात हिजड़े होते हैं। नीलिमा किसी कारणवश स्वयं को इस समुदाय के लिए समर्पित कर देते हैं। मनसा कोटि के हिजड़े तन के स्थान पर मानसिक रूप से स्वयं को स्त्रीलिंग के अधिक निकट अनुभव करते हैं और हंसा कोटि के हिजड़े नपुंसकता के कारण हिजड़े होते हैं। किन्नरों की उपस्थिति भारतीय समाज व संस्कृति में प्राचीन समय से विद्यमान है। इसके संबंध में डा. विजेंद्र प्रताप सिंह कहते हैं कि "भारतीय संस्कृति की प्रमुख तीनों धार्मिक परंपराओं में हिजड़ों का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। वैदिक संस्कृति के अनुसार किसी मनुष्य को पुरुष स्त्री या नपुंसक तीन प्रकृति में से एक में देखा जाता रहा। उस काल में ग्रन्थों में जेंडर को 'प्रकृति' के रूप में उल्लेखित किया गया है। कामसूत्र में भी इसक व्याख्या करते हुए कामसूत्रकार वात्सायायन ने पुरुष प्रकृति, स्त्री प्रकृति और तृतीय प्रकृति का उल्लेख किया है।[१]

परिचय: आज का समय विमर्शों का समय है। साहित्य में आज अनेक विमर्शों की चर्चा की जा रही है। समाज के उपेक्षित, वंचित, शोषित, तिरस्कृत वर्गों पर साहित्य में विचार-विमर्श हो रहा है। वर्तमान समय में विश्व पटल पर मानव अधिकार की चर्चा ने आंदोलन का वेश धारण कर लिया है। हाशिए के समाज या मुख्यधारा से बहिष्कृत किये गए समुदाय को मुख्य-धारा से जोड़ने के प्रयास हो रहे हैं। स्त्री, आदिवासी, दलित, वृद्ध, दिव्यांग आदि विषयों पर विमर्श चल रहे हैं। इन विषयों के अतिरिक्त ऐसे विषय भी हैं जिस पर लम्बे अन्तराल तक साहित्यकारों ने चुप्पी धारण की हुई थी। नब्बे के दशक तक जिनका कहीं किसी बुद्धिजीवी ने स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। वे विषय हैं किन्नर जीवन का यथार्थ और मानव तस्करी। सभ्य समाज में नाम लेने पर भी लज्जा अनुभव करने वाले समुदाय किन्नर/थर्ड जेंडर/तृतीय योनि पर आज हर स्तर पर चर्चाएं हो रही हैं। इस कड़ी में

नीरजा माधव का 'यमदीप', महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा', प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली' चित्रा मुद्गल का ' नाला सोपारा पोस्ट बाक्स न.२०३' तथा निर्मला भूराड़िया का 'गुलाम मंडी' आदि प्रमुख उपन्यास है।

'गुलाम मंडी' मानव तस्करी और देह व्यापार और किन्नर विमर्श पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास का कथानक मजबूर स्त्रियों की जिस्म-फरोशी और महत्वकांक्षा तथा किन्नरों के जीवन का ताना-बाना बुनता है। लेखिका निर्मला भुराड़िया ने उपन्यास के आरम्भ में ही किन्नर समुदाय के प्रति संवेदना प्रकट करती हुई कहती हैं – "बचपन से ही देखती आई हूं इन लोगो के प्रति समाज के तिरस्कार को, जिन्हें प्रकृति ने तयशुदा जेंडर नहीं दिया। इसमें इनका क्या दोष? ये क्यों हमेशा त्यागे गये, दुरदुराए गये, सताए गये और अपमान के भागी बने, इन्हें हिजड़ा, किन्नर, बृहन्नला, कई नामों से पुकारा जाता है मगर हमेशा तिरस्कार के साथ ही क्यों? आखिर ये बाकी इन्सानों की तरह मानवीय गरिमा के हकदार क्यों नहीं?[२] "

उपन्यास की नायिकाएं कल्याणी और जानकी हैं। जिनके माध्यम से चमकीली दुनिया के पीछे सांस लेती उस कठोर और दिल को हिलाकर रख देने वाली दुनिया का रेशा-रेशा चरित्र उधेड़ा गया है जो आज भी हमारे लिए रहस्यमयी अपराध की दुनिया है। साथ में अंगूरी और रानी जैसे किन्नर पात्र भी उपन्यास को सबलता प्रदान करते है। उपन्यास में समाज का हर रंग है, हर तरह का रस है, लेकिन फिर इसी के साथ जोर से पड़ने वाला वह करारा तमाचा भी है जो पाठक को झनझना कर रख दे। कहीं-कहीं पर भाषा के लिहाज से खुली अभिव्यक्ति देखने को मिलती है जो किसी पाठक को नागवार गुजर सकती है लेकिन कड़वे और नग्न सच की तुलना में विषय की गंभीरता को इसी तीखे अंदाज में रखना जरूरी भी है। उपन्यास में एक से अधिक कहानियां गुंथी गई है हर कहानी का अपना स्वतंत्र वजूद भी है और वे परस्पर सरोकार भी रखती हैं। पढ़ते-पढ़ते कहीं-कहीं स्तब्ध होकर बस दो बूंद भर आंख से निकल पाती है तो कहीं व्यग्रता की उबकाई आते-आते रूक जाती है। लेखिका ने केवल दो अध्यायों के साथ हिजड़ों की समस्याओं, संघर्षो तथा उनके जीवन के कारुणिक दृश्य का मार्मिक चित्रण किया है। इन दोनों अध्यायों में हिजड़ा समाज में घटित एक-एक घटना अपने आप में किन्नरों के रहस्यों का पर्दा उठाता है। उपन्यास का पहला और आठवाँ अध्याय किन्नरों की समस्या तथा उनपर विचार करने के लिए पाठकों को विवश करता हैं।

कल्याणी एक किन्नर रानी को लल्लन गुरु की चंगुल से निकालकर जिस्म फ़रोशी से निजात दिलाती है। स्त्री जननाँग में परिवर्तित करने के लिए उसका ऑपरेशन भी कराती है। रानी को अपने पास रखती है। एक किन्नर को अपने घर में जगह देकर अपने समाज के लिए एक मिसाल क़ायम करती है। अपने घर में एक पारिवारिक सदस्य के रूप में रखती है, एक भारतीय परिवार का सारा लार-प्यार देती हैं, वहीं दूसरी तरफ़ रानी ही कल्याणी की इकलौती दत्तक पुत्री जानकी को अमेरिका जाकर मानव तस्कर की चंगुल से छुड़ाकर मुँबई वापस लाती है। इससे यह साबित हो जाता है कि एक किन्नर की मदद करने पर, उसे गले से लगाने पर आपको मीठा फल भी मिल सकता है और आप समाज में एक मिसाल क़ायम कर सकते हैं। हमारा समाज इन्हें हिकारत और घृणा से देखता है, जो जबरन पैसे ऐंठना कपड़े उठा नंगे होने की धमकी देना जैसी अश्लील हरकते करते है। इस उपन्यास के आरंभ में लेखिका ने किन्नर अंगुरी को ऐसी ही हरकत कपड़े उठा देने की बात करते हुए दिखलाया है। इसका बीच-बचाव करती हुई उपन्यास की नायिका कल्याणी इन किन्नरों को ऐसा करने से रोकती व समझाती है और तभी से ही अंगुरी और कल्याणी में मित्रता हो जाती है।

कल्याणी जब अंगुरी किन्नर के घर जाती है तो वहा कव्वे को देखकर हैरान रह जाती है। इस संदर्भ में अंगुरी के एक साथी कहती है ''कव्वे नही तो क्या, तोता-मैना पालेंगी हम ? हमारी जात के तो ये ही हैं। हमारे सगे वाले। तुम लोग उनको दुरदुराते हो, हम मोहब्बत से पालते हैं।"[३] यहाँ लेखिका तोता-मैना के माध्यम से इन

किन्नरों की मानसिकता को व्यक्त करवाती है। तोता-मैना अर्थात स्त्री-पुरुष जो सभ्य समाज का हिस्सा है, परंतु ये कव्वे अर्थात किन्नर हमारे सभ्य समाज का अंग होते हुए भी समाज से बहिष्कृत है। यहाँ लेखिका ने कव्वें और किन्नरों को एक-दूसरे का पूरक और समाज से बहिस्कृत दिखलाया है। किन्नर कव्वे को भी अपने जैसा उपेक्षित, बहिष्कृत मानते है, जिस तरह सभ्य समाज इन किन्नरों को नहीं अपनाता उसी तरह इन कव्वों को भी। बड़े दुःख की बात है कि हमारा समाज व्यथित वर्ग किन्नर जो कि इंसान है, इन्हें नहीं अपनाता तो इन कव्वों की तो बात ही दूर हैं। लेखिका ने किन्नरों के भावनात्मक प्रेम का उल्लेख किया है। ये अपने जैसे तिरस्कृत प्राणी को भी अपने दिल और घर में जगह देते है।

उपन्यास में सामाजिक मानसिकता से परिचित किन्नर भी सभ्य समाज को घृणा और हिकारत से ही देखते हैं। इस वर्ग को समाज में मात्र खुशी के अवसर पर ही शुभ माना जाता है। जन्म, विवाह आदि मौकों पर लोग इन्हें सम्मान देते हैं, नेग देते हैं, झोली फैला कर दुआएं मांगते हैं, इनसे आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। आम जन की मान्यता है कि हिजड़ों का आशीर्वाद फल देता है, लेकिन बिना खुशी के मौके पर यदि ये आ जाएँ तो लोग अपने घर के दरवाजे तक बंद कर देते हैं। लेखिका ने हमीदा किन्नर के माध्यम से ये स्पष्ट किया है यह पंक्तियां इनकी आंतरिक वेदना को दर्शाती है – "श्राद्ध के दिनों में ही न। स्वारथ रहता है न तुम्हारा। आड़े दिनों में जो कहीं कव्वा आगर बैठ जाए न तुम पर तो नहाओगी- धोओगी, अपशगुन मनाओगी। जैसे हम ना तुम्हारे जो शादी-ब्याह हो तो नाचेंगी-गाएँगी, शगुन पाएंगी मगर यूं जो रास्ते में आ पड़ी ना हम, तो हिजड़ा कहकर धिक्कारोगी। [४]

किन्नर अपने दिल में दुःख और पीड़ा दबाए दुनिया को खुशियाँ बाँटते रहते है, परंतु कभी-कभी नशे की हालत में इनकी पीड़ा असहनीय हो जाती है। अब रमीला की बारी थी। वह बोली '' मेरी माँ तो मेरे को बहुत छुपा-छुपा के रखती थी, बचा-बचा के। कहीं टोली वाले न ले जाएँ उठा के। मैं घर मे हुई थी न। दाई ने नाल काटी बोलते। हस्पताल में हुई होती न, तो पहले दिन ही टोली को रिकार्ड मिल जाता था मगर घर में हुई न, तो मेरी माँ ने सबको बोला छोरा हुआ करके। किसी के सामने भी पोतड़ा नहीं खोला मेरा। भूल के बी न। करमजात दाई ने एक बार उगल दिया, जब तो मेरी स्कूल जाने की उमर हो गयी थी। मेरी माँ को मरे बारह दिन भी नहीं हुए कि वृंदा गुरु के चेले आ गये थे मेरे को लेने। "[५] लिंग स्पष्ट न होने के कारण शैक्षणिक संस्थानों में इन्हें प्रवेश नहीं मिलता। अशिक्षा के कारण ये बेरोज़गारी का शिकार होते हैं, इसलिए यह वर्ग ताली बजाकर नाच-गाकर अपना भरण-पोषण करते हैं। कहीं-कहीं तो इन्हें नेग भी नहीं मिलता मात्र अपमान, तिरस्कार और दुरदुराया जाता है। आन्तरिक वेदना से दुखी होकर कभी-कभी यह समुदाय अश्लीलता पर भी उतारू हो जाता है। इन्हें सामान्य मनुष्य की तरह हर सुविधा दी जाए तो ये पढ़-लिखकर आत्म-निर्भर बन सकते हैं। किन्नरो को स्कूल में दाखिला न मिलने का लेखिका ने भी वर्णन किया है। रानी किन्नर अपनी व्यथा कहते हुए बताती है कि मेरी स्कूल जाने की उम्र हो गई थी तब मुझे वृंदा गुरू के चेले किन्नर समुदाय में ले आए। इस पर हमीदा कहती है कि "तुझे तो इस बात पर खुश होना चाहिए कि तुझे वृंदा गुरू की शरण मिल गयी। बड़े मजे से कह रही है स्कूल जाने की उम्र हो गयी थी। कोई भरती करता क्या पाठशाला में?, पहले पूछते मेल कि फिमेल। अपनी वो शर्मिला है न, छोरा बन के भरती हुई थीं, तो बहनजी ने एक दिन चड्डी उतरवा ली थी उसकी और जूते मार के स्कूल से निकलवा दिया था उसको। [६]

समाज में किन्नर समुदाय की स्थिति अत्यन्त दयनीय है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि सरकार ने बरसों तक किन्नरों को नागरिक अधिकार से वंचित रखा व समाज द्वारा भी किन्नरों के साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है। आधुनिक समय में किन्नर समाज आर्थिक, सामाजिक स्थिति के कारण भीख मांगने व वेश्यावृत्ति

करने के लिए अभिशप्त है। किन्नरों को सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक,मानसिक भेद व शोषण के दौर में से गुज़रना पड़ता है। जिस्मफरोशी की दलदल में गिर जाने से एड्स पीड़ितों की संख्या बढ़ रही है। ""संसद में पेश हुए विधेयक के जरिये किन्नरों को भेदभाव से बचाने और उनके अधिकारों के सरंक्षण के लिए केन्द्रीय कैबिनेट ने 'ट्रांसजेंडर पर्सन' बिल-२०१६ को मंजूरी दी है। इस विधेयक के जरिये सरकार किन्नरों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक सशक्तीकरण के लिए तंत्र विकसित करेगी। सर्वोच्च न्यायालय का भी एक फैंसला आया कि किन्नरों को शिक्षा व रोजगार के अवसर मुहैया करवाये जाने चाहिए। लिंगानुगत समस्याओं का निराकरण करते हुए चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध की जानी चाहिए, इन्हें बच्चा गोद लेने का भी अधिकार होगा। सार्वजनिक स्थानों पर शौचालयों की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। जब तक समाज किन्नरों की स्थिति में सुधार नहीं लायेगा तब तक कोई भी कानून व सरकार किन्नरों को मुख्य धारा में लाने में असफल ही रहेगी।""[७]

निष्कर्ष: लेखिका निर्मला भुराड़िया ने 'गुलाम मंडी' लिखकर ना सिर्फ एक जटिल विषय को अपने लेखन का केंद्र बनाया है बल्कि गहनतम संवेदना के स्तर पर गुलामी के दंश को वे बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त भी कर सकी हैं। इस एक ज्वलंत विषय के बहाने उन्होंने कोशिश की है कि इसके आसपास और साथ-साथ की जो भी विकराल समस्याएं हैं उन्हें भी समेटा जाए। परिणामस्वरूप उनके सद्य:प्रकाशित उपन्यास 'गुलाम मंडी' में समाज के सर्वाधिक तिरस्कृत वर्ग किन्नर से लेकर जिस्म फरोशी और मानव तस्करी की निर्मोही और भयावह दुनिया को भी उकेरा गया है। उपन्यास में विषय की मांग के अनुसार उपन्यासकार ने हर उस सच को उघाड़कर रख दिया है जिसे हमारा दो चेहरे वाला तथाकथित सभ्य समाज अपनी मायावी दुनिया की सतह के नीचे ही रखना चाहता है।

संदर्भ:

१. विमर्श का तीसरा पक्ष: थर्ड जेंडर, पृ. ११३-११४, संपादक: विजेन्द्र प्रताप सिंह, रवि कुमार गौड़

२ 'गुलाम मंडी' भुराड़िया निर्मला, प्रकाशक: सामयिक प्रकाशन , दरियागंज, नई दिल्ली 110002

३ वही, पृ. ११

४ वही, पृ. १२

५ वही, पृ. ६९

६ वही, पृ. ७०

७ ई पत्रिका सरहद Volume II, ISSUE I (Oct-Dec 2016)

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी दलित साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ. महेंद्रकुमार रामचंद्र वाढे
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
हिंदी विभाग, एसएसव्हीपीएस
साहित्य एवं वाणिज्य महाविद्यालय, धुले. (महाराष्ट्र)

शोध सारांश –

मूलतः दलित साहित्य समाज सापेक्ष है । भारतीय साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य संवैधानिक मूल्य और बुध्द तत्वज्ञान के प्रभाव से मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व को सर्वोपरी मानता है । भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श स्व विस्तार के साथ स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्याक विमर्श और अन्य विमर्शों के आंदोलन में अगुवाई कर जोर पकड़ता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। आज भारतीय समाज की सर्वकंश उन्नति के साथ साहित्य की सभी विधाओं में समयानुसार विभिन्न विमर्शों का दौर चल पड़ा है। यह गती इतनी तेज है कि गाव से लेकर विश्व पटल पर सभा, सम्मेलन, संगोष्ठियों, चर्चासत्रों के साथ हि जन माध्यमों के द्वारा विमर्शों में अभिव्यक्त होने वाली मानवीय-अमानवीय परतों को सूक्ष्म अध्ययन की विषय वस्तु बनाकर मानवी विकास के सही-दिशा निर्देश हेतु लेखक और पाठक तक पहुँचाने का कार्य निरंतर किया जा रहा हैं।

इस दृष्टि से दलित रचनाकार अपनी सामाजिक प्रतिबध्दता के साथ मानविय सरोकारों, संवेदनाओं के साथ स्वतंत्रता, समता और बंधुता की भावनाओं को स्थापित करने के लिए कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा और अनन्य विधाओं के साथ कर्म रत है। । उसकी दृष्टि से भारतीय समाज के हर तबके का प्रत्येक व्यक्ति और उसकी पीड़ा, उसके सुख-दु.ख महत्वपूर्ण हैं । समाज की शोषक व्यवस्था द्वारा जो-जो शोषित, दलित हो या समाज का कोई भी पीडित स्त्री-पुरूष उन सबके प्रति रागात्मक संबंध स्थापित करना और उनकी पीड़ा को अभिव्यक्त करना दलित साहित्य का लक्ष्य है । भारतीय समाज व्यवस्था में दलित को लेकर एक निश्चित दृष्टिकोन बना है जो वर्णाधारित है। धर्म के आईने से गाव के बाहर रहने वाला व्यक्ति समुह ही नही बल्कि सामाजिक स्तर सभी स्थितियों में जो इस समुची व्यवस्था द्वारा शोषित है, अब वह भी दलित है। इय नयी सोच तहत साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं वर्गीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य की प्रासंगिकता को समझा गया है

संकेत शब्द – दलित, चेतना, शोषक-शोषित, वैचारिकता, संविधान, प्रासंगिकता, विभिन्न विधा, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, पीडा, संघर्ष, डॉ. आंबेडकर, मानवियता, आदि।

शोधालेख –

साहित्य कई पडावों, कालों और वादों से गुजरता हुआ निरंतरता से नवविचारों और नवप्रवाहों को अपने में समेटता जाता है । इसी प्रक्रिया में 1960 के दरम्यान मराठी में दलित साहित्य का नव प्रवाह प्रारंभ हुआ । देखते ही देखते देश की विभिन्न भाषाओं में दलित साहित्य ने अपनी विशेष पहचान बनाई है । हिन्दी में अस्सी के दशक में दलित साहित्य और दलित साहित्यकारों की एक लंबी और सशक्त पीढि सामने आयी । यही से भारतीय हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य का आगाज हुआ ।

हिंदी दलित साहित्य के वरिष्ठ लेखक मोहनदास नैमिशराय के अनुसार, शोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बंधुत्व तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।[1] दलित लेखन केवल लिखने के लिए नही लिखा जा रहा अपितु यह एक कार्यवाही है,और बुराई के खिलाफ मनुष्य के सतत संघर्ष में लेखन को सामाजिक परिवर्तन के लिए एक हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रहा है । वर्तमान समय में दलित साहित्य धीरे-धीरे मुखर रूप लेने लगा है। मराठी के साथ हिन्दी, पंजाबी, तमिल, गुजराती आदि कई भारतीय भाषाओं में भी दलित साहित्य लिखा जा रहा है और अपेक्षा से अधिक पढ़ा भी जा रहा है। इसमें आत्मकथा की विधा दलित साहित्य में एक क्रांति ही मानी जानी चाहिए। गरीबी अपने आप में एक समस्या है। गरीब होने के साथ-साथ व्यक्ति दलित समाज में पैदा हुआ हो, समाज कभी उसे आदम जात में गिनता ही नहीं है। जिंदगी 'एक तो करेला वह भी नीम चढ़ा' कहावत जैसी चरितार्थ हो जाती है। इसी की यथार्थ प्रतिक्रिया दलित साहित्य में प्रतिबिंबित हुई है । भारतीय संविधान में अनुच्छेद 17 के तहत 'अपृस्श्यता का अंत'[2] भले कर दिया गया हो, लेकिन आज भी देश और समाज में जातीय क्रूरता खत्म नहीं हुई है। हां, क्रूरता का तीखापन और कड़वापन थोड़ा कम जरूर हुआ है। संख्या बल के लोकतांत्रिक व्यवस्था में दलित समाज के उभरते नेता भी क्रूर जातीय व्यवस्था को समाप्त करने में सक्षम नहीं है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संवैधानिक अधिकारों के कारण दलित समाज गावों में सुस्थिती में दिखाई देता है। बावजूद आज भी जो असमानाता दिखाई देती है, उसका आकलन दलित लेखकों ने किया है। इस संदर्भ में कह सकते हैं कि, हिन्दी साहित्य में जो कि हिन्दू साहित्य ही है, हमें इसे लोकतंत्रात्मक और समानतामूलक समाज साहित्य बनाना होगा। दलित साहित्य इस दिशा में एक प्रस्थान है, जो कि मानवीय गरिमा और आपसी भाईचारा को बढ़ावा देता है, बढ़ावा ही नहीं देता अपितु इसे अपने-आचरण का हिस्सा मानता है। दलित साहित्य ऊँच-नीच की भावना को खत्म करने का एक हथियार है, पुराणों से निजात पाने का नुस्खा है, वेद और गीता के आतंक से मुक्ति का साधन है। पाखंड और प्रपंच से निजात दिलाने का तरीका है, भारत को भव्य और सभ्य बनाने का प्रयास है। दलित साहित्य की समृद्धि से देश की समृद्धि सम्भव है। [3] स्पष्ट है कि देश के विकास में समाज के सभी तबके के लोग अपनी भागीदारी निभाते रहे हैं, इनमें दलितों का श्रम के स्तर पर प्रत्यक्ष योगदान और अधिक है। आज गावों का विस्तार हो गया है बावजूद भी अधिकांशत: दलितों के परिवार गांवों के बाहर ही बसे हैं। गावों की जाति वर्ण आधारित इस व्यवस्था को रचनाकार आपने साहित्य से पुरजोर विरोध कर रहे है। महानगरों में सामाजिक स्तर पर दलितों की स्थिती बेहतर है किन्तु आर्थिक विकास के अभाव में अन्यों पर निर्भर है। आज का दलित रचनाकार गावों के साथ बढते नगरों महानगरों की दलितों की बेबसी, पीडी, वेदना को चित्रित कर रहा है। इसीलिए बच्चा लाल 'उन्मेश' की कविता – 'कौन जात हो भाई'[4] आज भी दलितों की संवेदना को इतनी सच्चाई से उकेरती है। इसी तरह जयप्रकाश लीलवान की कविता – 'धर्म और मेरे कैंप के लोग',[5] पराग पावन की कविता – 'विदेश जाते एक दोस्त से'[6] या फिर रजनी तिलक की कविता दलित स्त्री के नये स्वर को उकेर रही है। वे 'औरत औरत में अंतर है' – में लिखती है -

औरत औरत होने में
जुदा-जुदा फ़र्क़ नहीं क्या?
एक भंगी तो दूसरी बामणी
एक डोम तो दूसरी ठकुरानी
दोनों सुबह से शाम खटती हैं

बेशक, एक दिन भर खेत में
दूसरी घर की चहारदीवारी में
शाम को एक सोती है बिस्तर पे
तो दूसरी काँटों पर।[7]

इसके साथ ही दलित साहित्य नये समाज के निर्माण की सकारात्मक सोच को अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त हो रहा है। देश की आजादी को इतने वर्षो बाद भी भारतीय समाज में सामाजिक उत्थान की गती बहुत ही धीमी है। आज भी जातीवादी व्यवस्था निरंतरता देखने में मिलती है। इसी पर चोट करते हुएं कहते हैं - आज आज़ादी की आधी सदी के बाद भी / हम ग़ुलाम हैं— पैदायशी ग़ुलाम / जिनका धर्म चाकरी है।[8] नगरों और महानगरों में दलित व्यक्ति को किराये पर घर लेने की त्रासदी छुपी नही है। बडी कॉलनियों में हो या हाउसिंग सोसायटी में हो सवर्ण लोग दलितों को घर देने से कतराते हैं। इस तरह के आधुनिक जातीय घृणा को दलिता साहित्य में लिखा जा रहा है। जयप्रकाश कर्दम की कहानी हाउसिंग सोसायटी में दलितों के संघर्ष को रेखाकिंत करता है। उसके बावजूद भी दलित रचनाकार मानविय मूल्यों के प्रति आस्थावान है। इसी तरह दलित साहित्य की सभी विधाओं में सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों के बदलते रूप में होनी वाली आधुनिक छुआछुत को व्यक्त हो रही है।

आज दलित लेखन की प्रांसगिकता को लेकर परम्परावादियों द्वारा उठाये गये सवालों का जवाब देते हुए लेखक अजय नवारिया का कहना है कि,''दलित लेखिकाएं और लेखक प्रत्येक विधा में लिख रहे हैं, लिख सकते हैं। उन्हें अवसरों की अनुपलब्धता तथा मार्गदर्शन के अभाव ने मंद तो किया है, पर वे कुंद नहीं हुए हैं। गैर-दलित के हर नए और युवा रचनाकार को अपनी रचना संशोधन के लिए वरिष्ठ साहित्यकारों का सान्निध्य मिल जाता है। युवा दलित रचनाकारों को अपनी सामाजिक स्थिति और आर्थिक विवशताओं के कारण यह मौका वैसी सरलता से नहीं मिल पाता। इन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद दलित लेखक भटकने से बच रहा है। साथ ही उनकी इन रचनाओं को पढ़ते हुए हम भीतर तक जीवन के कड़वे और कठोर सच को महसूसते हैं। ये रचनाएं एक लेखक व्यक्ति की भी हैं और समाज की भी। इन रचनाओं में व्यक्ति के समाज होने की प्रक्रिया बहुत प्रखर (स्पष्ट) हैं। गैर-दलित लेखक-लेखिकाओं ने भी यात्रा संस्मरण और डायरी अंश लिखे हैं, परन्तु वे अधिकांश किसी एक 'व्यक्ति' के अनुभवों और उपलब्धियों के बखान में ही अधिक सीमित रहते हैं। अपवाद छोड़ दें तो हम पाते हैं कि समाजधर्मिता के नाम पर वहाँ एक गहरा शून्य उपस्थित है। जब सारा देश और सारा विश्व जल रहा हो, जब विश्व की एक-तिहाई इन्सानी जिन्दगियाँ भूख से मर रही हों, जब दुनिया के बालक और युवा चोरी, डकैती और हत्याओं जैसे जघन्य कर्मों में जाने को मजबूर हों, जब विश्व की आधी जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष वैश्यावृत्ति में सुलग रही हो। तब क्या हम वीरों की तरह सौन्दर्य और साहित्यशास्त्र के नियमों की बांसुरी बजाते रह सकते हैं? दलित साहित्य अन्तर्राष्ट्रीय चिंताओं और समाजशास्त्रीय पड़तालों (इंटरनेशनल कंसर्न और सोशियोलॉजिकल इन्वेस्टिगेशन) का साहित्य है।"[9] इस दृष्टि से भी दलित साहित्य प्रासंगिक है। इसके साथ ही राजनैतिक दृष्टि से भी दलित साहित्य प्रभावित रहा है। वैसे तो साहित्य और राजनीति का गहरा सम्बन्ध रहा है। सभी दौर का साहित्य राजनीति से अलग नहीं रहा है। इस विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकिजी का यह कथन प्रसांगिक लगता है कि, साहित्य और राजनीति का गहरा सम्बन्ध है। कोई भी साहित्यिक आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन की भूमिका बनता है। हिन्दी समीक्षक उस साहित्य में भी राजनीतिक प्रभाव ढूँढ लेते हैं, जो पूर्णरूपेण पलायनवादी और श्रृंगारिक रोमैंटिक होता है। [10]

वर्तमान समय के परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य की प्रांसगिकता इस दृष्टि से भी है कि आज दलित साहित्य को बहुत बड़ा बाजार उपलब्ध है, उसके प्रकाशक को, उसके साहित्य को, जो किसी और साहित्य को उपलब्ध नहीं है। दलित लेखकों को छापने के लिए बड़े-बड़े प्रकाशक बड़ी तत्परता से तैयार हो जाते हैं। और उनकी किताबें बाजार में खूब बिकती हैं, कई-कई संस्करण निकल जाते हैं। भारतीय साहित्य में दलित विमर्श की एक सफलता है। दूसरे प्रदेशों के दलित विमर्श की तुलना में हिंदी का दलित विमर्श साहित्य की अन्य विधाओं में अपना योगदान दे रहा है । आत्मकथा, कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक इन विधाओं के अलावा अन्य में अभी कई विधाओं में भरकस पहल की आवश्यकता की दृष्टि से भी दलित साहित्य प्रासंगिक है ।

दलित साहित्य की प्रासंगिकता इस दृष्टी से भी है कि आज दुनिया के कई विश्वविद्यालयों में दलित साहित्य पाठ्यक्रमों में पढाया जा रहा है। 'जून 2014 में ब्रिटेन की नॉटिंघम ट्रेंट यूनिवर्सिटी और फ्रांस की यूनिवर्सिटी पॉल-वैलेरी मोंटपेलियर ने मिलकर भारतीय दलित साहित्य को लेकर एक अभ्यासक्रम शुरू किया, जिसका उद्देश्य "दलित साहित्य को नए पाठकों तक पहुंचाना" है।'[11] इतिहासकारों के अनुसार, दलित आत्मकथाएँ न केवल समुदाय के इतिहास को पुनः प्राप्त करने में मदद करती हैं, बल्कि भारतीय इतिहास पर पुनर्विचार की आवश्यकता भी बताती हैं। इस विचार को और अधिक समझने के लिए 'वाशिंगटन विश्वविद्यालय, सिएटल सहित टेक्सास विश्वविद्यालय, ऑस्टिन और ओरेगन विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में दलित आत्मकथाएँ शामिल हैं। न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय (एनवाईयू) में 'सौंदर्यशास्त्र और राजनीति' नामक एक पाठ्यक्रम में हिंदी दलित लेखन पर एक इकाई भी शामिल की गई है। इसमें ओमप्रकाश वाल्मिकी की जूठन (2003) को पढाया जा रहा है।'[12]

निष्कर्ष –

इससे यह स्पष्ट है कि दलित साहित्य के कारण आज हिंदी में दलित लेखकों की मजबूत स्थिति बनी है । साथ ही दलित लेखकों के अपने साहित्यिक संगठन भी बने हैं, और किसी हद तक वे वंचित समाज की आवाज बने हैं, जिसको दुनियाभर में सुना जाता है। दलित विमर्श का भारतीय साहित्य में बहुत बड़ा योगदान है। दलित साहित्य दलितों के सामाजिक उत्थान को महत्वपूर्ण हथियार है । ज्ञान की महत्ता को डॉ.आंबेडकर ने जाना, इसीलिए उन्होंने दलितों को पढने के लिए प्रेरणा दी । परिणामतः पढा लिखा दलित समाज अपने न्याय अधिकारों के लिए साहित्य से अपनी सदियों की वेदना, पीडा और संघर्ष को अभिव्यक्त कर मानव समता की लडाई लड रहा है । साथ ही मानव मुक्ति की घोषणा करता हुआ दलित साहित्य समता, बंधुता, के साथ ही प्रज्ञा, शिल और करुणा से प्रेरित मानवियता को स्थापित करने के लिए साहित्य के माध्यम से निरंतर प्रयत्नरत है । वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक, शैक्षिक सभी स्तरों पर अपने पहचान बना चुका है। आज वैश्विक साहित्य में दलित साहित्य अपने आप में साहित्यिक और सामाजिक मानदंडों पर अपनी यथार्थवादी प्रासंगिकता को अधोरेखित करता है ।

संदर्भ –

1. मोहनदास नैमिशराय - साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल-– नया पथ - जुलाई-सितम्बर 1997 पृ.सं. - 104/105
2. सैमिस्टी लीगल फर्म – संविधान का अनुच्छेद 17 गुगल डॉट कॉम – दि. 3 मई 2018 पृ.सं. - 02
3. काली चरण स्नेही - जय भारत जय भीम, नवभारत प्रकाशन, 2011, पृ. सं.- 07
4. बच्चा लाल उन्मेश - कौन जात हो भाई - हिन्दवी- रेख्ता फाउंडेशन- 2022 पृ.सं. 01
5. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएँ – इतिहासबोध प्रकाशन 2006 – पृ.सं. - 88

6. पराग पावन – 'विदेश जाते एक दोस्त से'- कविता कोश – गुगल डॉट कॉम, 22 अगस्त 2021 पृ.सं. - 608
7. रजनी तिकल – कविता संकलन - पदचाप – निधी बुक्स नई दिल्ली, 2006 पृ.सं. - 37
8. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएँ, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006
9. पृ.सं. - 48
10. राजेंद्र यादव – हंस (पत्रिका) – सत्ता, विमर्श और दलिता- अगस्त-2004, पृ.सं. -15
11. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. सं. - 65
12. मार्तण्ड कौशिक- द टाईम्स ऑफ इंडिया - दलित साहित्य वैश्विक हो गया है – (Dalit literature goes global) - 5 अप्रैल 2015 पृ.सं. – 03
13. वहि

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा में स्त्री विमर्श

प्रो. डॉ. शिवाजी वैद्य
हिंदी विभागाध्यक्ष
बी. रघुनाथ महाविद्यालय, परभणी.

आत्मकथा यानी किसी व्यक्ति की स्वलिखित जीवनी है। व्यक्ति के अंदर छिपे अदृश्य संसार को पाठकों के समक्ष उद्घाटित करना होता है और इस कार्य को सम्पन्न करता है स्वयं व्यक्ति | अपने जीवन में घटित घटनाओं को ईमानदारी से पाठकों के सामने रखना आसान बात नहीं है उसमें भी परंपरा से घिरे भारत जैसे देश में जहाँ एक नारी के लिए कुछ नियम परंपराएँ है| आत्मकथा में अपने आपको खोलना तथा अपनी गलतियों को पाठकों के सामने रखना होता है, यह बडे साहस का काम है। इसी कारण लेखिकाओं की आत्मकथाएँ न के बराबर थी। इस संदर्भ में सुमन राजे अपनी पुस्तक "हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' में लिखती है, 'आत्मकथा और समीक्षा का क्षेत्र भी लगभग सुना ही पडा है। महिलाओं की आत्मकथाओं का हिंदी में अभाव अब एक मुद्दा बन गया है।"[1] सुमन राजे की यह शिकायत आज दूर हो गई है क्योंकि कई हिंदी लेखिकाओ की आत्मकथाएँ प्रकाशित हो चुकी है। आज नारी में नई दृष्टि आई है, वह आत्मनिर्भर बन रही है जिसका नतीजा है भय, लज्जा और लोकोपवाद से अप्रभावित रह इन लेखिकाओं ने अपने जीवन को पाठकों के सामने रखा है।

स्त्री विमर्श ने स्त्री को स्त्री के स्तर पर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, पारीवारिक और धार्मिक स्वाधीनता की मांग की है | आत्मकथाएँ जिसमें पुरूष सत्तात्मक समाज व्यवस्था द्वारा स्त्री पर ढाए जानेवाले अन्याय अत्याचार, विवाह संस्था की असंगतियाँ, पति की खलनायकी भूमिका, आर्थिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति हेतु प्रयास करती नारी आदि कुछ आयामों को अभिव्यक्त करती है जो सिधे स्त्री विमर्श का मूल है आज स्त्री विमर्श को बढावा देने में हिंदी महिला कथाकार एव आत्मकथाएँ अहम भूमिका निभा रही है वर्तमान समय मे लेखिकाओं ने आत्मकथा साहित्य विपूल मात्रा में लिखा है।

मैत्रयी पुष्पा, कुसुम असंल, कृष्णा अग्निहोत्री, कौसल्या बैसंत्री, पद्मा सचदेव, डॉ. प्रतिभा अग्रवाल, सुशीला टाकभौरे आदि आत्मकथाकारोंने औरत का नया बेबाक रूप प्रस्तुत किया जो सत्य कहने से नहीं डरती । खुद अपने जीवन को खुली किताब के समान जीती है।

मैत्रयी पुष्पा अपनी आत्मकथा 'कस्तुरी कुंडल बसे 'और 'गुडिया भीतर गुडिया' में यह बताना चाहती है कि उनकी लेखकीय सफलता उनके दृढ संकल्प एवं उर्जा शक्ति से सफल हो पायी है | माँ कस्तुरी और पति शर्मा उनके पथ में बाधाए उत्पन्न करते है। जिन्हें वे आत्मविश्वास एवं अपने बुद्धि कौशल से पार करती है | अपनी आत्मकथा में ग्रामीण विधवा की परंपरागत छवि का तिरस्कार, पुरूष सत्ताक व्यवस्था में परंपरागत पतिवृत्य व्यवस्था का उल्लंघन करने की बात करती है। उनकी नारीवादी सोच आत्मकथा में प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त हुई है। मैत्रेयी अपने जीवन को पुरी स्वतंत्रता से जीना चाहती है तो मां और पति दोनों बंधन लगाते रहते हे | ऐसे समय मैत्रेयी पारंपारिक पतिवृत्य नियमो का उल्लंघन करने की बात करती है- "यदि कोई पति पत्नी की कोमल भावनाओं को कुचलकर खत्म करता है तो पत्नीको पतिवृत्य नियम का उल्लंघन हर हालत में करना होगा ।"[2]

मैत्रेयी पुष्पा ने आत्मकथन लिखा 'कस्तुरी कुंडल बसै' मां के साथ जुडकर अपना और नारी जाति का लेखा जोखा | कस्तूरी मां और अकेली बेटी पुष्पा | साहित्यिक नाम धारण किया मैत्रेयी पुष्पा | आत्मकथा के प्रथम खंड में कस्तुरी तथा उसकी बेटी मैत्रेयी के बीच मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का वर्णन है | कस्तुरी अकाली वैधव्य भार से दबकर हार नहीं मानती | ग्रामीण परिवेश के विरोधी एवं नकारात्मक तत्वों से टकराते हुए और उपहास की चिंता न करते हुए शिक्षा की कठिन डगर पर चलते हुए आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करती है।

कस्तुरी ऐसे समाज में जन्मी थी जहाँ बेटी को अभिशाप माना जाता है | माँ का मानना है कि संसार में औरत के मुकाबले कोई सख्त जात नही | "बेटों को रोग – धोग व्यापे, इसे कभी छींक न आई | अरे.... गाय मरे अभागे की बेटी मेरे सुभागे की| मगर बेटी मरे तो सही"[3] कस्तुरी इस समाज की मान्यता को तोडना चाहती है । कलम खडिया तख्ति और पोथी की फिराक में वह दिनभर घुमा करती है जिसके कारण माँ और भाई के कोप का भाजन उसे बनना पडता है | इस तरह समाज में लडकियों का पढना लिखना मान्य नहीं | मैत्रेयी कहती है "पढाई के कलम खडिया जैसे साधन प्राप्त करना कस्तुरी जैसी लडकियों के भाग्य में है न बस में ।"[4] अतः हम कह सकते है कस्तुरी जिस ग्रामीण समाज में है वहाँ बिकनेवाली चीजों में गाय, बैल, भैस, अनाज और लडकियाँ है | लगान के रूपये जुटाने के लिए भाई बहन को बेचता है | रूग्न बेटे को ब्याहने के बदले में माँ अपनी बेटी को बूढे से ब्याहने का सौदा करती है | आठ सौ चांदी के सिक्कों में बिककर पति के घरवालों द्वारा खरीदी हुई घोडा का दर्जा दिए जाने के बाद स्वंय कस्तुरी को असमय वैधव्य की यातना से गुजरना पडता है | विवाह संस्था के इस त्रासदी को झेलती कस्तुरी परंपरागत छवि को तोडकर अपनी नई पहचान बनाने का निश्चय करती है। परदे को त्यागकर अपने ससुर को आश्वस्त करते हुए कहती है- "मेरा भरोसा करो दादाजी | में अपनी बेटी को पढ़ लिखकर बड़ा करूंगी कि मेरे तुम्हारे बाद वह अपने दुष्मनों का मुकाबला करे।"[5]

अतः गाव का विरोध सहकर वह मैत्रेयी को शिक्षा प्रदान कराने के लिए तत्पर रहती है और खुद भी अपने अस्तित्व की राह पर चल पडी उसे समाज के ताने सुनने पड़े "यह रांड क्या सांड हो गई । न छोरी पर ममता न बुढे ससुर पर रहम । पढाई – लिखाई का भजन करती हुई दोनों को रौंद रही है । अरे तू डॉव डॉव डोलेगी तो बच्चा की ऐसी ही गत बनेगी | बनी है महात्मा गांधी की चेली ।"[6] गाव की स्त्रिया जो अपने जीवन में कुछ कर नहीं पाई कस्तुरी पर व्यंग करती है । कस्तुरी नौकरी पेशा स्वावलंबी स्त्री के रूप में उपस्थित होती है | वह अपनी बेटी मैत्रेयी को भी इसी रूप में ढालना चाहती है | अपने अस्तित्व और अपने बच्ची के भविष्य के लिए वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ खडी है | तथा यह संकल्प लेती है "अब मेरी बेटी का मामला है, मेरी कोख से जन्म लेनेवाली मैत्रयी का | मैं उसको उस खड्डे में नही गिरने दूंगी, जिसमे गिरकर औरत जीवनभर निकलने को छटपटाती रहती है और एक दिन खत्म हो जाती है ।"[7] यह निर्णय कस्तुरी की गहरी सोच उसके साहस और अस्तित्व का ही सूचक है

समाज से प्राप्त कटु अनुभओं ने कस्तुरी को पुरूष वर्चस्व का कटटर विरोधी बना दिया और वैवाहिक बंधन को वह नारी के पैरों की बेडी मान बैठी | इसी कारण वह अपनी बेटी को भी वैवाहिक बंधन से मुक्त रखना चाहती है और उसे आत्मनिर्भर बनाना चाहती है | मगर उसकी बेटी मैत्रेयी वैवाहिक जीवन में प्रवेश करना चाहती है। उसे लगता है शादी ही उसकी मुक्ती का साधन है इसलिए वह मां से कहती है – "माँ तुम खफा क्यों होती हो ? मेरी स्वाभाविक इच्छा को कठोर उपवास में मत बदलो | मैं अपनी इंद्रियों को कसते कसते दूसरों की हवस की शिकार हुई जाती हूँ।"[8] मगर शादी के बाद आये अनुभवों से मैत्रेयी अपने में अपनी माँ को खोजती है ।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का दूसरा भाग गुडिया भीतर गुडिया | अगर बाजार की भाषा में कहें तो मैत्रेयी का एक और धमाका | आत्मकथाएँ प्रायः बेईमानी की अभ्यास पुस्तिकाएँ लगती है क्योंकि कभी सच कहने की हिम्मत नहीं होती कभी सच सुनने की | अक्सर लिहाज में कुछ बाते छोड दी जाती है तो कभी उन्हें बचा- बचाकर प्रस्तुत किया जाता है, | मैत्रेयी ने सच कहा है, अक्सर लक्ष्मण रेखाओं को लांघ जाने का खतरा भी उठाया है | इस आत्मकथा का रहस्य इस बात में है कि उपर से आम जिन्दगी जीनेवाली औरत में क्या बात थी जिसने उसे हिंदी जगत की सर्वपरि लेखिका सिद्ध कर दिया | मैत्रयी विवाह करना चाहती थी, आम औरत की तरह उसके मन ने भी चुडी, सिन्दुर, बिन्दी से सजे गृहणी के सपने देखे थे । पति को ही अपना सुहाग माननेवाली मैत्रेयी एक वक्त के बाद अपनी अस्मिता के लिए इतनी सजग हो जाती है कि पति से तलाक भी लेना चाहती है वह कहती है..... "मैं इस आदमी से अलग हो जाऊ....." विवाह का गठबंधन चाहत का गला घोट रहा है. छुडानेवाला कोई नहीं है.... मैं इस आदमी को छोड ही हूँ...। मेरे भीतर हुक उठी।"[9]

मैत्रेयी पहले तो माँ के सपने को रौंदती हुई वैवाहिक जीवन चुनकर खुद उनसे अलग हुई थी । आखिर ऐसी क्या बात हुई कि विवाह को ही अपनी मुक्ति माननेवाली मैत्रेयी इस संबंध से अलग होना चाहती है | वह उसका स्वाभिमान स्त्री का स्वाभिमान जो हर पल पुरूषसत्ता के अधिन समर्पित होने से इन्कार कर रहा था | पतिद्वारा मैत्रेयी पर थोपी गयी आधुनिकता के खिलाफ उसका स्त्री मन विद्रोह करता है। डॉ. सिद्धार्थ उन्हें दीक्षांत समारोह में नहीं ले जाते | घर पर आए यु.पी. एस के चेअरमन से पत्नी को अभिवादन करने का अवसर भी नहीं दिया गया | रसोई में सिकुडे रहने को कहा गया | हिंदी में एम.ए. कि उपाधि प्राप्त कर मैत्रेयी ने पी.एच.डी करने की सोची | इस चक्कर में उन्होने बहुत कुछ सहा | घर गृहस्थी के बंधे दायरे तोडकर अपनी रचनात्मकता को विकसित किया | मैत्रयीने साहसपूर्वक पुरूषों द्वारा निर्धारित नियमों का उल्लंघन किया तभी साहित्य जगत में अपनी पहचान दर्ज कर पायी | वे लिखती है "यदि मैंने अपने भीतर सुकुमारता को तोड न दिया होता तो सचमुख में आज मन मोहिनी गुडिया का अनुपम रूप होती लेकिन मैं सोचकर अश्वस्त होती हूँ कि गुडिया की छवि तोड डालने से ज्यादा मुझे कहीं मुक्ति नहीं ।"[10]

हमारे समाज में गृहस्थ धर्म को त्यागनेवाले पुरूष सांस्कृतिक विरासत के अनुरूप महापुरूष बन चुके है और बन रहे है । पर स्त्री घर, पति को त्याग देती है तो हमारे समाज की दृष्टी देखिए 'पति और बच्चो को छोड़कर भागनेवाली औरत परिवार और समाज की अपराधिनी, मर्यादा के नामपर बदनुमा धब्बा, घृणित और संगीन सजा की अधिकारिणी ऐसी बहिष्कृत जिसको केंद्रिय समाज पायदान के सिवा कुछ नहीं मानता' ऐसी घटना जब पुरूषों द्वारा होती है तो यही समाज क्या करता है देखिए – "राजा सिद्धोधन का बेटा सिद्धार्थ अपने बीवी बच्चे को छोड़कर भागा था । नल दमयंती को जंगल में सोती छोडकर भागा था | लोक कथाओं में गोपीचंद भागे थे इतिहास का राजा रत्नसेन नागमती को छोड़कर भागा था | गांधी कस्तुरबा को बेफिक्र छोडकर कहीं भी चले गये । इन्होंने गृहस्थी धर्म के साथ न्याय नहीं किया । पर ये सब महान हो गए, इनकी वीरगाथाएँ बनी इनके चलाए धर्म स्थापित हुए | आम आदमी भी घर से भागता है तो कहते है, साधु हो गया, लेकीन औरत वह घर छोडकर जाए तो बस एक ही बात..... रंडी वेश्या हो गई ।"[१२] मैत्रेयी पुष्पा ऐसी सामाजिक सांस्कृतिक मान्यताओं को तोडना चाहती है जो स्त्री को स्त्री के रूप में नहीं देख पाती | जिन तमाम धर्मो को भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण माना जाता है उन धमों ने स्त्री को धार्मिक तथा सांस्कृतिक विरासत में कोई स्थान नहीं दिया.... "आज तक किसी मंदिर की मुख्य पुजारिन, किसी धर्मपीठ की शंकराचार्य किसी धर्म की आदिगुरू स्त्री नहीं। भारतीय समाज में ही नहीं, सभ्य कहे जानेवाले पश्चिमी देशों के ईसाई धर्म में भी किसी औरत को पोप नहीं स्वीकार किया न मुस्लिमों के यहाँ काजी या मुल्ला के रूप में औरत दिखायी देती है।"[13]

इतना बडा सच स्त्री के सामने है, तो कैसे वह मौन रह सकती है। वह जान चुकी है कि यह सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था उसके अनुसार नहीं है। "इस व्यवस्था में स्त्री अपने अधिकार की बात कहें तो मर्यादा, कुलशीलता निभाना और शीलवती बहु होना आसान नहीं होता बेटा | खून के आँसू रूलाता रहा मुझे ।"[14] यह त्रासदी है स्त्री जीवन की।

पुरूषसत्ताक व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध का स्वर व्यक्त करती है मैत्रेयी | जिसने स्त्री को भोग की वस्तू के रूप में देखा है | स्त्री का बाह्य सौंदर्य ही महत्वपूर्ण माननेवाली व्यवस्था का लेखिका तीव्र विरोध करती है "जानती है कि सिंगार और सुविधा में जो सुख दिखता है, उसमें कितना हमारा है? बस इतना कि हम सजे मर्द रीझें | उसके आराम और मौज मस्ती की खातिर हमारा गुजारा चले ।"[15] यह कौनसी और कैसी सांस्कृतिक मान्यता है जहाँ पत्नि का रोल निभाते समय स्त्री को अपना सबकुछ स्वाहा करना पड़ता है "अपना नाम कोई नही भुलता, पर बेटा ! हमे गौर से देख हमारी जैसी औरतें भूल जाती है अपना नाम कुल, गोत्र और जाति | मैं मिसेज शर्मा के सिवा क्या हूँ बेटा ? तेरे पिता की पत्नी .....न औरत हूँ, न मनुष्य, केवल पत्नी हूँ | शांत सम्मानित जीवन भी खुद को भूल जाने के कारण मिला"[१६] मैत्रेयी स्वयं कबूल करती है कि स्वयं को जो सम्मान मिला वह स्त्रीत्व को अस्मिता की, अपने हक्क को, अपने अधिकारों को भूलने के कारण मिला |

हमारे समाज में उन स्त्रियों को विशेष महत्व दिया जाता है जो लड़के की मां है। लड़की की माँ होना उपहास है, यहाँ उल्लास नहीं अभिशाप है। समाज ने मैत्रेयी को सुनाया वह संदर्भ देखिए "कस्तुरी की लड़की ने लडकियों के सिवा क्या पैदा किया ? अनमोल दामाद का वंश नाश किया | अरे जब पैदा हुई थी उससे पहलेही भाई को रखा गई....."[१८] मैत्रेयी लोकगीतों या बरसो पहले की स्थियों की त्रासदी नहीं कहती बल्कि उसके अपने अनुभव है। जो आज के सभ्य कहे जाने वाले समाज ने दिये | सभ्य और आधुनिक समाज में भी फॅमिली प्लानिंग का रूप है – दो बेटे और एक बेटी. एक बेटा एक बेटी । दो बेटे हो तो फर्क नहीं पडता मगर जैसे ही लडकियों की संख्या दो हो जाती है, लडके की पुकार तेज होती जाती है न यकीन हो तो सिर्फ लडकियों के माता पिता है उनके लिए समाज का नजरिया देखलो, अपने विकास वैभव के बाद भी वे निस्संतान माता-पिता की तरह देखे जाते है।

स्त्री को हजारो सालों से महान बनाए रखनेवाली व्यवस्था आज भी स्त्री को रत्तीभर की आजादी देने को तयार नहीं है "उफ मेरी जिन्दगी रत्तीभर आजादी की हकदार नहीं, यहीं बातें मेरा कलेजा काटती रहती है"[१९]

समकालीन हिंदी साहित्य में अनेक स्त्री लेखिका आत्मकथाएँ लिख रही है और लिख चुकी है परंतु मैत्रेयी के आत्मकथा की विशेषता यह है कि जहाँ लगभग अन्य लेखिका अपने पति को तलाक देकर या मुक्ति पाकर आत्मकथाएँ लिख रही है वहाँ मैत्रयी अपने पति के साथ रहकर अपनी आत्मकथा दो खंडो में लिख चुकी है पति के साथ रहकर अपने विगत संघर्षशील जीवन, साहित्यिक शोषण तथा शारीरिक संबंधों को खुलकर कहने का साहस मैत्रेयी की लेखनी में है | आत्मकथा लिखने के बाद मैत्रेयी इस निष्कर्ष पर पहुंचती है आज कह सकती हूँ कि अच्छी रचना दुख, यातना और अपमान की चुनौतियों से जन्म लिया करती है | उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि गुडिया भीतर गुडिया एक संघर्षशील स्त्री की सच्ची दास्तान है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से स्त्री जीवन के वास्तविक सच, दुख-दर्द, उनकी पीडा, उनकी समस्या, चुभन, घुटन को जिस धरातलपर अभिव्यक्त किया है वह अभिव्यक्ति व्यक्तिगत न रहकर समस्त नारी समाज जीवन की अभिव्यक्ति बन गई है | मैत्रेयी अपने जीवन की यातना, संघर्ष को स्मृतियों को व्यक्त करते करते भारतीय पुरूषसत्ताक संस्कृती के परम्परावादों, दृष्टीकोन पर प्रहार कर संघर्षशील स्त्री की दास्तान को व्यक्त

करती है। हम कह सकते है कि हिंदी की स्त्री आत्मकथाएँ सिर्फ व्यथा कथाएँ नहीं है बल्कि तमाम तरह की पुरूषसत्ताक चुनौतियों को स्वीकार करते हुए स्त्री बनने की कथाएँ है । 'कस्तुरी कुडल बैस' और 'गुडिया भीतर गुडिया' इस साहस का पुख्ता सबूत है।

संदर्भ सूची

1) हिंदी साहित्य का आधा इतिहास सुमन राजे पृ. 295
2) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 15
3) कस्तुरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 13
4) कस्तुरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 12
5) कस्तुरी कुंडल बसे – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 29
6) कस्तुरी कुंडल बसे – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 42
7) कस्तुरी कुंडल बसे – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 62
8) कस्तुरी कुंडल बसे – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 59
9) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 293-94
10) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 246
11) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 67
12) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 67
13) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 20
14) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 131
15) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 66
16) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 131
17) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 95
18) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेयी पुष्पा पृ. 105
19) गुडिया भीतर गुडिया – मैत्रेदी पुष्पा पृ. 71

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

चिकित्सा क्षेत्र के तकनीकी अविष्कार और कन्या भ्रूणहत्या

डॉ. संजय गंगाराम सुरेवाड

सहयोगी प्राध्यापक तथा समाजशास्त्र विभाग प्रमुख
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई, जि. बीड।

जन्म के बाद कन्या को मार देने की दुष्पवृत्ती भारत के जिंन जीन इलाकों में पणपी उन शत्रु के ऐतिहासिक पुष्ट भूमी देखने पर अज्ञात होता है, कि कभी वहा कन्या को लूटने वाली बबरता का का दबदवा था। वहा कन्याओ को लूटने वाले परिवार के अन्य सदस्य की हत्या कर देते थे। जिसका परिणाम यहा हुआ की, कन्या के जन्म को वहा अभिशाप समझा जाने लगा। स्त्रियों की सुंदरता को मृत्यु का आमंत्रण माना समजा जाने लगा। ठीक यही कहानी आज फिर दोराई जा रही है। दहेज, आधी सामाजिक कुरतियो के चलते कन्या जन्म को अभिशाप समजा जाने लगा है। इसलिये जन्म लेने से पूर्वही मा की कोक मे ही उसकी हत्या कर दी जाती है। लेकिन कन्या भ्रूण की हत्या करने करने वाले या नही जानते की वे कोक मे सास ले रहे एक अबोधकी हत्या के साथ साथ आत्महत्या भी कर रहे है। मारा पूर्ण की हत्या करने वाले मा बाप और परीजनको समज लेना चाहिये की आधी नारायणी को मारेंगे तो नारायण का खूप भजन भी नही को बनना पडेगा। वे इस सत्ते को अंधे का कर रहे है, की यदि मे लक्ष्मी के साथ छेडछाड करेंगे तो अंततः उनके हाथ कंगाली ही लगेगी।

यदि चिकित्सा विज्ञान और सामान्य कार्तिक दृष्टी से देखे तो बच्चे का जन्म प्रसो के बाद नो होकर न होकर उसी समय हो जाता है। जब स्त्री गर्भाशय मे किता के शुक्राणू और माता के अंडा नका मिलन निषेध होता ।है डिसेशन के साथ ही गर्भाशय मे एक जीवन जन्मले लेता है। जो धीरे धीरे आकार ग्रहण करता है। रूप स्वरूप प्राप्त करता है और विकसित होता है। इस प्रकार गर्भ मे पूर्ण नही अर् पितो एक शिशु ही पल रहा होता है। पूर्ण हत्या या गृहपात को हमारी पुरातन संस्कृती मे एक पाप की सज्ञा दी गई है। कन्या भ्रूणहत्या को हमारी पुरातन संस्कृती मे एक पाप की सज्ञा दी गई है। कन्या भ्रूणहत्या को तो हिंदू शास्त्र व संत महात्माने महापाथक का आहे ये हमारी सर्वज्ञात और विश्वसनीय सौगंध थी की आज भी है। तो मुझे कन्या भ्रूणहत्या का महापौप लगे। यह कैसी बनना है कि भ्रूणहत्या को मा बाप मानने वाले हमारी संस्कृती मे कन्या भ्रूणहत्या करना सामाजिक फॅशन और आधुनिकता का पर्याय बन गया है।

इसी प्रकार इस्लाम मे भी हमल भ्रूण को जाया, कन्या भ्रूणहत्या करना गैर इस्लामिक माना जाता है। कन्या भ्रूणहत्या किसी भी धर्म मे जायेज नही है। लेकिन इस्लाम मे तो इसकी बिलकुल भी इजाजत नही दी जा सकती। जानेमाने इस्लामिक विद्वान और दारू उलूम के सदर मुदरीस मुलांना अजमशाह कश्मीरी कन्या पूर्ण को गैर इस्लामिक और घोर अपराध करार देते हुए कहते है, की औरत अपने गर्भ को जाया ना करे। उसे उसका कोई अधिकार नही है। मौलाना कश्मीरी कहते है की, रीजक, रोटी तो खुदा के हाथ मे है। किसी भी डर से कन्या पैदा होने से रोकना खुदा की हैसियत का सुबह करना जैसा है। ये सोचना ही बहुत बडा पाप है। की बच्चा जब पेट मे पल रहा है, तो उसे जाया कराया जाये। मौलाना मानते है की, पूर्ण कन्या हत्या अर्थात जाणबुजकर गृहपात कराना हत्या के बराबर ही अपराध है। वास्तव्य आवरत को चाहिये की या किसी भी हालत मे अमल को जाया न होने दे। कन्या पैदा होने के डरसे तो गृहपात कराया ही नही जाना चाहिये। क्योंकि इससे लडकियों को ये ऐसा होता है कि समाज मे उसका कोई मूल्य नही है । उनकी कोई उपयोगिता नही है। इस्लाम हलाकी पुरुष प्रधान धर्म है लेकिन फिर भी इस्लाम औरतो को बहुत से हुकूम देता है और पैदा होने का साप तोर पर मनाई है।

कन्या भ्रूण हत्या का अर्थ और परिभाषा

कन्या भ्रूण हत्या का मतलब है माँ की कोख से मादा भ्रूण को निकल फेंकना। जन्म-पूर्व परीक्षण तकनीक (दुरुपयोग के नियमन और बचाव) अधिनियम 2002 की धारा 4 (1) (b,c)के तहत के अनुसार भ्रूण को परिभाषित किया गया है- "निषेचन या निर्माण के सतानवे दिन से शुरू होकर अपने जन्म के विकास की अवधि के दौरान एक मानवीय जीव।"

आज चिकित्सा विज्ञान इतनी अधिक प्रगती कर चुका है की, गर्भ के समय ही शिशु के लिंग अधिकार, पता आसानी से लगाया जा सकता है। 1970 मे गर्भ विज्ञान मे विज्ञान के एकाएक उस समय आ गया, जब अल्ट्रा साऊंड ग्राफ अर्थात ध्वनी तरंगू द्वारा चित्र का प्रादुर्भाव हुआ। सीटोलॉजी हिस्ट्रोलॉजी रासायनिक के विकास के कारण अल्ट्रासाउंड तकनीकी की सहायता से गर्भ मे पल रहे शिशु के लिंग की जाच की जा सकती है।

अल्ट्रा साऊंड का एक भेद आसान सी प्रक्रिया है। इसलिये इस तकनीक किंग सहायता से पूर्ण के लिंग का पता लगाया जाता है। इस तकनी के अंतर्गत उस महिला को मेज पर हिटा दिया जाता है। जिसके भ्रूण का परीक्षण किया जाना होता है। इसके बाद अल्ट्रासाउंड यंत्र का एक सिरा स्त्री के गर्भाशय पर टीका दिया जाता है। ऊस यंत्र में मूल रूप से क्रिस्टल होता है। उच्च गति की ध्वनी तरंगो को प्रेशर करता है। एक ट्रांसपोर्ट दुसर जो ऊन धोनी तरंग को प्रतिनिधी एकत्रित करत आहे ।जो ऊन धोनी तरंग को प्रतिध्वनी एकत्रित करता है। प्रतिध्वनी या कम्प्युटर के द्वारा एकत्र की जाती है। जो गर्भ मे पल रहे शिशु के चित्र के रूप में स्क्रीन पर आधारित हो जाती है। वसुधा ु का चित्र रेखीय चित्रका चित्रण के द्वारा बनाया था जाता है।

इस अल्ट्रा साऊंड तखनिक द्वारा शिशु के हृदय के वालो के खोलने और बंद होने की क्रिया तक को असाईनी से देखा जा सकता है। शिशु के अल्ट्रा साऊंड चित्र द्वारा स्पष्ट हो जाता है, की गर्भ मे पल रहा जन्मा शिशु भी हमारी तरह ही जीवित होता है। मानव जाती का ही एक सदस्य होता है। इस तकनीक की सहायता से भ्रूणके लिंग का पता लगाकर उसका गृहपात करवा दिया जाता है। गृहपात एक वेरहम और अमान्य प्रक्रिया होती है। इसमे लोहे व अन्य धातू उपकरणे मे से शुरू नको उचला जाता है। उसे नष्ट किया जाता है। दोरा कुलाम नामक यंत्र सक्षम ट्यूब की सहायता से गर्भ में शिशु को चारो और उपस्थित तर पदार्थ को चूसकर बाहर निकाल दिया जाता है। इसके बाद साक्षण ट्यूब से ही शिशु के छोटे छोटे तुकडे किये जाते है। तुकडे तुकडे करके शिशु को भार निकला जाता है। इसलिये साक्षण ट्यूब की सहायता से शुरू के शीर को निकालना संभव नही होता है। की समस्या के समाधान हेतू लोवे के सिर्की एक चिमटी को घर बात मे डाला जाता है। उसके हाथ पर भी होते है अपुरा विकसित चेहरा भी इसके अलावा उसका हृदय और मस्ती मे पुरी तरह से कार्य कर रहा होता है।

कुछ लोग गृहपात को शल्य क्रिया न मानकर साधारण सी एक सफाई मानते है। लेकिन वास्तव में ऐसा नही है। अप्रकार्तिक गृहपात करवाने से गर्भवती स्त्री के स्वास्थ्य को गंभीर खतरा पैदा हो जाता है। इसके कारण अत्याधिक रक्तस्राव हो जग हो सकता है। जिसे स्त्री की मृत्यु तक हो सकती है। अक्षर गृहपात के कारण जनन अंग कमजोर हो जाते है है। जिसे भविष्य मे गरोदर होना काफी मुश्किल हो सकता है।

पिछले कुछ समय से कन्या भ्रूणके मामले से तेजसे जिजाबा हुआ है। तो उसके अपने कारण है इस प्रकृती के पीछे मूल रूप से हमारी सामाजिक सोच ही जिम्मेदार है। जन्म के समय से ही स्त्रिया हमारे समाज में प्रथाडित होना सुरू हो जाती है। अपराध्य चाहिये कोई भी करे, लेकिन उसकी सजा अंततः स्त्री कोही मिलती है है। बलात्कार महिला को खिलाफ होता है। लेकिन समाज बलत्कारी के स्थान पर पिडीत महिला को हीकारत की नजर से देखने

लगता है। सामाजिक तानाबाना ऐसा है की बेटी को भी को कभी विरासत का उत्तर अधिकारी नही समजा जाता था। धार्मिक संरचना ऐसी है की, देश एक आवश्यक संस्कार बन गया है। दहेज प्रथा रोखणे के हमारी नाकामी के चलते आज कन्या भ्रूणहत्या बडावा मिल रहा है। कुछ आधुनिक लोक सोचने लगे है की, बेटी के विवाह मे लाखो रुपये खर्च करने से बेहतर की, चंद्र रुपये मे खर्च रुपये खर्च करके बेटी की कोकमे है समाप्त कर दिया जाये, कुछ समय से अकबरो मे अवैध रूप से लिंग की जाज करने वाले के विज्ञापन की वाडसी आ गई है। इन विज्ञापन मे कहा जाता है कि 2000 खर्च करके दो लाख बचाये, दर असेल हे मामला जीने का अधिकार छिन लेने का है। इसे स्त्री के अस्तितो पर समालिया निशान लगे है। महत्वपूर्ण बात हे की इस अपराध में की जडस शिक्षा अथवा गरीबी मूळ कारण नही है। पूरी तरफ से हमारी संवेदनशीलता का नतीजा है। महापौप का एक बडा कारण शायद यह भी है, कि स्त्रिया स्वयं स्त्री होने की ही भावनासे ग्रस्त है। आज भी अधिक तर गर्भवती स्त्रिया पुत्र की काम नही करती है। स्त्रिया बेटे होणे स्त्रिया बैठे पैदा करने में गर्व का अनुभव करती है। और बेटी पैदा होने पर उन्हे शर्मा आणि लगती है है।

तथ्य यह बताते है, की हमारी यहा अधिक तर कन्या भ्रूणहत्या ओ के मामले पुत्रप्राप्ति के होते है। कन्या भ्रूणहत्या का एक कारण लगातार छोटे होते जा रहे है। परिवार छोटे होते है। और युगल के अलावा बस दो बच्चे को ही गुंजाइश बची है। प्रत्येक युवक चाहता है, की उसमे कम से कम एक पुत्र अवश्य हो। इसलिये पहिली बार जन्म लेने पर दुसरी बार युगल गर्भ मे ही शिशु के लिंग का पता लगवा लेता है। और यादी पुन्हा गर्भ मे कन्या ही पल रही होती है, तो युगल गृहपात का अमान्य निर्णय ले लेता है। समाल यह उठता है, की यदि बाद मे भी दोबारा लडकी ही गर्भ मे आती रही तो क्या होगा, समाज किस प्रकार किसे ताकने लगता है है। या अल्ट्रासाउंड से समजा जा सकता है, वास्तव में करने का उद्देश गर्भ मे पल रही बच्चे के विकास के बारे मे जाना होता है। पता लगाया जाता है की कही बच्चा असामान्य स्थिती मे तो नही है, या उसका विकास रुक तो नही गया है। लेकिन अब अल्ट्रासाउंड करने का मुख्य उद्देश शिशु का लिंग पता करना मात्र रहे गया है।

एक आनुमान के मुताबित भारत मे प्रत्येक वर्ष एक लाख से भी अधिक महिला है। गर्भसंबंधी कारनो से मृत्यु का शिकार हो जाती है। और आदित्य मोते कन्या भ्रूण का गृहपात करते समय ही होती है है। इसके बारे मे कोई सही आकडे उपलब्ध नही है। की प्रत्येक वर्षे कितने महिला गृहपात करती है, और कितने महिला हे की सामाजिक या पारिवारिक कारनो से गृहपात का निर्णय लेती है। वैसे पाच लाख से दो करोड गृहपात सालाना के आकडे विभिन्न स्त्रोतो से मिलते है। एक आध्ययन के अनुसार 1992 मे देश के देश में कुल एक करोड दस लाख गृहपात कराये गये। ह्या आश्चर्यकीय बात यह है, कि देश मे गृहपात की कानूनी मान्यता मिली वीस वर्षे से अधिक समय हो चुका है। लेकिन मनसो 92 मे हुए इन गर्भा तो मे से केवल 0.6 प्रतिशत ही पंजिकृत गृहपात एमटीपी ते माना जाता है, की प्रत्येक जसे 12 अवैध कृपा पंजिकृत होता है।

ऐसी युग मे जब महिलाओं में लगबग हर क्षेत्र में प्रगती की है। ऐसे लोक भी है जो अभी भी महिलाओ को निम्न दर्जा देते है। हमारे कुछ भारतीय समाजाने संतान महिला को महिला को अधुरा माना जाता है। वही जिसने जन्म दिया है वह आवश्यक रूप से पूर्ण है। केवल वही व्यक्ती जिसने पुत्र किया है, उत्पन्न किया है। एक प्रकार की स्थिति का आनंद लेता है। यह समस्या दहेज की संस्था से गहराई से जुडी हुई है। अगर लडकी हुई तो हमे पहले उसकी शिक्षा पर खर्च करना होगा, और फिर उसकी शादी और दहेज पर बात यही नही रुक्ती हमे शादी के बाद भी उसके कुछ खर्च को पूरा करना होगा, ऐसी स्वच्छ कारण सोच के कारण भारत में सामाजिक दबाव और अल्ट्रा साऊंड जेसी कम लागत वाली तकनी को के उपस्थिती के कारण का लिंग आधारित गर्भपात हो रहा है।

विज्ञापन दहेज की भविष्यकी लागत को बचाने के लिए लोगो को अपने कन्या भ्रूणहत्या करणे के लिये खुलेआम प्रोत्साहित करते हुए दिखाई देते है। पोर्टेबल अल्ट्रा साऊंड मशीन ने डॉक्टर को कसबो और गाव मे घर घर जाने की सुविधा दि है। लोकतंत्र मे सामान्य मानदंड मानदंड पुरे होणे पर व्यवसाय और जीविका के अधिकार को प्रतिबंधित करना मुश्किल है

80 दशक के अंतर्गत देश मे भ्रूणके लिंग का पता लगाने की आधुनिक तकनीक लोकप्रिय होने लगी है। कुछ साल मे पूर्ण लिंग निर्धारण व फिर बालिका भ्रूणकी हत्या जिस कदर तेजी से बडोत्री हुई है। उसमे सभी को चिंता मे डाल दिया गया है। पंजाब के स्वास्थ्य सेवानिर्देशक ने स्वीकार किया था, की वर्ष 1997 मे प्रति हजार पुरुषो प्रति हजार पुरुषो का औषध गिरकर 791 रह गया है। आर्थिक रूप से संपन्न हरियाणा और दिल्ली भी इस आकडे से दूर नही है। उत्तर पश्चिमी भारत तो खैर पुरुषो सत्तात्मक और के लिए कुख्यात है। लेकिन ताजुब होता है। जब मनिपुर केरळ असं जैसे राज्य मे बालिका पूर्ण की हत्या के मामले सामने आते है। जहा महिला को महिला को शेष देश के अपेक्षा अधिक अपेक्षा अधिकार संपन्न समजा जाता है।

भारत सरकार और अनेक राज्य सरकारों ने समाज में लड़कियों और महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए विशेष योजनाएं लागू की गई हैं। इसमें धनलक्ष्मी जैसी योजना शामिल है।राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो से प्राप्त जानकारी के अनुसार 2011 के दौरान देश में कन्या भ्रूण हत्या के कुल 132 मामले दर्ज किए गए। इस सिलसिले में 70 लोगों को गिरफ्तार किया गया, 58 के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया गया और 11 को दोषी ठहराया गया। क्या किया जा सकता है?

यह पुरी तरह से समजती हुए की इस तरह की बुराई को अलग से संबंधित नही किया जा सकता है। हम दहेज महिलाओं की बेरोजगारी और समाज मे शोषण लडकियों के शिक्षा मानको के साथ साथ है। स्कूल छोडने वाली लडकियो जैसी संबंधित सामाजिक बिमारीयो कि भी बारीक से जाज कर रहे है। शीघ्रविवाह, व्यवस्थित विवाह प्रणाली विकसित की जाये। भारत मे उपरोक्त प्रत्येक सामाजिक बुराई के लिए सतत विकास मॉडल विकसित की जाये, ताकी इनका भारतीय समाज मे महिलाओ के अनुवाद में सुधार पर प्रभाव पडे।

संदर्भ

1. कन्या भरून हत्या का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य, मनमित कोर
2. कन्या भ्रूणहत्या चिकित्सा प्रतिष्ठान की मिली ली भगत, ललिता स्त्रीधर
3. Vikaspedia
4. 21वी सदी मे महिलाओं का बदलता स्वरूप, नैनेश गढवी, राम सोंदवा

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी उपन्यासों में व्यक्त आदिवासी विमर्श

प्रा. डॉ. संगीता लोमटे

कै.सौ.कमलताई जामकर महिला महाविद्यालय, परभणी.

हिंदी गद्य साहित्य की सभी विधाओं में कथा साहित्य सबसे अधिक प्रसिद्ध रहा। इसी कारण जो भी साहित्यिक परिवर्तन हुआ पहले कथा साहित्य में हुआ। कहानियों के साथ-साथ उपन्यास भी एक लोकप्रिय विधा रही है। हिंदी का उपन्यास साहित्य सदैवसे संपन्न रहा है। हर युग की परिस्थितीयों का चित्रण उपन्यासों में होता रहा है। हिंदी साहित्य में उपन्यासकारों ने हर युग की प्रवृत्तियों का चित्रण किया हुआ है। आज हिंदी साहित्य के आधुनिक युग में विषयगत बहुत अधिक परिवर्तन हुआ। समाज के दुखिकीत और पीड़ित वर्ग को केंद्र बनाकर एक आंदोलन-सा चल पड़ा इसी कारण बहुत से विमर्श का जन्म हुआ - जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अल्पसंख्याक विर्मश, आदिवासी विमर्श आँचलिक साहित्य आदि । इन सभी में एक विशिष्ट विषय की प्रधानता रही हैं। जिसमे विषय के सभी पहुलओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया यह कार्य अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास के माध्यम से अधिक विस्तार और स्पष्टता से किया जा सकता हैं।

आदिवासी अस्मिता :

जहाँ एक ओर हमारा आधुनिक समाज इतना अधिक प्रगत हुआ है कि, वह निसर्ग को भी चुनौती दे रहा है। विज्ञान, तंत्रज्ञान के आधारपर वहीं दुसरी ओर कुछ पीछडे समाज अपने पेट को भरने की समस्या से ही जुझ रहे है। जो प्रगत समाज से दूर जंगलो में रहता है। जिनकी जीवन पध्दति आदीम अवस्था में है। इसलिए हम उन्हें आदिवासी कहते है। और उन्हें यह सभ्य समाज हीन दृष्टी से देखता है। उनका विकास और सुधार होने की बजाय उनका मनमाना शोषण किया जाता है। आदिवासी समाज समाज के विकास का हिस्सा बनकर भी अपना अलग अस्तित्व बनाए रखना चाहता है। " आदिवासी अस्मिता के उदय का संबंध आदिवासियों की भाषा उनकी पहचान, सत्ता में उनकी भागीदारी और विविध मुद्दों पर उनके आंदोलनात्मक भूमिका से है। आदिवासी समाज अपने द्वारा ही अपनी सामाजिक संरचना को चलाना चाहता है--- वे चाहते थे कि उनके जल, जंगल और जमीन को उनसे न छीन जाए"।[1]

आदिवासी उपन्यास का उद्देश्य स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए आदिवासियों के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना, अनेक पर्वो, उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों, व्यथा के अवसरों गीतों, संघर्षो, प्रकृति के रंगों, पुराने नए जीवन मूल्यों आदि से लिपटा हुआ आदिवासियों का जीवन अभिव्यक्त के एक नए माध्यम की अपेक्षा करता है। इस प्रकार के आदिवासी विमर्श के लिखे गए उपन्यासों में सबसे पहले १८९९ में 'बसंत मालती' नामक उपन्यास जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा। प्रारंभिक हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन की सही तस्वीर रामचीज सिंह की 'बन विहांगिनी' (१९०९) कृति में दृष्टिगत होती है। संथाल परगना के आदिवासी क्षेत्र की कोसकुमारियों का जीवन संघर्ष उनकी वेश-भूषा, उनकी भाषा, उनका रहन-सहन, उनके देवी-देवता, उनकी संस्कृति, उनके पर्व-त्यौहार एवं उससे निर्मित मानसिकता का अध्ययन प्रस्तुत है।

आदिवासी जीवन संबंधी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास साहित्य के लिए घने वन, जंगल, पहाड़ों और खोंहों में बसनेवाले आदिवासी जीवन को खोजा जिनमें प्रजनन्दन सहाय जिन्होंने 'अरब्धबाला' (१९०४) उपन्यास विंध्याचल के पहाड़ी आदिवासी जीवन संस्कृति को चित्रित किया। इसी परंपरा में मान्नन द्विवेदी ने

रामलाल उपन्यास लिखा इन कृतियों के अनघड़ शिल्प को तराश कर व्यवस्थित बनाकर उसमें आधुनिक सूक्ष्म शिल्प भंगिमाओं को जोड़कर स्वातंत्र्योत्तर काल में देवेन्द्र सत्यार्थी नें 'रथ के पहिये' (१९५२) लिखा। इसी परंपरा में वृंदानलाल वर्मा का 'कचनार' उपन्यास है जिसमें गोंडों की संस्कृति को दर्शाया है। ब्रिटिश काल में आदिवासीयों को एक ओर नवीनता मिली तो दूसरी ओर शोषित होना पड़ा। धर्म के नामपर इन गरीब आदिवासीयों को लूटा गया । ऐसे उपन्यासों में बिहार की ही आदिवासी जाती को केंद्र में रखकर लिखे गए उपन्यास हैं जिनमें 'बनपायी' (गुरुचरणसिंह), 'तमाम जंगल' (कान्हजी तोमर) 'सांवल पानी' (भालचंद्र ओझा) 'गगन घटा घहरानी' (मन मोहन पाठक) आदि।

आदिवासी जीवन केंद्रीत उपन्यासों की सही तस्वीर झारखंड पर लिखे उपन्यासों में मिलती हैं। "बेशक, यह वही क्षेत्र है जो देश की भौगोलिक सीमाओं में न केवल खनिज संपदा की दृष्टि से सर्वाधिक संपन्न है बल्कि जहाँ उन्नीस कबीलों में बंटी वैविध्यपूर्ण आदिवासी संस्कृति चौतरफा दबावों के बीच अपनी अस्मिता की पहचान की लड़ाई लड़ रही है।"[२] राजेंद्र अवस्थी की 'सूरज किरण की छाँव' (१९५८) इसी परंपरा में शानी जी है वह आम आदमी के रचनाकार है। उन्होंने आम आदमी के दुःख दर्द भावना एवं संपूर्ण मानवीयता को प्रदर्शित करना अपना लक्ष्य माना है। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में 'साँप और सीढ़ी' लिखा है "कथाकार का कन्सर्न केवल आदमी है, आदमी का दुःख है, दुःख के कारणों की तलाश है।"[३]

भील जनजाती पर श्याम परमार ने 'मोझाल' (१९६३) लिखा है तो 'कुराँटी' डॉ. सतीश दुबे का यथार्थपर उपन्यास है। स्वयं रचनाकार दुबेजी दीर्घकाल तक इन्दौर संभाग के आदिवासी क्षेत्र में रहे, भीलों की सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक विकास की समस्याओं एवं जीवन-यापन की समस्याओं को अत्यन्त निकट से देखा। जनजातीय कथाभूमि को हिन्दी पट्ट से बाहर ले जानेवाली औपन्यासिक कृतियों की मुख्यरूप से चर्चा जरुरी लगती है। हिमांशु जोशी के उपन्यास 'महासागर' (१९७३) निकोबार द्विप की आदिवासी जाति को पेश किया गया है। तो सागर की गलियाँ (१९८७) डॉ. एन. रामन नायर ने केरल के दिक्खिनी छोर पर कन्याकुमारी से साठ-सत्तर कि.मी दूर अरब सागर के तटपर निर्भर जीवन यापन करनेवाले आदिवासी मछुआरों की कथा है। आठवे दशक में उठी लघुकथा की लहर में जिन रचनाकारों ने आंदोलन और रचना दोनों किनारों पर तैराकी और गोताखोरों के कौशल में काफी ध्यान खींचा। उनमें एक श्याम बिहारी श्यामल भी है। जिनका 'धपेल' यह उपन्यास पालमू आदिवासी जीवन के सुखा, अकाल, गरीबी और पिछड़ेपन के खिलाफ जारी संघर्ष का चित्रण करनेवाला हिंदी का पहला उपन्यास है।

नववें दशक में श्री प्रकाश मिश्र रचित 'जहाँ बाँस फूलते हैं' में लुशेइयों की समस्याओं को उनके जीवन संदर्भों के बीच से उभरकर जन् तथा सरकार दोनों के दृष्टिकोण को सामने रखकर एक बड़ी जरूरी मांग को पूरा किया है । नवें दशक के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कथाकार संजीव जी का 'जंगल जहाँ शुरू होता हैं' (1999- 2000) आदिवासी धारु जाति और डाकुओं एवं राजनितिज्ञों के आपसी लड़ाई को प्रदर्शित करता है। जो संकेत देता है कि जंगल हर मनुष्य में पनपता रहता है। जिसमें हमारा अक्सर सामना होता है। पुष्पा मैत्रेयी का 'अल्मा कबूतरी' (२०००) कबूतर जाती की कथा है। जिसमें पुलिस द्वारा उनके ऊपर किए जानेवाले अत्याचार, प्रशासन का शोषण, सभ्य समाज का धिक्कार और घृणा, सभ्य समाज के प्रति कबूतराओं का रोष और बदले की भावना, उनकी जीवन वृत्ति, चोरी, छीना-झपटी, लपटी, डकैती आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

बीसवीं सदी में आदिवासी की वस्तु विनिमय प्रणाली नष्ट होकर मुद्रा विनिमय का चलन बढ़ने से ये जातियाँ महाजनी शिकंजे में फँसी। औद्योगिकरण, खेतिहर समाज, भूमिहीन मजदूर वर्ग में

बदलने को मजबूर हुआ आधुनिक आदिवासी जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है। राज्यतंत्र में प्रशासन में उनकी बढ़ती भागीदारी। आदिवासी आबादी का एकवर्ग नए परिवर्तनों में शामिल है। वह उत्पादक और उपभोक्ता भी है। 'चक्रव्यूह' उपन्यास जो श्रवणकुमार द्वारा रचित है में इस स्थिति को देखा जा सकता है। समकालीन दौर में राकेश कुमार सिंह उल्लेखनिय है उनके 'जहाँ खिले है रक्त पालाश' एवं 'पठार पर कोहरा जिसमें नवीनता दिखाई देती है। यथार्थ की पकड़, भाषा की बनावट और कलात्मक अभिव्यक्ति इन उपन्यासों को अलग पहचान देती है।

उत्तर आधुनिक काल में आदिवासी जीवन को केंद्र बनाकर लिखे गए उपन्यासों में भालचंद्र ओझा 'साँवला पानी', संजीव 'सावधान नीचे आग हैं', किशोर कुमार सिन्हा 'गाथा भोगनपुरी', कृष्णचंद शर्मा भिक्खु 'रक्तयात्रा' आदि है। आज के उपन्यास गुणात्मक दृष्टि से उच्चकोटी के हैं।

'धार' समर शेष है' इसी को अभिव्यक्ति देनेवाले उपन्यास है, 'डूब', 'पार' भी इसी कोटी के उपन्यास है।

संदर्भ :

१) हंस (पत्रिका) - राजेन्द्र यादव, १९९९ (अगस्त)

२) साँप और सीढ़ी - शानी भूमिका में से

३) कथाकार शानी - डॉ. अनिल सिंह

4) नौवें दशक के आंचलिक उपन्यास - डॉ। पांडुरंग पाटी

५) हिंदी में आदिवासी जीवन केंद्रीत उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन - प्रो. बी. के. कलासवा

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में नारी अस्मिता और अभिव्यक्ति की विभिन्न आयाम

डॉ नगरत्न एस्

सह - प्राध्यापिका

आई.एस्.बी.आर्. कॉलेज, इलेक्ट्रॉनिक सिटी, बैंगलोर - 100, कर्नाटक

नारी के बिना सारा संसार अधूरा है। ऐसे में नारी को प्रत्येक रूप से अपनी अस्मिता, पहचान, मान - सम्मान खायम् रखने की आवश्यकता नहीं है। देखा जाये तो, नारी को किसकी पहचान की आवश्यकता नहीं है। पैदा होते ही बेटी के रूप में; किशोरावस्था में बड़ी दीदी, प्यारी बहन के रूप में; जवानी में सहेली के रूप में; शादी के बाद बीवी, बहू के रूप में; वंश को आगे ले जाने वाली ममतामयी माँ के रूप में; बच्चों को मार्गदर्शन देने वाली एक मार्गदर्शक के रूप में; घर - गृहस्थी संभालते - संभालते पूरी जिंदगी एक दिया की भाँति बिताती है। एक स्त्री को इससे और क्या पहचान हो सकती है। वरन् पुरुष को अति आवश्यक है कि अपना मान सम्मान, पहचान बनाये रखने की। अपना छवि का छाप छोड़ने की। था, एक जमाना स्त्री को बहुत बुरी तरह से खरी खोटी सुनाइ जाती थी। जैसे:

कबीर नारी कुंड नरक का, बिरला थंभै बाग।

कोई साधू जन ऊबरै, सब जग मूवा लागा।।

नारी नचावै तीनि सुख, जा नर पासै होई।

भगति मुक्ति निज ज्ञान मैं, पासैं न सकई कोई।।

नारी की झाई पड़त, अंधा होत भुजंग।

कबीरा तिनकी कौन गति जै नित नारी के संग।।

- कबीरदास

नारी को नरक के द्वार, तीन सुखों को नाश करने वाली, त्याज्य ठहरा दिये थे। नहीं तो स्त्री को भोगने का साधन या एक सुविधा के रूप में उपयोग करते थे। नारी की सोच विचार पर दबाव डाल के, परंपरा के आड़ में अपने दमित वासनाओं के शिकार बनाते थे।

आज - कल की लड़कियाँ यह सब कुछ सहती नहीं है। माता-पिता के दबाव में शादी करके अपनी जिंदगी और आजीविका को नाश करना पसंद नहीं है। आज की नारी स्वतंत्रता से और स्वेच्छा से अपनी जिंदगी जीना चाहती है। बल्कि खुलकर आसमान में पंछी की भाँति उड़कर, किसी बंदिश के बिना जीना चाहती है। 21वीं सदी के नारी जिंदगी को त्राहि - त्राहि बनाकर, झंझट के झमेलों से घेरकर, दो वक्त की रोटी के लिए पति पर निर्भर होकर, परिवार के सदस्यों के ताने सहकर रहना पसंद नहीं है। इस बात को पुष्टि करते हुए अपने उपन्यास ' सपनों की होम डिलिवरी ' में ममता कालिया जी लिखते हैं कि:

"स्वतंत्रचेता लड़कियाँ शादी से बचने लगी थीं। "

- ममता कालिया

पढ़ाई - लिखाई करके अच्छा खासा नौकरी पकड़ कर लाखों का वेतन कमाती है। लाखों का वेतन कमाने वाली, सुशिक्षित, तेज दिमाग वाली नारी आज, पुरुष के चंगुल में इतनी आसानी से फँसती नहीं है। माता-पिता के दबाव में आकर या गरीबी की मजबूरी से वह शादी के बंधन में नहीं बंद रही है। बल्कि व्यवहार कुशलता और चतुरता से अपनी जीवन साथी चुनने की अधिकार अपने हाथों लिया है। अधुनातन युग की महिला बहुत ही सावधानी से, भविष्य के बारे में सोच विचार करते हुए कदम आगे बढ़ा रही है। मर्द के अहं के तले मुरझा जाना पसंद नहीं है। ना ही परंपरागत रूढ़ियों को पालन करने में कोई दिलचस्प दिखाती है। यहाँ मैं ममता कालिया जी की उपन्यास ' सपनों की होम डिलिवरी ' में चित्रित एक पंक्ति को उदाहरण के तौर पर लेना चाहती हूँ।

" माता-पिता के दबाव में उन्हें शादी के फ्रेम में बँधना पड़ता पर, दिन पर दिन यह फ्रेम उन्हें दम घोंटू महसूस होता। " - ममता कालिया

21वीं सदी की नारी में इतनी आत्म सम्मान है कि, वह खुद की रोटी अपनी भल-भूते पर कमाकर खाती है। अपने परिवार जनों का देख-रेख करती है। कभी-कभी अपने पति का भरण पोषण भी करती है। यहाँ मन्नू भंडारी जी की ' नशा ' कहानी के कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है।

" वह बीस रुपये की मनीऑर्डर की रसीद थी, मनी ऑर्डर शंकर के पास भेजा गया था। " - मन्नू भंडारी

आधुनिक युग की नारी के मन:स्थिति पर बदलाव का हवा बह रही है। वह किसी की दासी बनकर, किसी की दबाव में दबाकर, घुटन में जिंदगी जीना पसंद नहीं है। दर्द-पीड़ा सहते-सहते, ताने सुनते-सुनते ऐसे एक स्तर पर पहुँच गई है कि, वह किसी पर अवलंबित न हो, किसी पर बोझ बन जाओ। इतना सहने पर भी उसे क्या मिलेगी? राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री से पुरस्कार तो नहीं मिलेगी। उल्टा एक करारा प्रश्न पूछते हैं कि, किसने कहा था? तुम्हें यह करने के लिए। इस संदर्भ में मैं महादेवी वर्मा जी की ' घर और बाहर ' (संभाषण) की कुछ पंक्तियों की जिक्र कर रही हूँ।

" अपनी असीम विद्या बुद्धि का भार लिए हुए एक स्त्री किसी के गृह का अलंकार मात्र बनकर संतुष्ट हो सकेगी..... " - महादेवी वर्मा

आधुनिक युग की स्त्री हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति की छाप छोड़ रही है। छोटे से छोटे व्यवसाय से लेकर बड़े से बड़े कारोबार में अपनी दस्तक दे रही है। यहाँ तक की मंगल ग्रह पर भी अपनी पाँव पसारा है। कहाँ? वह नारी! परिवार को मंदिर, पति को भगवान, रसोई घर को अपनी जिंदगी की सार्थकता समझ बैठती थी। वर्तमान युग के पुरुष प्रधान समाज में हर रोज की चुनौतियों को चुटकियों में निपटाकर अपनी एक अटूट पहचान को प्रस्तुत करने वाली आज की स्त्री। कहाँ? कितना फासला है? इस संदर्भ में मैं महादेवी वर्मा जी की ' घर और बाहर ' (संभाषण) की कुछ पंक्तियों को पेश करती हूँ;

" वर्तमान युग के पुरुष ने स्त्री के वास्तविक रूप को न कभी देखा था न उसकी कल्पना कर सका। उसके विचार में स्त्री के परिचय का आदि अंत इससे अधिक और क्या हो सकता था कि वह किसी की पत्नी है। " -महादेवी वर्मा

इन फासलों को स्त्री इतनी आसानी से तय नहीं कर पाई है। धीरे-धीरे रास्ते में पड़े एक - एक कंटक और पत्थर को हटाकर अपनी रास्ता साफ बनाई है। बल्कि आने वाली पीढ़ी को एक भद्र, साफ, सुगम रास्ता बनाकर छोड़ी है। एक दिन, एक हफ्ता, एक महीने में यह रास्ता नहीं बना। कई महिलाओं के जिंदगी की बलिदान है। अरे!

स्वतंत्र ही हमें ढाई सौ साल लड़ने से मिली है। तो परंपराओं को, रूढ़ियों को तोड़ने में, आचार विचारों में परिवर्तन लाने में, परिवर्तित करने में सदियाँ बीत जाते हैं।

नारी की श्रेष्ठता और साक्षमता इसमें साफ दिखाई पड़ती है। धीरे से ही सही एक-एक कदम को आगे रखते हुए नारी अपनी अस्मिता को स्थापित कर रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि :-

1. कबीरदास –कबीर ग्रन्थावली – 2011 - अशोक प्रकाशन
2. सपनों की होम डिलिवरी - ममता कालिया – 2019 - लोक भारती प्रकाशन
3. महादेवी वर्मा - घर और बाहर (संभाषण)* - 2022
4. मन्नू भंडारी – नशा (कहानी)* - 2022
5. बेंगलुरु प्रसारांग - बेंगलुरु विश्वविद्यालय के स्नातक कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली पाठ्यक्रम।

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

विकलांग विमर्श और वीमा नाटक

डॉ ज्योति संभाजीराव मुंगल
सहायक आचार्य (अंशत:)
राजीव गांधी महाविद्यालय मुदखेड

शोध सार

बींसवी सदी के उत्तरार्ध में वैश्विक फलक पर विविध विमर्शों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, जनजातीय विमर्श, किन्नर विमर्श, बालविमर्श, किसान विमर्श आदि पर लगातार चर्चा हो रही है। इसी प्रकार दिव्यांगता भी साहित्य में एक नये विमर्श का रूप ले रही है। प्रस्तुत शोध आलेख में भारत में विकलांग की स्थिति और साहित्य के माध्यम से विकलांगों की परिस्थिति, समस्याओं, सरकारी नीतियों तथा विकलांगों के जीवन में सुधार के लिए किए जाने वाले सकारात्मक प्रयासों और उपाय बताने की कोशिश की है। वीमा नाटक में विकलांग जीवन के सभी अनछुए पहलुओं को भी उभारा है। इसलिए इस नाटक के माध्यम से विकलांग विमर्श को स्पष्ट किया है।

बीज शब्द : भारतीय समाज, साहित्य, विकलांग विमर्श/ दिव्यांग विमर्श, वीमा नाटक

आमुख

भारत में 121 करोड़ की आबादी में से 2.68 करोड़ व्यक्ति 'दिव्यांग' हैं जो कुल जनसंख्या का 2.21% है। दिव्यांग जनसंख्या में 56% (1.5 करोड़) पुरुष हैं और 44% (1.18 करोड़) महिलाएँ हैं। कुल जनसंख्या में पुरुष और महिला जनसंख्या क्रमशः 51% और 49% है। यदि इनकी साक्षरता और रोजगार के का प्रमाण प्रतिशत में देखा जाए तो वर्तमान में शहरी क्षेत्रों में, जो विकलांग साक्षर हैं, उनमें से 15% स्नातक हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में उनमें से केवल 5% स्नातक हैं। अखिल भारतीय स्तर पर कुल विकलांग व्यक्तियों में से 36% श्रमिक हैं। पुरुष विकलांग व्यक्तियों में, 47% कामकाजी हैं और महिला विकलांगों में, केवल 23% कामकाजी हैं।

विकलांगों को सामाजिक जीवन में समुचित अवसर उपलब्ध हो। वे समाज से अपने आप को अलग-थलग महसूस न करें। उनकी शक्तियों का सही उपयोग सामाजिक विकास में हो सके इन सबका उत्तरदायित्व अंततोगत्वा समाज पर ही है। समाज का ध्यान बहुत दिनों तक विकलांगों के उत्थान के लिए उस रूप में नहीं गया है जिस रूप में दिया जाना चाहिए। विकलांग समाज से उपेक्षित और अनापेक्षित जीवन जीता रहा है।

"वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन के मुताबिक दुनिया में 60 करोड़ से अधिक लोग विकलांगता से प्रभावित हैं। विकसित देशों के मुकाबले विकासशील देशों में ये चुनौती ज्यादा है।" 1

विकलांगता का अर्थ

सामान्य अर्थों में विकलांगता ऐसी शारीरिक एवं मानसिक अक्षमता है जिसके चलते कोई व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों की तरह किसी कार्य को करने में अक्षम होता है। तकनीकी दृष्टि से विकलांग एवं विकलांगता व्यापक संदर्भ वाले शब्द हैं जिनकी एक से अधिक परिवर्तनशील परिभाषाएँ हैं। भारत में ऐसे व्यक्ति को विकलांग माना गया है जो चिकित्सा अधिकारी द्वारा प्रमाणित 40 प्रतिशत से कम विकलांगता का शिकार न हो। प्रो० दामोदर मोरे ने

दिव्यांगता को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "कुदरत को दी हुई शारीरिक, मानसिक, दुर्बलता, न्यूनता या विरूपता विकलांगता है। यह विकलांगता दुःख की जननी है। लेकिन इस सत्य को न स्वीकारते हुए उससे दूर भागना या डरना कायरता है। उसका डटकर सामना करना ही पुरूषार्थ है। शरीर भले ही विकलांग हो, मन विकलांग नहीं होना चाहिए, क्योंकि मन तो उर्जा का केन्द्र है। जो व्यक्ति संस्था या समाज विकलांगों के अस्तित्व की रक्षा व उनकी उन्नति के लिए काम करता है, वह मानवता का सच्चा मित्र है, उसका प्रहरी है।"2

पुनर्वास एवं आत्मनिर्भरता बढ़ाने हेतु प्रयास

"विकलांग जनों का आर्थिक पुनर्वास उनके सामाजिक पुनर्वास की प्राथमिक शर्त है, जबकि विकलांगों का चिकित्सीय एवं शैक्षिक पुनर्वास उनके आर्थिक पुनर्वास का माध्यम है और उनके सशक्तीकरण के लिये अत्यन्त आवश्यक भी है।"3

1. भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम, 1992
2. विकलांग जन (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 ।
3. 2.1997 में राष्ट्रीय विकलांग वित्त एवं विकास निगम की स्थापना की गई थी।
4. ऑटिज्म, सेरेब्रल पॉलसी, मानसिक बीमारी और बहुविकलांगों के कल्याण के लिये राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999 ।
5. संविधान का अनुच्छेद 41 निःशक्तजनों को लोक सहायता उपलब्ध कराने की व्यवस्था करता है।

साहित्य में विकलांग विमर्श

विकलांगों के जीवन को अनेक साहित्यकारों ने अपनी लेखनी का विषय बनाया है। विकलांग की मनोदशा विकलांग की वेदना विकलांग के प्रति समाज के दृष्टिकोण आदि का बहुत सुंदर प्रस्तुतीकरण साहित्य की विभिन्न विधाओं में किया गया है। कथा साहित्य में विकलांगों को अनेक कथाकारों ने अपना केंद्रीय चरित्र बनाया मुंशी प्रेमचंद ने अपने एक उपन्यास में दोनों आंखों से रहित सूरदास जैसी चरित्र की अवतारना की है। अमृतलाल नागर ने तो 'खंजन नयन' नाम का उपन्यास हिंदी के महाकवि सूरदास के जीवन को केंद्र में बनकर ही रचा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित उपन्यास अनामदास का पोता में रैयक ऋषि यह पात्र विकलांग है। मृदुला सिन्हा का उपन्यास 'ज्यों मेहंदी के रंग' में विकलांगता का विस्तृत विवेचन है।अनेक कहानियों में भी विकलांगों को केन्द्रीय चरित्र बनाया है। इन कहानियों में नरेन्द्र नागदेव की 'समापन' पानू खोलिया की 'अन्ना', भीष्म साहनी की 'कन्ठहार', शैलेष मटियानी की 'हारी हुई', सूर्य बाला की 'फरिश्ते', नफीस आफरीदी की 'पड़ाव' निश्तर खान काही की 'आधा हाथ पूरा जीवन', सच्चिदान्द धूमकेतु की 'जिजीविषा मरी हुई' आदि कहानियों को लिया जा सकता है । इनके अलावा धर्मवीर भारती की कहानी '**गुलकी बनो**', रांगेय राघव की कहानी '**गूंगे**' तथा '**पंच परमेश्वर**' , ममता कालिया की कहानी '**राजू**', फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी '**ठेस**' , मैत्रेय पुष्पा की कहानी '**सहचर**' इन कहानियों में शारीरिक दृष्टि से विकलांग चरित्रों को उभारा गया है। महादेवी वर्मा ने तो गूंगे के जीवन पर '**गुंगिया**' नाम से एक संस्मरण लिखा है। न केवल साहित्य में बल्कि इस समय की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा सिनेमा में भी विकलांगों के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। 1962 63 के दौरान बनी '**दोस्ती**' नामक फिल्म में एक अंधे वह लंगड़े की दोस्ती दिखाई गई है। 1979 में '**स्पर्श**' इस फिल्म में अंधे नायक की कथा को उभरा है। 1972 में भी एक फिल्म आई थी

'**कोशिश**' किस फिल्म में गूंगे बहरे दंपति के जीवन की समस्याओं को व्यक्त किया है। संजय लीला भंसाली ने इसी विषय पर '**खामोशी**' फिल्म बनाई है। फिल्म '**अवतार**' भी इसी विषय पर बनी है। इसी क्रम में '**ब्लैक**' और '**आंखें**' यह नेत्रहीनों पर बनाई गई फिल्में है। इन फिल्मों ने विकलांग जीवन की समस्याओं, विकलांग जीवन की संवेदनाओं, विकलांग जीवन की आशा- निराशाओं एवं विकलांग जीवन के संघर्षों को सूक्ष्मता से स्पष्ट किया है।

साहित्यिक विमर्श के रूप में वर्तमान समय में दलित विमर्श स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श के पश्चात विकलांग विमर्श एक महत्वपूर्ण विमर्श बन गया है। इस विषय पर होने वाली अनेक संगोष्टियां इस इस परामर्श का प्रमाण है। हाशिए पर खड़े इन दिव्यांग लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए विमर्श समय की मांग भी है। "विकलांग व्यक्तियों में यदि आशा व ऊर्जा का संचार कर दिया जाये तो वे अपनी शक्तियों का उपयोग पूर्ण मनोयोग से करने लगते हैं। वे अपने जीवन की रेखाओं में स्वयं रंग भरना शुरू कर देते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें उपयुक्त अवसर देने के लिए परिवार और समाज तैयार तो हो ।"4

विकलांग के मनोविज्ञान को दो दिशाओं में सक्रिय करने की जरूरत है। एक दिशा है विकलांग के मनोबल को ऊँचा उठाना । घर परिवार में विकलांग अक्सर उपेक्षित हो जाता है और धीरे-धीरे उसका मनोबल क्षीण होने लगता है। उसके मन में यह बात आ जाती है कि वह दया का पात्र हो गया है। दूसरों पर निर्भर रहने लगा है। इस तरह के हीन भाव से ग्रस्त होने पर वह जीवन में पराजय बोझ से ग्रस्त हो जाता है और दिन प्रतिदिन उसकी हालत आत्मदया पूर्ण परिस्थिति में व्यतीत होने लगती है। जिस प्रकार '**वीमा**' नाटक की वीमा को केवल नेत्रहीन होने से परिवार में उपेक्षा सहनी पड़ती है और अनिच्छा से अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ तय किया जाता है। इसका विरोध वह घर से भाग कर करती है । इस संदर्भ में वह जमन वर्मा से वह कहती है, "हमारा खाता-पीता, नामी-गिरामी घर है। ज़मीन है। जायदाद है। माँ नहीं है। तो क्या ! बाप है। दो भाई हैं। दोनों सर्विस में हैं। दो भावजे हैं। एक टीचर है। दूसरी घर संभालती है। दो रोटियों के लिए घर-परिवार में हाथी का पेट बन गई, मैं। आँखें नहीं हैं तो क्या ? जितना बनता करती। बर्तन-भाँडे धोना, बच्चों को नहलाना-धुलाना, स्कूल भेजना।..... आंखें नहीं है तो क्या? कठपुतली होऊं उनकी? "5 वीमा ट्रेन में बैठकर जहां तक गाड़ी चली जाए उसे स्टेशन तक वह जाती है और जिस भूखी प्यासी वीमा को समाज द्वारा सहायता मिलनी चाहिए वहां उसे और अधिक कष्ट सहने पड़ते हैं। उसके अंधेपन का फायदा उठाते हुए एक व्यक्ति स्टेशन के बाहर उसे एक गड्ढे में ले जाकर उसके साथ जबरदस्ती करने की कोशिश करता है उसी समय एक नेत्रहीन व्यक्ति अर्थात जमन वर्मा उसकी सहायता करते हुए अपने घर ले जाता है और उसे आसरा देता है।

परिवार से मिली प्रताड़ना से वीमा में हीन भावना जागृत होती है और दुखी निराश होती है। विकलांग को इस मानसिकता से उबरने की जरूरत है। विकलांग का मनोबल उसके पारिवारिक जन ही बढ़ा सकते हैं। प्रारंभ से ही उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जाए जिससे उसे लगने लगे कि वह एक महत्वपूर्ण इकाई है। अधिकतर उसकी शक्तियों का सही उपयोग किया जाए जब वह अपने अनुकूल कार्य करने लगेगा तब उसमें आत्म बल भी जागृत होगा । यह आत्मबल ही उसे आत्मनिर्भरता की ओर ले जाएगा और वह अपनी शक्तियों का सही उपयोग करना सीखेगा। एक बार यदि विकलांग का मनोबल बढ़ गया तो यह मनोबल उसे एक स्वस्थ दृष्टिकोण देगा और वह अपने आप अपने जीवन की सार्थकता को तलाशने लगेगा। जमन वर्मा जन्म से अंधा था लेकिन परिवार वालों ने उसे कभी यह महसूस नहीं होने दिया। अपने परिवार के बारे में वीमा को बताते हुए वह कहता है," छोटे लोगों में दया धर्म होते हैं। मेरे मां-बाप भाइयों ने मुझे पाला - पोसा और नेत्रहीन स्कूल में पढ़ा लिखा कर पाओ पर खड़ा कर दिया।"6 जिस प्रकार 'वीमा' नाटक में जमन वर्मा के परिवार वाले गरीब होते हुए भी अंधे जमन को बचपन से

प्रेम करते हैं उसे पढ़ा लिखा कर आत्मनिर्भर बनाते हैं। जमन अपनी योग्यता के बल पर छात्रप्रिय संगीत शिक्षक बनकर अपने व्यक्तित्व से सभी को प्रभावित करता है। जिस विद्यालय में जमन नौकरी करता है उस नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामाजी जर्मन से कहते हैं,"जाओ जाओ अपनी क्लास में जाओ। बच्चे इंतजार करते हैं तुम्हारा....स्कूल के यह नेत्रहीन बच्चे हैं ना तुम्हारी ही भाषा बोली जानते हैं ..... वे सब के सब एक रट लगाए हैं, जमन गुरु जी कहां गए?"7 पहली बार जर्मन से मिलने पर उसके व्यक्तित्व से प्रभावित नेत्रहीन वीमा जर्मन की ईमानदारी, इंसानियत और उसके मददगार होने पर उसे कहती है, "जमन, आप फरिश्ता हो सच में। अगर समय पर ना आए होते मैं बर्बाद हो गई होती। नेत्रहीन कहां थाना कचहरी जाती । जब मंदिर तक बेगैरत हो गए हैं, थाना कचहरी से उम्मीद?"8 एक और जगह वह कहती है, "अरे वाह! बहुत खूब ! कांटे इंसान हो। रात छड़ी रख दी दोनों के बीच, पलंग पर। वचन का पूरा इसे कहते हैं। एक वह था, दरिंदा। एक आप हो, फरिश्ता। हैवान और इंसान इसी जमीं पर है।"9

सांभरिया जी 'वीमा' नाटक के माध्यम से निःशक्तों के संघर्ष के साथ ही साथ सामाजिक कुरीतियों, सरकारी योजनाओं की धांधली, मीडिया के दोहरे चरित्र, अवसरवादिता एवं पुलिस के असंवेदनात्मक व्यवहार से दर्शकों/पाठकों को भलीभांति परिचित करवाते है। वीमा के लापता होने पर विकलांग के लिए नियुक्त सरकारी कार्यालय के अधिकारी इसकी शिकायत न सुनते हैं ना उसे पर कुछ सकारात्मक प्रयास करते हैं। पुलिस मे तहरीर देने के बाद भी दो दिनों तक कोई कार्यवाही नहीं होती है । पुलिस की तरफ से मदद न मिलने पर जमन विकलांग संघ के अध्यक्ष अपने मित्र देवत सिंह के परिचित संवाददाता झा की सहायता लेता है,न्याय की पूरी उम्मीद भी करता क्योंकि वह जानता है कि प्रेस लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ, आम जन का आसरा, संकट और संत्रास के समय के वक़्त एकमात्र प्रेस से ही संबल, न्याय की उम्मीद है लेकिन उसे भी निराशा हाथ लगती है। मीडियाकर्मी झा जी जमन की पूरी बात को सुनते तो जरूर है किन्तु समाचार पत्र मे ठीक उसके विपरीत खबर को छापते है। "वीमा नाम कि भोली-भाली ग्रामीण लड़की घर से रूठकर शहर आ गयी । संयोग से रेलवे स्टेशन पर नेत्रहीन संस्था का नेत्रहीन अध्यापक जमन वर्मा मिल गया । वर्मा उस बेचारी को बहला-फुसलाकर अपने कमरे पर ले आया। कई दिनों तक अवैध रूप से उसे रखा और उसके साथ ज्यादती करता रहा। जमन वर्मा की नीची जाति का पता जब लड़की को लगा उसे मूर्छा आ गयी। लड़की कि हालत बिगड़ती रही। जमन उसके साथ ज्यादती करता रहा। एक दिन मौका पाकर लड़की नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामाजी के चेम्बर में गयी और आप बीती सुनाई। जमन के चंगुल से छुड़ाने के लिए खूब रोई, गिड़गिड़ाई। सहृदय श्यामाजी ने उसको ढाढस बंधाया। उन्होंने वीमा के गाँव खबर की। वीमा के पिता और भाई आए और उसे गाँव ले गए।"10 जमन मीडिया की झूठी खबर सुनकर स्तब्ध रह जाता है, वह समझ जाता है उसकी लड़ाई किसी एक व्यक्ति से नहीं है बल्कि पूरी जाति व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, परंपरा और सत्ता से है, क्योंकि समूची व्यवस्था जाति व्यवस्था से परिचालित है।

सांभरिया जी के पात्रों की सबसे बडी खासियत यह है कि वह विषम परिस्थितियों से घबराकर भागते नहीं है न ही नियतिवादी होते है बल्कि हर परिस्थिति का डटकर मुकाबला करते है। जमन कहता है "अगर निःशक्त अपनी पर उतर आएं, लोहे की गेंद है। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, न उछला जा सकता है। फक्र है, निःशक्तों पर। निःशक्तों की एकता पर, निःशक्तों की ताकत पर।" 11 यहाँ पर बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर जी की उक्ति सार्थक दिखाई पड़ती है - 'शिक्षित बनो संगठित रहो और संघर्ष करो' । कैसे पूरा का पूरा निःशक्त समाज अपनी एकता के बल पर समूची व्यवस्था की नग्नता को समाज के समक्ष रखते हैं। कैसे सत्ता में बैठे हुये लोग अपनी शक्ति का दुरुप्रयोग कर काला को सफेद, सफ़ेद को काला कर रहे हैं। पूरे नाटक में कुल पात्रों की संख्या 12 है कुछ गौण पात्र भी रखे गए है। जमन वर्मा शारीरिक रूप से सक्षम न होते हुए भी उसे अपनी कमजोरी नहीं मानता है

शिक्षा को अपना हथियार बनाकर जिस दृढता के साथ सत्ता के खिलाफ लड़ाई लड़ता है, वह काबिले तारीफ है। नाटककार सांभरिया जी जमन इस पात्र के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि आज का विकलांग युवक स्वयं को दीन-हीन न मानकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत है यह उसके चरित्र का सबल पक्ष है।

वीमा नाटक में अमानवीयता की पराकाष्ठा को चित्रित तो किया है साथ ही जमन वर्मा वीमा के लिए जो संघर्ष करता है वह दया का नहीं करुणा का भाव उत्पन्न करता है। संघर्ष की परिणति में जमन के जिस विजय को दिखाया है वह सुखद और अपेक्षित है। यह संघर्ष उसका व्यक्तिगत नहीं है बल्कि सम्पूर्ण समाज से कैसे इंसानियत और ईमानदारी दरक रही है उसे उजागर कर लेखक ने अपनी चिंता भी व्यक्त की है। लेखक ने निःशक्तों के माध्यम से पूरे भारतीय समाज को महतवपूर्ण सन्देश देते है जो देख नहीं सकते वह समतामूलक समाज की स्थापना करना चाहते है और जो देख सकते वे जातिभेद को लेकर अंधे बने हुये है। यह हमारे समाज की बहुत बड़ी विडम्बना है। इस नाटक के संदर्भ में सात्र की उक्ति सटीक लगती है 'लेखन केवल लिखना ही नहीं है, एक कार्यवाही है, और बुराई के खिलाफ मनुष्य के सतत संघर्ष में लेखन सायास हथियार की तरह इस्तेमाल करना चाहिए।'

निष्कर्ष

विकलांग अब ना तो भावुक दया का पात्र है न सहानुभूति का पात्र, बल्कि विकलांगों ने अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति और अपनी अदम्य साधना के द्वारा अपने को सक्षम रूप में प्रस्तुत किया है। विकलांगों को सुविधा देने हेतु उन्हें रोजगार और उनकी पुनर्वास व्यवस्था हेतु शासन की ओर से अनेक कानूनों का निर्धारण किया गया है। आवश्यकतानुसार शासन विकलांगों के विकास के लिए समय-समय पर नीतियों का निर्धारण करता है। इन नीतियों का लाभ भी विकलांगों को मिल रहा है लेकिन शासकीय नीतियों का भी विकलांग भरपूर लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। उन्हें अनेक तरह की दिक्कतों का सामना इस स्तर पर करना पड़ता है। आर्थिक अभाव में कई निःशक्त शिक्षा ही पूरी नहीं कर पाते। सरकारी अधिकारी से निःशक्तों के लिए कुछ सकारात्मक प्रयास करने के लिए कहने पर किसप्रकार वह बात को काटते है यह बताते हुए **वीमा** नाटक में स्वयं निःशक्त देवत सिंह कहता है,"सरकार की ओर से पहली क्लास से लेकर एम.ए. तक निःशक्तों को निःशुल्क शिक्षा दी जाए। आप अपने लेटरपैड पर मेरे इस पत्र को सी.एम. साहब को फारवर्ड कर दें। सी. एम. साहब ज़मीनी आदमी हैं, क्रियान्विति हो जाएगी। वह महामना ऐसे बिरचे, मुझे अपँग कह गए। उस दिन का दिन, आज का दिन, आका मेरी आँख की किरकिरी हैं। निःशक्तों के नहीं, वे अपने कैसे हुए ?"12 इस प्रकार अभिनेय 'वीमा' नाटक ने निःशक्तों के जीवन समस्याओं, उनके संघर्ष, पारिवारिक तथा सामाजिक शोषण, सरकारी योजनाओं और उनका वास्तविक जीवन में उपयोग और उसमें आने वाली रुकावटें इनका केवल दर्पण नहीं दिखाया है तो वर्तमान काल में निःशक्तों की शिक्षा, संगठन और संघर्ष उनमें आज असंभव को संभव करने की योग्यता तथा शक्ति किस प्रकार प्राप्त की है इसे भी दिखाया है। अतः वीमा नाटक समाज को दीपक दिखाने का कार्य कर रहा है । यह भाव दिव्यांगों के जीवन की मूल भावना है।इन विकलांगों ने अपनी प्रतिभा के माध्यम से समाज के प्रत्येक क्षेत्र में न केवल अपनी पहचान बनाई है बल्कि समाज को अपनी योग्यताओं से प्रभावित भी किया। इसके प्रमाण हमें समाज में यत्र-तत्र दिखाई देते हैं जिसका वर्णन साहित्य में भी आया है। अब आवश्यकता है समाज को अपना नजरिया बदलने की विकलांगों को दया और सहानुभूति से नहीं तो उन्हे दिव्यांग मानकर कुछ खास समझने तथा आदर और स्नेह करने की। वे आत्मनिर्भर बनकर समाज के अन्य व्यक्तियों की तरह अपनी शर्तों पर जीवन जीने के लिए तत्पर हो। यह परिवर्तन लाने के लिए निःशक्तों के विकास के लिए नियुक्त सरकारी अधिकारियों को भी अपना कार्य समर्पण भाव से करते हुए

निःशक्तों के लिए अनुकूल वातावरण और नई-नई नीतियों को बनाना होगा। इसके अनेक संकेत वीमा नाटक में मिलते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. प्रीति दुबे - 2015- विकलांग विमर्श शिक्षा और पुनर्वास-ग्रंथलोक प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 75
2. डॉ० विनय कुमार, 2010,विकलांग विमर्श- सम्पादक, अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद, बिलासपुर, छत्तीसगढ, पृष्ठ- 54
3. https://www.drishtiias.com/hindi/paper2/disability-in-india-problems-and-solutions
4. प्रीति दुबे - 2015- विकलांग विमर्श शिक्षा और पुनर्वास-ग्रंथलोक प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 15
5. रत्नकुमार सांभरिया-2020, वीमा (नाटक), नटराज प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 40
6. वही, पृष्ठ संख्या - 41
7. वही, पृष्ठ संख्या -160
8. वही, पृष्ठ संख्या - 39
9. वही, पृष्ठ संख्या - 43
10. वहीं, पृष्ठ संख्या - 71-72
11. वहीं, पृष्ठ संख्या -77
12. वहीं, पृष्ठ संख्या - 53

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी आदिवासी साहित्य में अस्तित्व और अस्मिता का स्वर

प्रिती भिमराव राऊत

शोधार्थी, हिंदी विभाग

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय

औरंगाबाद-431004

प्रस्तावना :

स्वतंन्त्रता प्रति के 76 वर्षो के बाद विश्व की सुप्रसिद्ध लोकतांत्रिक व्यवस्था में इस देश में यदि कोई समुदाय उपेक्षित, अभिशत्प शोषित, अशिक्षित एवं हाशिए पर है तो वह है आदिवासी समाज आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और आस्मिता का विमर्श है । अस्तित्व और अस्मिता यह ऐसा विमर्श है की उस समुदाय की परम्परा रूढिया, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा है । इस विमर्श में लोककला, संगीत, नृत्य, संस्कृति, भाषा, बोली, लिपि आदि विभिन्न धरातलो पर आज का आदिवासी हिस्सा बन रहा है । आज भी कई आदिवासी ऐसे है जो मूलभूत सुविधाओं और आधिकारों से वंचित है और गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन यापन कर रहे है । वर्तमान समय में यह आदिवासी समाज अपने अस्तित्व और अस्मिता के संकट की लडाई लड रहा है तथा अनंत, शोषण दमण और उत्पीडन का शिकार रहा है । आदिवासी सम्पूर्ण भारत में है और इनमें आदिवासी समाज गरीबी के रेखा के नीचे गुजर बसर कर रहे है । आदिवासियों का अंत उत्पीडन आज भी हो रहा है । देश के कई आदिवासी भयावह गरीबी, भूखं, बेरोजगारी, शोषण, कुपोषण, बीमारी और विस्थापन के शिकार है । केवल शिक्षित एवं रोजगार प्राप्त आदिवासीं इसका अपवाद है । स्त्री समस्याओं दलित समस्याओं, अल्पसंख्यों की समस्याओं की और जिस तरह विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों का ध्यान गया है उस तरह आदिवासीयों की समस्याओं पर रचनाकारों का ध्यान नहीं गया है । शायद इसका कारण अधिकांश रचनाधार्मियों का मध्यवर्ग से होना ही है । 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' परन्तु यह बात दुर्भाग्यपूर्ण है की इस दर्पण में आदिवासी समाज बहुत कम, धुंधला और विकृत रूप में दिखाई देता है । हिंदी उपन्यासकारों ने आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखकर बहुत ही सशक्त और महत्वपुर्ण उपन्यासों की रचना की है । समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन की व्यथा पीड़ा, उत्पीड़न, शोषण, संघर्ष, त्याग, योगदान तथा उनकी अनेक ज्वलंत समस्याओं प्रश्नो और दयनीय स्थिति को संवेदना के साथ अभिव्यक्ति मिली है । आज उनकी प्रमुख समस्याओं में धर्मान्तरंण, विस्थापन अस्तित्व एवं अस्मिता, शिक्षा आदि है । समकालीन आदिवासी जीवन केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में मैला आँचल सागर, लहरें और मनुष्य कब तक पुकारू, जंगल के फुल, जंगल जहाँ शुरू होता है, पावतले की दूब, समर शेष है, काला पादरी, पठार पर कोहरा, जो इतिहास में नहीं है, सीता, हस्तक्षेप, मौसी, देवी, ग्लोबल गाँव के देवता आदि उल्लेखनीय है । आदिवासी समाज न केवल भारत का मूल निवासी था अपितु वह इस धरती का मूल निवासी था । आदिवासियों के जीवन में मानवीय गरिंमा के उदात्त तत्वों का दर्शन हमे होता है । अपने आसपास के परिवेश की सहज, सरंल अभिव्यक्ति आदिवासी जीवन की अनमोल देश है । आदिवासी साहित्य में रूचि लेना, इन आदिवासियों के जीवन को नजदीक से देखना होगा । आदिवासी और दलित विमर्श के अन्त को जानना होगा । उत्तर और पूर्व क्षेत्र में मुख्य आदिवासी समूह है । आर्थिक संगठन, सामाजिक संगठन एवं विशिष्ट सांस्कृतिक प्रथाओं तथा धार्मिक संगठन के आधार पर आदिवासी समूहों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न मानव विज्ञानवेत्ताओं ने किए है ।

आदिवासी समाज नगर संस्कृति से दूर और अलिप्त रहते है । उनकी अपनी अलग संस्कृति होती है । आदिवासी समाज में अनेक जातियाँ है । सभी जातियों की बोली भाषा अलग-अलग है । वे रूढी परम्पराओं का पालन करते है । यही उनकी मूल संस्कृति का मूल रूप है । आदिवासी समाज को अनेक समस्याओं का सामना करना है । भारतीय आदिवासी समाज में जातिगत प्रतिबंध पाये जाते है । विश्व की सभी संस्कृतियों का जन्म इतिहास के धुंधलके में आदिवासी समाजों से हुआ है । आज का आदिवासी समाज राजनीति के चक्रव्यूह में फँस गया है । इस संदर्भ में महेश्वर दयालु गंगवांर लिखते है - "आजादी से देश विकास के रास्ते पर चला तो चलता ही चला गया । विकास के हाथों छले गये लोगों की व्यथा-कथा सुनने समझने की किसी को फुरसत ही नहीं मिली । बड़ी-बड़ी योजनाओं से विस्थापित होने वालो ने जब-जब अपनी करूण कहानी सुनानी चाही, तब-तब उनकी ही प्रतिनिधि सरकार ने उन्हें भविष्य के सुहावने सपने दिखाकर उनके आक्रोश के उफान को ठंडा कर दिया । विकास चलता रहा, लोग उजडते रहे, दमन और शोषण का शिकार होते रहे और अंत: नाटकीय जीवन जीने के लिए विवश हो गए।" आदिवासी साहित्य को पढ़ते हुए ऐसा लगाता है कि इसे बाल्टर्न साहित्य कहकर काम नही चलाया जा सकता अपितु रसे समाज के व्यापक परिपेक्ष्य में सामाजिक राजनीति एवं सांस्कृतिक संघर्षो से जोड़कर देखते हुए वैश्विक विचारों एवं परिवर्तन की प्रक्रिया से भी जोड़कर देखने की आवश्यकता है । इसी दृष्टि से हिन्दी के आदिवासी जीवन को उजागर करने वाले उपन्यासों में जगन्नाथ प्रसाद के 1899 में लिखित उपन्यास बसंत मालती का उल्लेख सर्व प्रथम किया जा सकता है । इसमें मुंगेर जिले के मलयपुर अँचल के मल्लाह आदिवासियों के जीवन को उजागर किया है । आदिवासीओं की उनकी रचनाओं में चर्चा मिलती है 'गोदाण' उपन्यास में और 'सन्द्रति' कहानी में जिसमें दलित और आदिवासी एकता की जरूरत की और संकेत भी है ।

आदिवासी जनजीवन का चित्रण करनेवाले कवियों ने इतिहास से बेदखल आदिवासी नायकों को महत्त्व देकर आदिवासीयों को नये इतिहास के सृजन के लिए नयी जमीन की तलाश की है, ऐसे नाय को में महत्त्व देकर आदिवासीयों के नये जमीन की तलाश की है । ऐसे नायको में आदिवासियों की जमीन जंगल और अस्मिता के लिए अंग्रेजो के खिलाफ संघर्ष करने वाले बिहार झारखण्ड के बिरसा मुंडा, सिद्धो कान्हो और तिलका माँझी से लेकर कालिबाई झलकारी बाई और मणिपुर की रानी गौडेन्ल्यू तक शामिल है। एक के खोने पर दूसरा आदिवासी अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए लडता ही रहेगा।

समकालीन हिंदी आदिवासी साहित्य में अस्तित्व का स्वर

आदिवासी समाज का अस्तित्व जीवित होने या वास्तविक होने की, अवस्था है। वह समाज, धर्म, प्रचलित नैतिक मानंदण्ड और आचार-विचारों के प्रति सजग रहकर, अभिनव और यथार्थवादी साहित्य का निर्माण कर समकालीन मूल्य बोध को अवतरित कर रहा है । आदिवासी अर्थात आदि समय से यानीं प्रारम्भिक काल से जो लोग निवास कर रहे है । वे ही आदिवासी कहलाते है । मानव के धरती पर जीवन के अस्तित्व को सयम से लेकर आज तक जो लोग चिरकाल से निवासरत है वे ही आदिवासी है । अंग्रजी सरकार के बाद भारत सरकार की भूमि अधिग्रहण अधिनियम के कारण उनपर अन्याय किया जा रहा है । जिससे आदिवासियों का विस्थापन हो रहा है । यह एक गंभीर समस्या आज आदिवासी जीवन पर मंडरा रही है । अपने अस्तित्व के लिए खेती करने वाला, श्रम के फल खाने वाला, आदिवासी समाज आज बाजार, नौकरशाही और सेठ, साहूकार सभी के शोषण का शिकार हो रहा है । विश्वभर छाये इस व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का जन्म हिन्दी औपन्यासिक क्षेत्र में अस्तित्ववाद के नाम से हुआ है । अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए मनुष्य में वरण की स्वतंत्रता, चयन की आजादी जरूरी है । अस्तित्वादी विचारधारा के प्रथम प्रवर्तक डेनिश तत्त्वशास्त्री 'सोरेन की केंगार्द' ने इनके अनुसार, "अस्तित्व शब्द का

उपयोग इस दावे पर जोर देने के लिए किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति की इकाई अपने आपमें स्वयं जैसी (unique) हे और अध्यात्मिक या वैज्ञानिक प्रक्रिया के संदर्भ में अविश्लोषणीय है । यह वह अस्तित्वमय है और चूँकि वह स्वतंत्र है इसीलिए उसके स्वतंत्र चुनाव पर उसका भविष्य कुछ अंशो पर निर्भर है । अतः इस संबंध में कुछ भी नही कहा जा सकता ।" विश्व में सभी देशों में आदिवासी जाती-जन जाति का अस्तित्व है, भारतीय मराठी अभ्यास प्रा. वामन शेडमाके कहते है की –"आदिवासी म्हणजे भूतलावर पहिले पाऊल ठेवणारा माणूस, नागरी संस्कृती पासून अगदी दूर जंगल खोऱ्यात, दुर्गम खोऱ्यास राहणारा व स्वतःचे अस्तित्व जपणारा माणूस म्हणजे आदिवासी, आदिवासी म्हणजे दुःखाची समस्त महागाथा ।"

समकालीन हिन्दी आदिवासी साहित्य में अस्मिता का स्वर :

आदिवासी समाज समस्याओं को धीरे-धीरे सही दिशा में समझना शुरू कर चुका है । वह अन्याय और अत्याचार का प्रतिरोध कर रहा है । 'काला पादरी' उपन्यास में खाखा में यह साहसिकता है न बेगार न प्रार्थना यह स्वागत योग्य हाशिए का विरोध है । यहाँ अस्मिता का सवाल भी उठता है । यही अस्मिता को गलत ढंग से भुनाकर कभी लालडेडा । अलग राष्ट्र का सपना पालते है । समकालीनता और आधुनिकता के अंतः सम्बन्धो पर विचार किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि काल के एक ही केन्द्र से जुडी होने पर भी उन दोनों की अलग अस्मिता है, अलग पहचान है । स्प्रेंग्लर के अनुसार, "जो घटनाएँ चारों और घटित होती है, उनका प्रति बिम्ब नया प्रतिफलन समकालीनता है परन्तु उसका विरोध करना आधुनिकता है ।"

पितृक समाज स्त्री को नैतिकता, शील मातृत्व की मर्यादा घोषित करता है परंतु पुरूष का निरंकुश शासन स्त्री को आधीन बनाकर मूक और अस्मिता विहीन बना देता है। प्रकाश मिश्र का 1997 में प्रकाशित उपन्यास जहाँ बाँस फूलते है । लुशेइयों आदिवासी की जीवन पद्धति, रूढी परम्पराओं, समस्याओं एवं आदिवासियों की अस्मित को प्रस्तुत करता है । इस दिशा में संकेत करते हुए हरिराम मीणा ने कहा है कि "हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित लेखकों से हमें अपेक्षा थी कि वे स्त्री, दलित, अल्पसंख्याक, आदिवासी एवं हाशिए, पर डाली जाती रही अन्य अस्मिताओं को अपेक्षित अभिव्यक्ति देते वह अपेक्षा पुरी नही हुई । यही वजह है कि इन अस्मिताओं से जुडे लेखकों को एक मुहिम के तौर पर हिंदी साहित्य में हस्तक्षेप करना पड़ा और अपनी पहचान बनाने के लिए जुझना पडा ।" 1982 में हिमांश जोशी का 'सु राज', 2000 में मैत्रेयी पुष्पा का अल्मा कबुतरी और 2010 में प्रकाशित सतीश दुबे का उपन्यास डेरा बस्ती का सफर ना इन उपन्यासों में लेखकों ने अपनी खोयी दृष्टि से प्रकाश डालते हुए अपनी सहानुभुति परक दृष्टि से आदिवासी नारी की अस्मिता और उसकी विवशता को रेखांकित किया है । मैत्रेयी पुष्पा ने भी 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में रहने वाली 'कबुतरी' आदिवासी जाति के जीवन - यथार्थ के साथ आदिवासी नारी की अस्मिता और विश्वगता का चित्रण किया है ।

निष्कर्ष :

भारतीय गाँवो की और आदर्श के रूप में देखा जाता था परन्तु कालान्तर से गाँवों का भाईचारा एवं शांति पुर्ण जीवन शहरी संस्कृति के संसर्ग से तहस नहस हो गया है । गाँवो में भी तरह-तरह की शहरी कुरीतियाँ हावी होने लगी है । जो आदिवासी समाज सन्तुष्टि से गाँव में रहता था वह भी असन्तुष्ट से गाँव में रहता था वह भी असन्तुष्ट बन अपनी संस्कृति परम्परा का परित्याग करता दिखाई देता हे । यह संवाद स्पष्टता से बढते हुए शहरी करण औद्योगिकरण ने आम जनता से आदिवासीयो तक को प्रभावित किया है। आदिवासी परिवेश की अनेक समस्याएँ है, जिनमें आदिवासी स्त्री पुरूषों में फैले अंधविश्वासों, सामाजिक रूढियों तथा उनपर तरह-तरह के होने

वाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण साँप सीढी में हम कर सकते हे । भारतीय सांस्कृतिक परम्परा आज भी अपने आदिंम रूप में आदिवासियों के मध्य सुरक्षित है क्योंकि पाश्चात्य विकृतियों के प्रभाव से वे मुक्त रहे है । भारत की आदिवासी जन जाति में भिल्ल प्राचीन जन जाति है। आदिवासी तडवी भिल्ल शिक्षा की दृष्टि सें पिछडा हुआ समाज है । मैत्रेयी पुष्पा का अल्मा कबूतरी उपन्यास भटकने वाली आदिवासी जाति का जीवन रेखाकिंत करता है । आज भी भारतीय आदिवासी समाज विकास की धारा से जुडन वही पाया है वह अधिक पिछडा एवं दयीनय है । आज भी वे मूलभूत सुविधाओं से दूर है अधिकारों से वंचित है औरा गरीबी की रेखा के नीचे अपना जीवन यापन कर रहे है। आज वह अपनी अस्मिता और अस्तित्व के संकट की लडाई लड रहा है। दलित एवं पिछडे हुए लोगों की तुलना में आदिवासी समाज सबसे अधिक शोषित, पीडित, उपेक्षित वंचित तथा अभाव ग्रस्त है। राजनिती के क्षेत्र में आज वही व्यक्ती अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है जो अवसर की नजाकत को पहचानकर स्वयं को उसके अनुसार ढाल ले। इसमे आदिवासियों के समक्ष अस्तित्व एवं अस्मिता के विकट प्रश्न को जन्म दिया जिसमें यदि वे अपनी सांस्कृतिक पहचान को अहनियत देते है तो उनका अस्तित्व खतरे में पड सकता है यही वह पृष्ठ भूमि है जिसमें आदिवासीयों की अस्मिता एवं अस्मितागत बचैनी ने एक पृथक एवं स्वतंत्र धारा के रूप में आदिवासी विमर्श की सभावनाओं को बल प्रदान किया इसके परिणाम स्वरूप दलितों से प्रेरणा ग्रहण रकते हुए आदिवासियों की समस्याओं पर लेखन की दिशा में खुद आदिवासियों ने ही पहल की। वर्तमान समय की नारी अपने अनुभवों के आधार पर अस्तित्व और अस्मिता के लिए समाज मे व्याप्त पुरूषवादी वर्चस्व को तोडने प्रयासत है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. शिवाजी देवरे, डॉ. मधु ,खराटे, - समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श – विद्याप्रकाशन कानपून, संस्करण 2016 पृ. 18
2. डॉ. चंदागिरीश – अस्तित्वादी हिंदी कहानी, दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशक कानपूर संस्करण प्रथम 2009 पृ. 24
3. डॉ. दैविदास खोडेवाड, - महाराष्ट्रातील आदिवासी समाज जीवन, विद्या पब्लिशर्स औरंगाबाद प्रथमावृत्ती 2018 पृ.6
4. डॉ. रूबी एलसा जेकब, समकालीन हिंदी उपन्यासों मे विस्थापन विद्या प्रकाशन कानपूर संस्करण प्रथम 2017 पृ.19
5. Sarthaksamwad blogs Pot. Com/2018/09/blog- Post.html